१८५७ से '५२ तक के उर्दू काव्य-साहित्य
का विश्लेषणात्मक परिचय

आधुनिक उर्दू काव्य साहित्य



लेखक
जाफ़र रज़ा

प्रकाशक
पी० सी० द्वादशश्रेणी एण्ड क० (प्रा०) लि०
अलीगढ़ इलाहाबाद हैदराबाद

प्रथम संस्करण, १९६३
मूल्य ७ रु० ५० नये पै०

मुद्रक
विश्वविद्यालय प्रेस
१८ (ए), महात्मा गाँधीमार्ग

श्रद्धेय गुरुवर
प्रो० मसीहुज्ज़माँ
को सादर

अनुक्रमणिका

परिचय

साहित्य के माध्यम से हिन्दी प्रदेश की सांस्कृतिक गतिविधि का सम्यक् अनुशीलन अपना एक वैशिष्ट्य रखता है। जिस प्रकार हिन्दी-काव्य युग-जीवन की अभिव्यक्ति में सक्षम रहा है, उसी प्रकार उर्दू-काव्य ने भी परम्परा से भारतीय जीवन को विविध संदर्भों एवं स्तरों पर वाणी प्रदान की है। आधुनिक युग की राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि को उर्दू कवियों ने अपनी अनुभूति एवं दृष्टि का विलक्षण संयोग प्रदान किया है। आधुनिक चेतना को वहन करने वाले भारतीय साहित्यकारों के बीच उर्दू साहित्यकार का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री जाफ़र रज़ा ने आधुनिक उर्दू-काव्य का सांस्कृतिक एवं युगीन संदर्भों में महत्वपूर्ण विश्लेषण किया है। उन्नीसवीं और बीसवीं शती में उर्दू कवियों ने केवल प्रेम और विरह के ही गीत नहीं गाये, राष्ट्रीयता का आकाशभेदी जयघोष भी किया है। देवदूतों की प्रशस्तियाँ ही नहीं रचीं, अपने सामयिक राष्ट्रीय कर्णधारों की कर्मठ साधना के प्रति श्रद्धा के अनेक पुष्प भी समर्पित किए हैं। उन्होंने संकीर्ण मनोवृत्ति का परित्याग कर विश्व की नवीन परिस्थितियों एवं चेतना का तटस्थ दृष्टि से सम्यक् आकलन किया है। स्वतंत्रता के उपरान्त देश का विभाजन हो जाने पर भी उर्दू कवि भारतीय मानवता एवं परम्परागत आदर्शों का सम्बल नहीं छोड़ सका। उसने साम्प्रदायिकता से दूर रह कर भारतीय लोक-मत को अपनी संवेदना प्रदान की है। वह भारतीय जनता के ही स्वरों में रोया है और उसी के स्वरों में हँसा है।

वर्ण्य वस्तु के सदृश्य अभिव्यंजना के क्षेत्र में भी आधुनिक उर्दू-काव्य में अनेकरूपता एवं प्रयोगशीलता की प्रवृत्तियाँ पल्लवित हुई हैं। भाषा और शैली के नवीन प्रयोगों में आज के उर्दू कवि ने अपनी प्रतिभा का पूरा

परिचय दिया है। अपने अस्तित्व संरक्षण एवं विकास के साथ ही उसने आधुनिक हिन्दी काव्य को भी भाषा, शैली, काव्यरूप, छंद आदि अभिव्यक्ति के विविध क्षेत्रों मे प्रभावित किया है। यह उसके प्रबल व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक तथ्य है।

श्री जाफ़र रज़ा ने अपनी इस कृति मे उल्लिखित संदर्भों में सम्पूर्ण आधुनिक उर्दू-काव्य की गतिविधि एवं विविध प्रवृत्तियों को अत्यन्त रोचक तथा प्रभावव्यंजक शैली में प्रस्तुत किया है। उर्दू के लेखक होते हुए भी हिन्दी भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। हिन्दी के माध्यम से उर्दू-काव्य की आलोचना करने मे उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुतः लेखक ने उर्दू और हिन्दी की आत्मा को पहिचान कर अपनी अन्तर्भेदी दृष्टि से दोनों भाषाओं की मूलभूत एकता का उद्घाटन किया है।

युग प्रवाह पर लेखक की विशेष दृष्टि रही है तथा उसने युग की सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि को पहिचान कर उसके अर्थ को समझने का यत्न किया है।

मैं लेखक को इस सुन्दर कृति की रचना पर हार्दिक बधाई देता हूँ। आशा है कि भविष्य मे वे हिन्दी के माध्यम से उर्दू साहित्य विषयक अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों के प्रणयन की साधना में संलग्न रहेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय
२५.७.६३

(हस्ताक्षर)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

भूमिका

साहित्य और जीवन में किस प्रकार का कलात्मक सम्बन्ध है, इस बात पर तो आलोचकों और कलाकारों के बीच वाद-विवाद होता रहा है और हो सकता है किन्तु इस बात को कोई भुला नहीं सकता कि विश्व-साहित्य में सारे बड़े लेखकों और कवियों ने उस जीवन की रचना फिर से की है जिसका उनको ज्ञान और अनुभव रहा है या जिसके बीच रहकर उन्होंने अपनी रचनात्मक शक्ति बढ़ाई है। अपने विचारों के लिए सामग्री एकत्रित की है और अपने दृष्टिकोण को ज़ाहिर करने के लिये जीवन के मूल-तत्वों का सहारा लिया है। यह बात ठीक है कि जब तक कलाकार में रचनात्मक शक्ति न हो वह जीवन का प्रसार बेढंगेपन से करेगा। उसकी दृष्टि केवल ऊपर की चीज़ों को देखेगी और उन्हीं को सीधे-सादे रूप में बयान कर देगी और पढ़ने वाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ रहेगा। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि दुनिया के बड़े-बड़े लेखकों ने अपने युग की समस्याओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनके बारे में इतिहास से अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है। जो भारतवर्ष वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, जायसी, सूर, कबीर और तुलसीदास के यहाँ मिल जाता है, वह किसी प्रकार की दूसरी पुस्तकों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिये साहित्य का अध्ययन करते समय इस बात को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि अच्छे कवियों और कलाकारों की कृतियों में कवि के व्यक्तिगत विचारों के साथ-साथ जीवन का वह स्तर भी प्रस्तुत होता जायेगा- जिसमें उसके युग के चित्र देखे जा सकेंगे।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति इसी तरह के एक जीवन-संघर्ष के दृष्टि से देखी जा सकती है। भारतवर्ष के इस महान और प्राचीन देश में पश्चिम की ओर से कुछ लोग आये जिनका धर्म, आचार विचार, रहन-सहन, भाषा और साहित्य, सभ्यता और जीवन-दृष्टि सब दूसरी थी परन्तु यहाँ पहुँच कर वह

यहीं के होगये। थोड़े ही समय में वह अपनी मातृभाषायें भूल गये और यहीं की बोलियाँ बोलने लगे। इस प्रकार जो लेन-देन हुआ उसमें उर्दू ने जन्म लिया और उन विचारों को प्रकट करने लगी जो यहीं के जीवन से सम्बन्ध रखते थे। 'अमीर ख़ुसरो', 'क़ुली क़ुतुबशाह', 'वजही', 'फ़ाएज़', 'नज़ीर' अकबराबादी, 'सौदा', 'मीर', 'इनशा', 'अमानत' किसी कवि का अध्ययन किया जाये, यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जायेगी कि चाहे यह कवि अपने चिन्तन मे इस्लामी धर्म से प्रभावित रहे हों किन्तु उन्होंने जिस जीवन का विस्तार किया है, जिन फलों-फूलों, नदियों-पहाड़ों, मेलों-त्योहारों का विश्लेषण किया है वह सब भारतीय हैं। सच तो यह है कि वह इसके बाहर जा भी नहीं सकते थे क्योंकि कवि जिस सोते से पानी पीता है वह वहीं हो सकता है जो उसके अनुभव-क्षेत्र से निकट हो। यही कारण है कि उर्दू कविता प्रत्येक युग में उस जीवन का विस्तार करती रही है जो उसके चारों ओर था। जब मोग़ल सामन्तशाही का पतन होने लगा और शासकों में इतनी शक्ति नहीं रह गई कि साधारण जीवन को ठीक रास्ते पर चला सके तो 'हातिम', 'सौदा', 'मीर', 'क़ायम', 'नाजी', 'नज़ीर' और अन्य दूसरे कवियों ने उनकी निर्बलता और विलासमय जीवन से उत्पन्न होने वाली कमज़ोरियों का ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया। जब भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के शक्ति प्राप्त करने से यहाँ का वातावरण बदलने लगा और धीरे-धीरे सारा अधिकार उनके हाथ में पहुँच गया तो उर्दू के कई कवियों ने इसकी ओर उस समय संकेत किया जब यहाँ किसी प्रकार की राजनीतिक चेतना देख नहीं पड़ती थी। 'मुसहफ़ी' ने कहा—

हिन्दोस्ताँ की दौलतो-हशमत जो कुछ कि थी
ज़ालिम फ़िरंगियों ने बतदबीर खींच ली

और 'जुरअत' ने, जो केवल मज़ेदार ग़ज़लें लिखने के लिये प्रसिद्ध हैं, अंग्रेज़ों के इसी प्रभाव से खिन्न होकर यह कहा—

कहिये न इन्हें अमीर अब और न वज़ीर
अँग्रेज़ों के हाथ ये क़फ़स में है असीर
जो कुछ वो पढ़ायें सो ये मुँह से बोलें
बंगाले की मैना हैं, ये पूरब के अमीर

इसी प्रकार दूसरे कवियों ने भी इस बदलती हुई दशा का उल्लेख किया है। इसको बहुत उच्चकोटि का काव्य-साहित्य न कहा जा सके किन्तु इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि उर्दू के कवि देशभक्ति में किसी से पीछे नहीं थे और न आँखें बन्द किये केवल प्रेम और विषाद की धाराओं पर बहे जा रहे थे।

उन्नीसवीं शताब्दी सारे भारतवर्ष में उस नई चेतना की शताब्दी कही जाती है जिससे वर्तमान काल का उद्‌भव होता है। ऐतिहासिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक स्थितियों के बदल जाने के कारण समाज का पुराना सामन्ती रूप एक नये औद्योगिक साँचे में ढलने लगा। भारत का कच्चा माल बाहर जाने लगा। छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। किसानों की हालत ख़राब होने लगी और बड़े-बड़े अकाल देश के विभिन्न भागों में पड़े। इस दुर्दशा में विचारों की दोनों सीमायें देखी जा सकती हैं। कुछ कवियों के यहाँ निराशा-वाद और करुणा की भावना एक विशेष स्थान रखती है और कुछ के यहाँ आशा की उस फूटती किरन का संकेत मिलता है जो किसी हालत में भी जीवन का स्वप्न देखने वालों का साथ नहीं छोड़ती। यह शताब्दी इस दृष्टि से बड़ा महत्व रखती है कि इसी में पूरब और पच्छिम, पुराने और नये, धर्म और साइन्स, पुरानी सभ्यता और नये विचार का संघर्ष अपनी पूरी तीव्रता के साथ हमारे सामने आता है और उस पुनर्जीवन का विकास होता है जिसका नेतृत्व बंगाल में, राजा राम मोहन राय, कश्यप चन्द सेन, महर्षि टैगोर ने और उत्तरी भारत में सर सैयद अहमद ख़ाँ ने किया। जहाँ तक अंग्रेज़ी साम्राज्य के स्थापित होने का संबन्ध है, १८५७ के आन्दोलन के बाद उसमें किसी प्रकार का संदेह रही नहीं गया था परन्तु इसी पराधीनता ने स्वाधीनता की विचारधारा को भी जन्म दिया। पहले उसका आविष्कार अंग्रेज़ों के साथ एक प्रकार के समझौते और मित्रता के रूप में हुआ किन्तु उसी के नीचे दबी हुई वह धारा भी बह रही थी जो ग़ुलामी के इस जुए को उतार फेंकना चाहती थी। इस समय के सभी लेखकों और कवियों के यहाँ इस मिली-जुली भावना के चित्र देखे जा सकते हैं। सर सैयद, 'हाली', नज़ीर अहमद, 'आज़ाद', ज़का उल्ला, 'शिबली' और दूसरे महान लेखक दोनों प्रकार की भावनायें प्रकट करते हैं। इतनी बात अवश्य है कि इनमें से हर-

एक का चेतना का स्तर एक-सा नहीं है। सर सैयद अंग्रेज़ों के बहुत निकट जाना चाहते हैं, धार्मिक और सामाजिक विचारों में ऐसा परिवर्तन चाहते हैं जो मुसलमानों को अंग्रेज़ों के निकट ला सके। 'हाली' और नज़ीर अहमद उनके राजनीतिक विचारों से तो बहुत कुछ सहमत हैं परन्तु उनके धर्मसुधार के विचारों को पसन्द नहीं करते। 'शिबली' उन मुसलमानों से जो अंग्रेज़ी साम्राज्य से मित्रता के पेंग बढाना चाहते हैं, दूर रहने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय का साहित्य विशेषकर उन्हीं जीवन-धाराओं को पकड़ता है जो किसी न किसी प्रकार से सब को अपने वेग में बहाये लिये चली जा रही थीं।

इन लेखकों और कवियों ने उर्दू-साहित्य को जीवन के रचनात्मक कार्यों में लगने का उद्देश्य दिया था। जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना बढ़ती और फैलती गई इनके बाद आने वाले कवियों ने अपने क़दम इनसे आगे बढ़ाये। 'इक़बाल', 'चकबस्त', 'सुरूर' जहाँनाबादी, 'अकबर', 'नादिर' काकोरवी, 'सफ़ी','शाद' अज़ीमाबादी, 'हसरत' मोहानी और अन्य कवियों की रचनायें इस नई चेतना से भरी पड़ी हैं। इनमें से हर-एक अपना अलग-अलग व्यक्तित्व रखता है। उनकी विचारधारायें भी एक दूसरे से टकराती हुई चलती हैं किन्तु जो बात याद रखने की है, वह यह कि चाहे वह ग़ज़ल लिख रहे हों या दूसरे प्रकार की कवितायें हर-एक में राष्ट्रीयता, देशभक्ति, नवचेतना, समाज-सुधार और मानव-प्रेम की भावनायें अधिक मात्रा में देखी जा सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अपने देश की दुर्दशा के साथ-साथ उसकी सुन्दरता भी अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। उन पर उसके प्रेम का नशा इस तरह छा रहा रहा था कि वह एक ओर तो ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध कर रहे थे और दूसरी ओर उसको एक माता या एक प्रेमिका के रूप में पूज रहे थे। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने से पहले ही राष्ट्रीय आन्दोलन बड़ी ऊँची चोटी पर पहुँच चुका था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राष्ट्र एक नये सुनहरे भविष्य का चित्र बना रहा था और उसके लिये अपनी जान की बाज़ी लगाने पर भी तैयार था। १९२० से १९४७ तक की उर्दू-कविता में जो अंग सबसे अधिक सबल है वह इसी राष्ट्रीय चेतना का है। इसका यह अर्थ नहीं है

कि कवियों और लेखकों ने प्रेम भरी कहानियाँ लिखना छोड़ दिया था या प्रकृति की ओर आँख उठाकर नहीं देखते थे, न इसका यह अर्थ है कि उन्होंने अपनी व्यक्तिगत मानसिक समस्याओं को अपनी कविता में कोई स्थान देना छोड़ दिया था वरन् जिस बात की ओर संकेत करना है, वह यह है कि उस समय के सारे छोटे-बड़े कवियों ने किसी न किसी प्रकार से उस राजनीतिक चेतना को प्रबल किया है जो एक आँधी की तरह सारे देश पर छाई हुई थी। इस बीच में बाहर के देशों मे भी बड़े-बड़े परिवर्तन हो चुके थे। चीन ने पुराने साम्राज्य को समाप्त करके एक नये जीवन मे प्रवेश किया था। ईरान में सुधारवाद की हवायें बड़े वेग से चली थी और वहाँ भी बड़े-बड़े परिवर्तन हुये थे। जापान ने रूस को पराजित करके यूरोप के बड़े-बड़े देशों को अपनी प्रगति से चकित कर दिया था। रूस में वाल्सविक आन्दोलन सफल हो चुका था और सारी दुनिया के मज़दूर और किसान वर्ग अधिकारो की माँग कर रहे थे। इन सारी बातों ने उर्दू कविता में जगह पाई।

स्वतंत्रता की घड़ी जितनी समीप आती जा रही थी, कवियों का उत्साह उतना ही बढ़ता जा रहा था। 'सीमाब', 'सफ़ी', 'साग़र', 'जोश', 'मुल्ला', 'रविश, 'फ़िराक़', 'जमील' मज़हरी और उनके साथ नई पीढ़ी के 'मजाज़', 'मख़दूम' 'जज़्बी', 'सरदार', 'साहिर', 'शमीम', 'ज़ैदी' आदि साम्राज्य के विरुद्ध बराबर तीर चला रहे थे। इनकी कवितायें पढ़कर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे रात कट गई है, ऊषा की नई किरन फूटने वाली है और भारतवर्ष उस नये जीवन के स्वागत के लिये तैयार है जो स्वतंत्रता के बाद आने वाला है। 'जोश' ने उसी समय यह लिखा था—

लैलाए-आबोरंग का डेरा क़रीब है
तारे लरज़ रहे हैं, सवेरा करीब है

और आख़िरकार अगस्त १९४७ को वह घड़ी आ ही गई जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। जाफ़र रज़ा ने उर्दू कविता की कहानी इसी जगह से आरम्भ की है और उन सब धाराओं पर निगाह रखी है जो उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न होकर स्वतंत्रता के दिन तक बढ़ती और फैलती चली

आरही थी . इसमें कुछ तो वह थी जिनका परम्पराय उर्दू-काव्य रचना म बहुत पहले से चली आरही थीं और वह भी हैं जिनको स्वतंत्रता-संघर्ष ने जन्म दिया था। उन्होंने इस बात को भलीभाँति अपनी दृष्टि में रखा है कि भारतवर्ष के टुकड़े हो जाने के कारण कुछ ऐसी समस्यायें पैदा हुईं जो मानवप्रेम की उस विचारधारा के विरुद्ध जाती थीं जिसे उर्दू-कवि किसी न किसी रूप में बराबर प्रस्तुत करते रहे हैं। स्वतंत्रता-संघर्ष के आख़िरी बीस वर्षों मे अंग्रेज़ी साम्राज्य ने हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे के सामने ला खड़ा किया था जिससे कि राष्ट्रीय आन्दोलन टूटकर बिखर जाये। साम्प्रदायिकता का विष, स्वार्थपूर्ण नेताओं की सहायता से देश के अंग-अंग में फैल गया और कोने-कोने में ऐसे दंगे होने लगे जिन्होंने अन्त में साम्राज्यवादियों को इसका अवसर दिया कि वह देश को धर्म के नाम पर बाँटने का प्रस्ताव रखें। जो आग उन्होंने भड़काई थी वह स्वाधीन होने के बाद भी सुलगती रही। उर्दू के लेखकों और कवियों ने जिस प्रकार इस साम्प्रदायिक भावना का विरोध किया था उसी प्रकार स्वतंत्रता के बाद भी, इससे घृणा प्रकट की। जाफ़र रज़ा ने बड़े विस्तार के साथ ऐसी बहुत-सी महत्वपूर्ण कविताओं को एकत्रित करके यह दिखाया है कि उर्दू कवियों के यहाँ राष्ट्रीयता और मानव-प्रेम की भावना कितनी प्रबल थी। साम्प्रदायिकता के इस अन्वेषन से गांधीजी की हत्या की कड़ी भी मिलाई जा सकती है क्योंकि अपने अन्तिम दिनों मे गाँधी जी के सामने सबसे बड़ी समस्या यही थी कि अगरचे देश का बटवारा धर्म के आधार पर हुआ है किन्तु भारतवर्ष में सब जातियों को मिल-जुलकर रहने का अधिकार प्राप्त है। उर्दू के बहुत से कवियों ने गाँधी जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये बड़ी भावपूर्ण कवितायें लिखी हैं। उनके देखने से यह प्रतीत होता है कि उनके हृदय में उस अमर शहीद के लिये कितनी श्रद्धा थी जो दिलों को जोड़ते हुये गोली का शिकार हुआ। साम्प्रदायिकता की इस पृष्ठभूमि में जाफ़र रज़ा ने अपनी इस पुस्तक में ऐसी कई कवितायें प्रस्तुत कर दी हैं जो १६४८ में लिखी गई।

इसकी ओर संकेत किया जा चुका है कि उर्दू कवि स्वतन्त्रता को हर रूप मे सराहते थे। उन विदेशों के साथ सहानुभूति प्रकट करते थे जो स्वाधीनता के लिये लड़ रहे थे। उन आन्दोलनों का स्वागत करते थे जो साम्राज्यवाद की जड़ें उखाड़ रहे थे। अब जो उन्हें स्वयं आज़ादी मिली तो

उनकी दृष्टि उन देशों की ओर फिर-से गई जो अब भी इसी संघर्ष में लगे हुये थे। बहुत-से कवियों ने उन देशों की सराहना की है जो स्वाधीनता के लिये अपना खून बहा रहे हैं। इस भावना के पीछे यह विचार भी छिपा हुआ है कि सारे मानवजन आज़ादी के लिये पैदा किये गये हैं। उन्हें इसका अधिकार है कि वे अपने देश में उन्नतिपूर्वक जियें। इसलिये किसी प्रकार का युद्ध या महायुद्ध जो उनकी शान्ति को भंग करे या नये सिर से उन्हें पराधीन बनाने का रास्ता खोले, घृणा और विरोध का पात्र है। आप देखेंगे कि उर्दू कवियों ने विश्वशान्ति आन्दोलन की बड़ी शक्तिशाली कवितायें लिखीं जिनमें बहुत-सी आपको इस पुस्तक में भी दिखाई दे जायेंगी।

इसी प्रकार से जाफ़र रज़ा ने अपनी इस पुस्तक में इस बात की चेष्टा की है कि स्वतन्त्रता के बाद जो समस्यायें कवियों के सम्मुख आईं और जिस प्रकार उन्होंने उनको प्रभावित किया है, उनका उल्लेख उदाहरण सहित कर दिया जाये। यह काम बहुत बड़ा था क्योंकि कवियों की विचार-धारा की सभी सीमाओं को देखना, उन्हें समेट कर उन बातों को ढूँढ़ निकालना, जिनसे उनके विश्लेषण में मदद मिल सके, एक कठिन काम है फिर भी उन्होंने बड़े परिश्रम और सफलता से न केवल काव्य-संग्रहों से वरन् पत्र-पत्रिकाओं और छोटे-छोटे पैम्फ़लेटों से अपने काम की कवितायें निकाली हैं और उन्हें विभिन्न शीर्षकों में बाँटकर अपने विचारों के साथ उन हिन्दी पढ़ने वालों के लिये प्रस्तुत किया है जो उर्दू लिपि में इन्हें पढ़ने का अवसर प्राप्त नहीं कर सके हैं। ऐसा करने में उन्होंने किसी विशेष विचारधारा का आश्रय नहीं लिया है बल्कि उन कवियों को भी ले लिया है जिनके विचार एक दूसरे से विरुद्ध हैं। इसमें वह कवि भी हैं जिन्हें साम्यवादी, समाजवादी और प्रगतिशील कहा जा सकता है और वह भी हैं जो अपने को केवल कलाकार कहते हैं और उनकी सारी शक्ति सूक्ष्म विचारों को नये ढंग से प्रस्तुत करने में लगी रहती है। इसमें प्रयोगवादियों की रचनाओं के उदाहरण भी मिलते हैं और उन ग़ज़ल लिखने वालों के भी जो बने बनाये रास्ते पर चले जा रहे हैं। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने उर्दू कवियों को प्रस्तुत करते हुये किसी एक ही विचारधारा को सामने नहीं रखा है।

मैं समझता हूँ कि आफ़र रज़ा द्वारा लिखित पुस्तक 'आधुनिक उर्दू काव्य-साहित्य', उन सभी पढने वालों को प्रभावित करेगी जो आज की उर्दू कविता के बारे में कुछ जानना चाहते हैं वरन् उन लोगों को भी अपनी ओर आकृष्ट करेगी जो यह जानना चाहते हैं कि उर्दू के कवि किस प्रकार के विचार प्रस्तुत कर रहे हैं और कितने प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं। मुझे आशा है कि उन्होंने अपनी पहली हिन्दी पुस्तक में जिस परिश्रम और लगन का परिचय दिया है वह उनके भविष्य के लिये एक अच्छा शगून होगा और वह इसी प्रकार भाषा और साहित्य की सेवा करते रहेंगे।

प्रयाग, विश्वविद्यालय
अप्रैल २०, १९६३

एहतिशाम हुसैन

अध्यक्ष, उर्दू विभाग

प्राक्कथन

यह पुस्तक मेरी प्रथम हिन्दी कृति है। हिन्दी के माध्यम से उर्दू-काव्य का परिचय कराते हुये मैंने उसकी भाषा-शैली पर भी ध्यान रखा है। इस सम्बन्ध में मैंने स्थान-स्थान पर स्वच्छंदता अपनायी है। कविताओं में विशिष्ट शब्दों को उर्दू-उच्चारण के अनुसार लिखा गया है। परिणामस्वरूप कुछ शब्दों की वर्तनी में परिवर्तन हो गया है। उदाहरणार्थ शाएर : शायर; ख़ोदा : ख़ुदा; मोग़ल : मुग़ल इत्यादि। पुस्तक के प्रकाशन में बड़ी सावधानी बरतने पर भी ग़लतियाँ रह गयी हैं जिन्हें अगले संस्करण में सुधार दिया जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन एवं प्रकाशन में जिन मित्रों एवं गुरुजनों ने मेरी सहायता की है, उनके प्रति मैं आभारी हूँ। ऐसे सभी सहृदयों का उल्लेख करना तो सम्भव नहीं है लेकिन कुछ का ज़िक्र करना मैं आवश्यक समझता हूँ—

डॉ० सैय्यद एजाज़ हुसैन : जिनकी पुस्तक का अनुवाद करते हुये मुझे इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा मिली। यदि किसी को कहीं गुरू का जूठन दीखे तो यह मेरे लिये गर्व की बात होगी।

प्रो० सैय्यद एहतिशाम हुसैन : जिनके ज्ञान-सागर की कुछ बूँदें पाकर इस रचना का शिलान्यास सजा-सँवरा। उन्होंने स्नेह पूर्ण गुरू की तरह अनेक कठिनाइयों में सहायता दी।

प्रो० 'फिराक़' गोरखपुरी : जिन्होंने समय-समय पर अनेक निर्देश देकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाई।

डॉ० रामकुमार वर्मा : जिन्होंने इस पुस्तक का रचनात्मक-मूल्य बढ़ाने में सहायता दी।

डॉ० अज़हर अनसारी : जिन्होंने विषय-वस्तु की तलाश में मेरी सहायता की।

श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा : जिन्होंने मेरी बहुत-सी त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाकर मुझे उनकी शर्मिन्दगी से बचा लिया।

श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी : जिनके मैत्रीपूर्ण प्रोत्साहन ने मुझे अपना भविष्य बनाने में सहायता की। उन्होंने इस पुस्तक की सामग्री के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

श्री सुरेन्द्रपाल : जिन्होंने एक स्नेही मित्र की तरह मेरी इस रचना में दिलचस्पी ली। इसकी भाषा एवं विषय-वस्तु के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये और प्रकाशन के अनुभवों से विशेष सहायता दी।

श्री राजेन्द्रकुमार वर्मा : जिन्होंने इस पुस्तक के सृजन में एक सहयोगी मित्र की तरह सहायता दी।

श्री कृष्णानन्द चौधरी : जिन्होंने एक अभिन्न मित्र और कुशल सहयोगी की तरह इस पुस्तक की तैयारी में दिलचस्पी ली।

श्री राघवेन्द्र प्रताप सिंह : जिन्होंने बड़े परिश्रम और उससे ज़्यादा प्रेम से बिखरे हुये पृष्ठों को शुद्ध लिपि में लिखकर यह पुस्तक तैयार करदी।

श्री टी० सी० द्वादशश्रेणी : जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था करके मुझे दर-बदर की परीशानियों से बचा लिया।

चि० रयाज़ जाफ़र : जिसकी सुशीलता एवं सुयोग्यता देखकर बरबस मेरे दिल से दुआ निकलती है कि ऐसा ही भाई सबको मिले।

सब से अन्त में, परन्तु सबसे अधिक, मैं आधुनिक युग के उन सभी कवियों, लेखकों और आलोचकों का आभारी हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे इस पुस्तक की रचना में किसी प्रकार की सहायता मिली।

'शबिस्तॉ'
उतराँव, इलाहाबाद

जाफ़र रज़ा

८-८-६३

पहला अध्याय

स्वतंत्रता के पूर्व उर्दू-काव्य की रूपरेखा

साहित्य में सामाजिक पृष्ठभूमि एवम् समसामयिक घटनाओं का वही महत्व है जो कि मानव प्रकृति की रचना में वातावरण और ऐतिहासिक परिस्थितियों का है। भाषा अपनी प्रारम्भिक स्थिति से लेकर शब्द-संचय, विचार-संकलन और कल्पना को जागरूक करते समय तक सब कुछ इसी आधार पर ग्रहण करती है। यह दूसरी बात है कि अनुचित नेतृत्व के कारण उसके आवश्यक चिह्न लुप्त हो जायें और वह केवल शब्दों का गोरखधन्धा होकर रह जाये। जब कभी भी भाषा इन भ्रमों में पड़ जाती है तो जीवन को उन्नतिशील बनाने में सहायक होने के बजाय विघटन की ओर अग्रसर होने लगती है; ऐसी स्थिति में साहित्य का उद्देश्य समाप्त हो जाता है और वह केवल शब्द-जाल, पद-विन्यास आदि के चमत्कारों में उलझ जाती है।

उर्दू साहित्य प्रारंभ से ही अपनी परिस्थितियों का आलेखन करता रहा है। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद (१७०७ ई०) से देश में आये दिनों के गृह-युद्ध, नादिरशाह व अब्दाली के आक्रमण और यूरोप-वासियों की कूटनीति से दिल्ली की जो स्थिति हो गई थी उसका प्रतिबिम्ब उस समय की शायरी में देखा जा सकता है। यह स्थिति इतनी जटिल थी कि पतनोन्मुख मोग़ल साम्राज्य के उत्तराधिकारी मोहम्मद शाह रँगीले आदि के भोग-विलास से भी भुलाई न जा सकी। उस समय के प्रत्येक कवि की रचना में समसामयिक दुख-दर्द की मार्मिक वेदना स्वतः उभर कर प्रतिबिम्बित हो गई है। 'मीर' की पूरी शायरी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस काल के समस्त कवि नितान्त समसामयिक अन्तर्वेदना से परीशान हैं। चाहे 'सौदा' की तरह व्यंग्य करके दिल ख़ुश कर लेते हों, 'मोमिन' की तरह जहाद का नारा लगाते हों या 'ज़ौक़' की तरह अन्नदाता के गुन बखानते हों। सारांश यह कि लक्षण चाहे जो हो व्यंजना में सब उसी आत्म-पीड़ा से दुखी थे। 'ग़ालिब' की भाँति सब के सामने एक ही समस्या थी और वह थी 'दिल्ली में रहकर खाने' की। यही प्रश्न सबको आपत्ति में डाले हुये था।

दिल्ली से हटकर आसफ़उद्दौला के लखनऊ आइये तो चारों ओर प्रसन्नता, प्रफुल्लता और संतोष का वातावरण छाया हुआ दीख पड़ेगा। 'इनशा', 'जुरअत', 'आतिश' के अतिरिक्त 'जान साहब' और 'रंगीन' भी सामने आयेंगे जो केवल आनन्द लेने के लिये शाएरी करते थे। लखनऊ के नवाबों ने राजनीति के क्षेत्र में मोहरों के पिटने पर भी जो धन प्राप्त किया उसे अपनी ऐय्याशी एवम् भोग-विलास में व्यय न करके वे समस्त राज-कोश को जनता में बाँट देते थे। उनकी यह उदारता एवं दानशीलता लोकोक्तियों एवम् अन्य प्रकार की लोक-व्यंजनाओं में अभिव्यक्त होने लगी थी। उर्दू कवियों ने इन परिस्थितियों का आलेखन इतनी सुगमता के साथ किया है कि दिल्ली के कवि भी लखनऊ आकर उसके पुरबहार अंचल में बुलबुल की तरह चहकने लगे।

दिल्ली और लखनऊ के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में हमें भारत के जीवन का वह अंग भी दीखता है जिसमें धर्म को एक विशेष स्थान प्राप्त है। यह विशेषता कट्टरता एवम् रूढ़िवादिता के बजाये प्रेम, स्नेह व आदर की भावनाओं को प्रश्रय देती रही है। ये उदात्त भावनायें उर्दू साहित्य को सूफ़ी मत के प्रभाव से प्राप्त हुई हैं। प्रेम, स्नेह आदि की विशिष्ट भावनायें उर्दू में प्रारम्भ से ही मिलती है। दक्षिण का अधिकांश साहित्य-संधान सूफ़ीमत पर आधारित है। इसके अतिरिक्त फ़ारसी शाएरी का वह युग जिससे उर्दू प्रभावित हुई थी उसमें भी सूफ़ीमत को प्रमुख्य प्राप्त था। अतः स्वाभाविक रूप में उर्दू कवियों ने भी अन्य सूफ़ियों की तरह आडम्बर-प्रधान तथा रूढ़िग्रस्त साम्प्रदायिक धर्म की निन्दा की। 'क़ुली क़ुतुबशाह', 'वली', 'मीर', 'दर्द' और 'ग़ालिब' आदि ने मुसलमान होकर अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के प्रति रुचि प्रकट की। मुल्लाओं, मौलवियों और वाइज़ों की बुराई की गई। नबियों और पैग़म्बरों पर व्यंग्य किया गया और दूसरे धर्मों के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई। असूफ़ी कवियों ने भी धर्म को अपना विषय बनाया और अपने तौर पर इसका विश्लेषण किया। इस अनुपंग में मरसिया कहने वाले कवियों को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। यह लोग सूफ़ियों की तरह निराशावाद के शिकार न थे। जीवन के संघर्ष में इनका विश्वास था। ये अपने मरसिया में इमाम हुसैन और उनके साथियों के त्याग एवं बलिदान की वह दुखमय गाथा लिख रहे थे जिसके अंग-अंग में जीवन नई करवटें बदल रहा है।

'ज़मीर', 'अनीस', 'दबीर', 'तअश्शुक', 'इश्क़', 'मोनिस', 'रशीद', 'नफ़ीस' इत्यादि कवियों ने प्रेम का व्यापक रूप सामने रखा। इस व्यापकता में प्रेमी और प्रेमिका के अतिरिक्त पारिवारिक प्रेम को भी उचित स्थान दिया गया था। दैनिक जीवन का चित्रण करते समय उन्होंने माता, पुत्री, बहन, चाची, मौसी, पिता, चाचा, पुत्र, भाई इत्यादि की भावनाओं को इतनी कलाकारी से पेश किया कि अब तक साहित्य में जो अभाव अनुभव होता था उसकी पूर्ति हो गई।

इसे उर्दू का दुर्भाग्य कहिये अथवा संयोग कि इसका प्रारम्भिक विकास ऐसे समय में हुआ जब मोग़ल राज्य अपनी आख़िरी घड़ियाँ गिन रहा था। भारत पर विदेशी आधिपत्य मोग़ल काल में पनपी हुई उदार विचारधाराओं को नष्ट करने में संलग्न था। जनता में अन्धविश्वास व आत्महीनता का प्रभुत्व बढ़ने लगा था। आत्महीनता एवम् अन्धविश्वास के अन्धकार में उर्दू कवियों की रचनाओं में उस समय के सामाजिक जीवन का चित्रण भी उसी रूप में मिलता है। यह शृंखला धीरे-धीरे प्रौढ़ बन जाती किन्तु १८५७ ई० की जनक्रान्ति ने भारत के समस्त जीवन को झिंझोड़ दिया। उर्दू के कवि भी इस राजनैतिक क्रान्ति से प्रभावित हुये। देश के नवीन वातावरण में उन्हें अपनी बहुत सी बातें पुरानी और संकीर्ण लगने लगीं। मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने समय की पुकार को अभीष्ठ रखते हुये नवीन विचारधारा के नेतृत्व का भार अपने सिर पर लिया। 'हाली' के सहयोग से उन्होंने देश में एक नई चेतना फैलाई। यह चेतना उर्दू-काव्य-साहित्य के लिये एक सर्वथा व्यापक दिशा की आधारशिला सिद्ध हुई। 'अकबर', 'इक़बाल', 'इसमाइल', 'चकबस्त', दुर्गासहाय 'सुरूर' आदि ने जीवन के अनेकानेक मूल्यों पर प्रकाश डाला। उर्दू काव्य साहित्य की यह नवीन प्रवृत्ति कई प्रकार से अपने प्राचीन भण्डार से अधिक श्रेष्ठ थी। यह नया भाव बोध कल्पना, उत्तम शैली, उद्‌गार एवं रीति का खण्डन कर के अनुभूतियों के विभिन्न पक्षों एवम् गहराइयों को जन्म देने में सफल सिद्ध हुआ। शाएरी की विशेषताओं को सर्वथा नये माप-दण्ड मिले। 'इक़बाल' ने विशेष कर नवीन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अपने असाधारण ज्ञान एवं विचारधारा से नवीन युग की शाएरी को कल्पना एवं कला में इतना श्रेष्ठ कर दिया कि वह अपने पर गर्व करने योग्य हो गई।

उर्दू शाएरी प्रारंभ से ही समय की पुकार का साथ देकर अपनी जागरूकता का प्रमाण देती रही है। भारत की पराधीनता के युग में देशवासियों का प्रथम एवं प्रमुख कर्त्तव्य भारत को दासता से मुक्त कराना था। इस उपलब्धि के लिये वे कांग्रेस के अस्तित्व के पूर्व से ही संघर्ष कर रहे थे। उर्दू कवि इस अनुषंग में भारत की किसी भाषा से पीछे नहीं रहे। अपनी आज़ादी के लिये लड़ते-लड़ते उन्हें उन सब देशों के प्रति सहानुभूति हो गई जो उनकी तरह आधीन थे। उनका अन्तर्राष्ट्रीय विवेक उस समय भी इतना विकसित था कि जापान की उन्नति, तुर्की के परिवर्तन और साथ ही साथ यूरोप वालों के अत्याचार आदि से भी वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। 'इक़्बाल', 'चकबस्त', 'हसरत' और 'जोश' इत्यादि कवि देश की पराधीनता से दुखी होकर उसकी स्वतंत्रता के उपायों पर विचार करके जनता के हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न कर देना चाहते थे कि वे स्वयं क्रियाशील होकर अपनी बेड़ियों को काटने के लिये उत्सुक हो जायें।

पहले महायुद्ध और विशेषकर रूस की जनक्रान्ति ने विश्व के समस्त राज्यों की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट कर ली थी। भारत भी कार्ल मार्क्स की विचार-धारा से प्रभावित हुआ और उर्दू कवि महलों के बजाय झोपड़ियों की बातें करने लगे। इसी बीच सज्जाद ज़हीर ने प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डाली। यह आन्दोलन उर्दू की परम्परागत शाएरी के खण्डन में सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना को परिलक्षित करने वाला पहला क़दम था। जिस भावधारा की कसमसाहट हमें 'हाली', 'इक़्बाल', 'चकबस्त' आदि कवियों में राष्ट्रीय भावनाओं से उद्भूत काव्य में मिलती है, उसी से विकसित होकर प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा परिचालित साहित्यिक आन्दोलन में सहसा एक नये आयाम का विकास हुआ और वह था, वर्ग संघर्ष का, नयी यथार्थवादी दृष्टि का, पददलित, शोषित किसान-मज़दूर के जीवन-संघर्ष और उत्कर्ष का!

इसी समय फ़्रायड का सिद्धान्त उर्दू के कवियों के सामने आया जिसमें संसार की समस्त समस्याओं का कारण यौन (Sex) कुण्ठा बताया गया था। भारतवासी अपने सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के ऊहापोह से परेशान थे। परिणाम स्वरूप कुछ कवि इस मत के भी शिकार हो गये। परन्तु सामूहिक रूप से कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों के सामने फ़्रायड का सिद्धान्त न टिक सका। कवियों में सामाजिक एवम् राजनैतिक विवेक बढ़ता गया और वे अपने दैनिक

जीवन की समस्याओं पर विचार करने लगे। सामाजिक यथार्थ, उसकी कटुता और उसके अपवाद में कहीं अधिक जीवन आभासित हुआ। उस युग के कवि में वह अधिक तेज़ी से उभर कर आया। इसी समय भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन अपने पूरे वेग से आगे की ओर बढा। जलियानवाला बाग़ के खून की लाल धारायें, असहयोग आन्दोलन, हिन्दू मुसलिम सहयोग, जेल जाने का आत्मोत्सर्ग, जमींदार-किसान संघर्ष, साइमन कमीशन, राउन्ड टेबुल कांफ्रेंस, अगस्त, ४२ का विराट संग्राम, आज़ाद हिन्द फ़ौज, नेता जी की ललकारें इत्यादि समय-समय पर भारत के राजनैतिक जीवन को प्रभावित करती रहीं। उर्दू कवियों ने भी अपने कर्त्तव्य की पूर्ति में कोई संकोच नहीं किया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में बराबर भाग लिया। परिणामस्वरूप आज 'जोश' मलीहाबादी, 'साग़र' निज़ामी, फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', अहमद नदीम क़ासिमी, सरदार-जाफ़री, 'शमीम' करहानी, 'मजाज़' लखनवी, एह-सान दानिश, अली जवाद ज़ैदी, 'मख़दूम' मोही उद्दीन, जाँनिसार अख़्तर के नाम जाज्वल्यमान नक्षत्रों की भाँति उर्दू के साहित्यिक इतिहास पर फैले हुये हैं।

उर्दू शाएरी शुरू से ही भारतीयता को साहित्य में एक विशेष महत्व देती आई है। इसकी भाषा एवं शैली का अध्ययन कीजिये तो यह बात साफ़ हो जाती है कि इसके प्रारम्भिक विकास के समय में बाबा गंजशंकर और मीर तक़ी 'मीर' जैसे सन्तों ने 'मसजिद' को गो० तुलसीदास की भाषा में 'मसीत' ही कहना पसन्द किया है। राष्ट्रीय एवं पौराणिक कथाओं के संदर्भों, प्रतीकों और बिम्बों को साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त था। साथ ही देशी-विदेशी का भेदभाव न मानते हुये अभारतीय प्रतीकों, बिम्बों एवम् लोकोक्तियों के आलम्बन भी शाएरी में प्रयुक्त किये गये परन्तु सामूहिक रूप में भारत की पवित्र भूमि से सम्बन्ध रखने वाला यहाँ की मिट्टी की गंध वाली नितान्त भारतीय प्रकृति को विस्मृत न कर सका और भारतीयता का लक्ष्य तत्कालीन उर्दू साहित्य में उभर कर सामने आने लगा। कृष्ण और राधा की प्रेम लीला, राम, लक्ष्मण और सीता के त्याग एवं स्नेह की कथायें, कौरव और पांडवों के संघर्ष के अतिरिक्त वैदिक देवता, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और महेश का भी वर्णन तत्कालीन शाएरी में मिलता है। इसी प्रकार दशहरा, होली, बसन्त, दीवाली, रक्षा-बन्धन इत्यादि त्योहारों पर भी बहुत

कुछ लिखा गया है। इस सम्बन्ध में 'क़ुली क़ुतबशाह', 'वली', 'सौदा', 'मीर', 'इन्शा', 'नासिख़', 'आतिश' और विशेषकर 'नज़ीर' अकबराबादी का नाम लिया जा सकता है। रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतगीता आदि धार्मिक पुस्तकें भी काव्य रूप में लिखी गईं। जिसमें शंकर दयाल 'फ़रहत', बिहारी लाल 'बहार', सूरज नारायन 'मेहर', जगन्नाथ 'खुशतर', सूरज प्रसाद 'तसव्वर', बनवारी लाल 'शौला' आदि प्रमुख हैं। उर्दू शायरी का प्रारम्भिक युग एक दृष्टि से विचित्र प्रकार के भाषिक प्रयोग का युग रहा है। कवियों ने फ़ारसी, अरबी, संस्कृत और अन्य स्थानीय भाषाओं से शब्दों का चुनाव करते समय बड़े विवेक से काम लिया। उन्होंने इस सम्बन्ध में उर्दू की अपनी प्रकृति पर विशेष दृष्टि रखी और जहाँ भी कोई शब्द उन्हें खटका आवश्यकतानुसार उसके उच्चारण अथवा अर्थ में अन्तर करके अपना लिया। उर्दू जब तक जनता के भावों को प्रधानता देती रही उसकी प्रगति इसी तरह रही परन्तु जब इसे दरबारों की मुसाहबत मिल गई तो इसकी भावना भी प्रभावित हुई। 'मीर' के बाद कवि जब अनुचर हो गये तो भावों के कृत्रिम बोझ के तले हाँफने लगे और बात-बात पर फ़ारसी और अरबी शायरी से प्रमाण माँगा जाने लगा। 'सौदा' व 'मीर' के बाद से 'दाग़' तक उर्दू शायरी का कारवाँ इसी प्रकार चलता रहा। 'दाग़' के बाद नवीन युग आया जो अपनी विभिन्नता के लिये प्रसिद्ध है। इस युग में कल्पना एवं विचारधारा की उन्नति के साथ-साथ भाषा एवं शैली की शुद्धता पर भी ध्यान दिया गया। यह विवेक पहले से बढ़ा था इसलिये एशिया के अलावा योरुप की भाषाओं से भी शब्द लिये गये। 'सौन्दर्य का आदर्श' बदल गया तो गुल, बुलबुल, शमा, परवाना, रहबर, मंज़िल के साथ-साथ रोटी, चावल, गेहूँ, मशीन, मज़दूर, और राइफ़ल जैसे शब्दों और संस्कारों का प्रयोग भी होने लगा।



दूसरा अध्याय

स्वतंत्रता की उत्सर्ग-वेदी

स्वतंत्रता मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है। सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों प्रकार के जीवन में स्वतंत्रता को समान महत्व प्राप्त है। पराधीन जातियाँ अपनी कल्पना, निष्ठा एवं संस्कार के साथ-साथ विकास की संभावनायें भी खो देती हैं। आत्मबल और स्वाभिमान का अन्त हो जाता है। शक्ति सम्पन्न एवम् सत्तारूढ़ शक्ति को भगवान मानने पर विवश कर देता है। दीनता एवम् आत्महीनता की भावना को संतोष देने के लिये वह धर्म एवं समाज से भी वैधता उत्पन्न करता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि पराधीन जाति के उबरने की अब कोई भी आशा नहीं है, परन्तु राष्ट्रीयता बहुत दिनों तक पराधीन नहीं रखी जा सकती। धीरे-धीरे जनता को उसके दुर्भाग्य के ही हचकोले जागृति करने लगते हैं और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इतिहास का व्यंग्य भोगते-भोगते कभी-कभी उन्हीं में से कोई ऐसा ज्ञानी योद्धा जन्म लेता है जो उनके नेतृत्व का भार वहन करके सम्पूर्ण जाति में चेतना की लहर दौड़ा देता है। इस जागरण की बेला में समूची जाति को नये सृजन की पीड़ा और अग्नि-परीक्षा भोगनी पड़ती है। अस्तु मार्गबाधक तत्वों को रास्ते से हटाने में कठिनाइयाँ तो सहनी पड़ती हैं; लेकिन अन्त में सत्य की विजय होती है।

भारत की पराधीनता की बात, कहने के लिये बहुत लम्बी बनाई जा सकती है। आर्यों तथा उनके बाद मुसलमानों के आधिपत्य पर भी विवाद किया जा सकता है परन्तु वास्तव में उस समय से भारत की पराधीनता का प्रश्न उठाना बड़ी भूल पर आधारित होगा। भारत में आर्य या मुसलमान दोनों, चाहे जिस भी उद्देश्य से आये हों, सत्य यह है कि भारत की पवित्र भूमि ने उन्हें इस प्रकार आत्मसात कर लिया कि वे यहीं के हो रहे। उन्होंने भारत को ही अपनी मातृभूमि समझा और इसी के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया। इसलिये भारत की पराधीनता मूलतः आर्यों या मुसलमानों से न प्रारंभ होकर उस समय से प्रारंभ होती है जब मोग़ल राज्य की

सत्ता पथ-भ्रष्ट हो कर शृंखलित हो रही थी जिससे षड्यंत्रकारी अँग्रेज़ जाति ने लाभ उठाकर समूचे देश पर अपना अधिकार जमा लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारत की पराधीनता अंग्रेज़ों की सत्ता स्थापित होने के बाद से प्रारंभ होती है और उनके भारत छोड़ने के साथ-साथ पराधीनता के युग का अन्त हो गया।

अंग्रेज़ भारत में विजेता के रूप में न आये थे और न उन्होंने यहाँ का राज्य-सिंहासन युद्ध करके ही प्राप्त किया था। प्रारम्भ में उनकी स्थिति केवल विदेशी व्यापारी की ही थी। इस व्यापार में ही उन्होंने कुचक्रपूर्ण षड्यंत्रों का प्रयोग किया था। भारत का राज्य पाने के पूर्व वे स्वयं अपनी आर्थिक विपन्नता में पड़े हुये थे। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने उन्हें एक ऐसी स्थिति पर लाकर खड़ा कर दिया था जिसमें उन्हें या तो अपने माल के लिये नये बाज़ार ढूँढ निकालने थे अथवा आर्थिक दुर्दशा का शिकार होकर भूखों मर जाना था। इस नये बाज़ार की तलाश में ही ये भारत भी आये थे। यहाँ उन्होंने देशवासियों में फूट और वैमनस्य अनुभव किया और धीरे-धीरे उनके सभी कुचक्र सफल सिद्ध होने लगे। इन सब का परिणाम यह हुआ कि भारतवासियों ने अपनी ही त्रुटियों के कारण उन्हें बाज़ार के साथ-साथ राज्य-सिंहासन भी सौंप दिया। भारत का राज्य हाथ में आने के बाद उन्होंने अपने आर्थिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये अपने वाणिज्य की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया। इस सिलसिले में उन्होंने सबसे पहले यहाँ के कला-कौशल को समाप्त किया। यहाँ के वातावरण में पनपी कला एवम् साहित्यिक दृष्टि के प्रति वे उदासीन ही नहीं रहे वरन् विध्वंसात्मक कार्य भी करने लगे। परिणामस्वरूप भारत का एक अच्छा वर्ग जो अपने उद्योगों से सुन्दर उत्पादन करके जीविकोपार्जन करता था, बेकार व बरबाद हो गया। कार्लमार्क्स ने अपने एक लेख में भारत की इस दुर्दशा पर लिखा है—

> "इसमें शंका नहीं कि अंग्रेज़ों ने भारत पर जो अत्याचार किये वे उन अत्याचारों से विभिन्न होने के साथ-साथ अत्यधिक तीव्र भी हैं, जिनका सामना भारत को उससे पूर्व करना पड़ा। गृहयुद्धों, आक्रमणों, क्रान्तियों और अकालों ने भी भारत को बहुत नष्ट किया परन्तु उनका प्रभाव साधारण रूप में तटस्थ होता था। इंगलिस्तान ने हिन्दुस्तान की सामाजिक व्यवस्था

अस्त-व्यस्त कर दी। उस पर आश्चर्य यह है कि किसी नवीन व्यवस्था के शिलान्यास की कोई संभावना नहीं दीखती। हिन्दुस्तान ने अपनी पुरानी दुनिया खो दी और नई हासिल न कर सका। ऐसा दीख पड़ता है कि बरतानिया की पराधीनता ने वर्तमान भारत का नाता उसकी पिछली परम्पराओं और पुराने इतिहास से पूर्णतः तोड़ दिया है।"[१]

प्रारम्भ में भारत को अंग्रेज़ों की उस कूटनीति का आभास मात्र भी नहीं हुआ। अस्तु दिन प्रतिदिन उनकी आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) की कमर टूटी जा रही थी। वे अंग्रेज़ों से मुक्ति केवल इसलिये ही नहीं चाहते थे कि पराधीनता उनके आत्म-सम्मान के विरुद्ध थी बल्कि परिस्थितियों ने इस पराधीनता के दुष्परिणाम को भी स्पष्ट करके उन्हें चौंका दिया था। धीरे-धीरे भारतीय अच्छी तरह समझ गये कि अंग्रेज़ी शासन केवल बौद्धिक दासता का ही चिह्न नहीं है वरन् देश की आर्थिक सम्पन्नता का भी दिवाला निकल रहा है। आत्मसम्मान पर प्राण निछावर करने वाले भारत ने अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। १८५७ में सम्पूर्ण भारत एकमत हो कर विदेशियों के बहिष्कार पर जुटा परन्तु आपस की फूट, संगठन की कमी और अन्य कारणों से यह प्रथम प्रयास असफल रहा।

विद्रोह समाप्त होने पर अंग्रेज़ों ने भारतीयों को कठोर प्रतरणायें दीं। देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वालों को निर्वासन, जेल आदि तो दिये ही गये, साथ ही देश के अनुशासन-पूर्ण संगठन को भी कठोर कर लिया गया। स्वतंत्रता की बची-खुची प्रेरणा को दबाने के लिये जनता पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये किन्तु शहीदों के खून की लाली रंग लाये बिना न रही। समस्त दमनकारी नीतियों और जनमत को दबाने के प्रयासों के बीच सहसा एक नयी ज्योति ने जन्म लिया। २८ दिसम्बर १८८५ के एक मनोहर प्रभात में काँग्रेस की स्थापना हो गई। शुरू में वह जनता की कठिनाइयों को सुधारने के लिये सरकार से प्रार्थनायें करती थी और इसी आधार पर देशवासियों का जीवन सुखपूर्ण बनाना चाहती थी। अंग्रेज़ी शासन के कठोर अनुशासन में इसको भी गुंजाइश न थी। धीरे-धीरे काँग्रेस ने भी स्वर बदला। अब भारत

(१). The Daily Tribune, Newyork, 25th June 1853.

ने आत्मसम्मान के साथ परिस्थितियों से निपटने का प्रण किया। दादा भाई नौरोज़ी, बद्रूद्दीन जी तैयब, लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि नेताओं के नेतृत्व में नागरिक अधिकारों की माँग और तीव्र रूप में व्यक्त होने लगी। १९१८ के बाद महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का रूप ही बदल गया। प्रार्थना और याचना के स्थान पर अब यह एक आन्दोलनकारी संस्था हो गई। जनवाणी मुखरित होने लगी। धीरे-धीरे स्वतंत्रता की गूँज इतनी व्यापक हो गई कि देश में मरणव्रत, सत्याग्रह और बाइकाट से एक नई स्फूर्ति-सी आ गई। आगे चल कर कांग्रेस में उग्र विचारों का समावेश हुआ। अमन-पसन्द विचारों के साथ-साथ बायें पक्ष का भी ज़ोर बढ़ने लगा। सुभाष चन्द्र बोस की गर्म विचारधारा ने काँग्रेस में नई गर्मी पैदा करदी। १९२९ में कांग्रेस के मंच से जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण-स्वतंत्रता की माँग की गई। आगे चल कर सुभाष चन्द्र बोस इससे भी तीव्र विचारों के समर्थक हो गये। दूसरे महायुद्ध के साथ-साथ भारत ने भी अपनी संकल्प-शक्ति का परिचय दिया। देशव्यापी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' गाँधी जी के नेतृत्व में चलाया गया। हज़ारों लोग जेल गये। भारत की सीमाओं से दूर जा कर सुभाष चन्द्र बोस ने विदेशों में 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' की स्थापना की। यह सर्वथा एक नया प्रयास था। विदेशों की सहायता से सुभाष चन्द्र बोस ने सशक्त आन्दोलन द्वारा भारत को पराधीनता से मुक्त कराने की चेष्टा की।

इतिहास साक्षी रूप में यह बताता है कि १८५७ के विद्रोह के बाद 'भारत छोड़ो अन्दोलन' तक अँग्रेज़ों ने यह देख लिया था कि यदि भारत की दोनों महान जातियाँ हिन्दू और मुसलमान एकमत रहीं तो बहुत दिन तक उनका राज्य सलामत नहीं रह सकता। इसके लिये १८५७ के बाद ही से उन्होंने साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को उभार कर देश की एकता खंडित करने की चेष्टा प्रारम्भ कर दी थी। कांग्रेस में हिन्दुओं के बहुमत से उन्होंने मुसलमानों के हृदय में यह भ्रम पैदा करना शुरू किया कि हिन्दू-आधिपत्य तुम्हारे अधिकारों का हरण कर लेगा। भारत की स्वतंत्रता के बाद तुम हिन्दुओं के आधीन हो जाओगे[1]। १८५७ से १९०६ तक अंग्रेज़ भारत में केवल इसी

(१) जवाहर लाल नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है :

"Yet Indian Nationalism was dominated by Hinduised look, so a conflict arose in the Muslim mind." DISCOVERY OF INDIA P. 304 (SIGNET PRESS, CALCUTTA.)

एक विष को फैलाने में लगे रहे। परिणामस्वरूप १६०६ ई० में ढाका में मुसलिम लीग की स्थापना हो गई। उसी समय बंग-भंग की घटना ने पूरे देश को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। १६२० में एक बार फिर हिन्दू-मुसलिम एकता से राष्ट्रीय आन्दोलन में जान पड़ी। मुसलमानों का बड़ा वर्ग तुरकी की ख़िलाफ़त के विसर्जन से अंग्रेज़ों के विरुद्ध हो गया था। इससे भारत के असहयोग आन्दोलन को शक्ति मिली और ऐसा मालूम होने लगा कि आपसी मतभेद अब शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगे। किन्तु शीघ्र ही वह आवेश और उद्गार समाप्त हो गया। अंग्रेज़ों की कूटनीति ने फिर दोनों को अलग करना शुरू किया और यह दुर्दशा इतनी बढ़ी कि मिस्टर मुहम्मद अली जिनाह के नेतृत्व में मुसलिम लीग मुसलमानों के लिये पृथक् राज्य की माँग करने लगी। अल्लामा डाक्टर सर मोहम्मद इक़बाल जैसे राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्ति के विचारों पर बुरा प्रभाव पड़ा। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का तराना गाने वाला कवि भी एक ख़ालिस इसलामी राज्य की कल्पना करने लगा। देश में अंग्रेज़ों का वह षड्यंत्र सफल होता गया जिसके लिये वे लगातार प्रयास करते आ रहे थे। ऐसा लगने लगा जैसे हिन्दू मुसलमानों के बीच भाईचारे का व्यवहार समाप्त हो जायगा। प्रायः समस्त बुद्धिवादी वर्ग यह समझने लगा कि अब हिन्दू और मुसलमानों को अलग-अलग कर देने के अलावा कोई दूसरा उपाय संभव नहीं हो सकेगा। यद्यपि भारत का साधारण मुसलमान मुसलिम लीग के इस विचार से सहमत नहीं था फिर भी अँग्रेज़ी शासन-सत्ता मुस्लिम लीग को मान्यता दे कर इस विष को प्रश्रय देती रही। शिया पोलीटिकल कांफ्रेंस और जमीअतुल-उलमा जैसी नितान्त राष्ट्रीय संस्थाओं, ने खुल्लम-खुल्ला इस विष भरे प्रस्ताव का विरोध किया। इन संस्थाओं ने अँग्रेज़ों के कुचक्रों और मुस्लिम लीग के विचारों को देशघातक बताया। लेकिन हवा का रुख़ अँग्रेज़ों ने मोड़ दिया था। हिन्दू मुसलमान के बीच की बनावटी खाइयों को मुस्लिम लीग और देश की अन्य साम्प्रदायिक संस्थाओं ने दिनब-दिन गहरा ही किया।

इसी ऊहा पोह में आज़ादी का कारवाँ अपनी मंज़िल की ओर बढ़ता रहा। कठिनाइयाँ पग-पग पर क़दमों को रोकती थीं परन्तु देशभक्ति के भावावेक में समस्त जागरूक जनता आगे ही बढ़ती जाती थी।

प्रथम महायुद्ध और फिर राउलट बिल द्वारा भारतीय जनता को धोखा दिया जा चुका था। अमृतसर के जलियाँवाले बाग़ की सभा में निःशस्त्र भारतीयों पर हिंसक अँग्रेज़ों के प्रतिनिधि जनरल डायर ने क़तले-आम किया। किन्तु इन साम्राज्यवादियों की गोलियाँ खाकर भी देश का आत्मबल कम नहीं हुआ। पूर्ण स्वतंत्रता की भावना उत्तरोत्तर तीव्रतम होती गई। १९१९ ई० के दिसम्बर में कांग्रेस के अमृतसर के अधिवेशन के अनुसार 'असहयोग आन्दोलन' चलाया गया तदनुसार १९२१ ई० में महात्मा गाँधी ने बारडोली (ज़िला सूरत) में 'कर बन्दी' की तैयारी की और कांग्रेस के लाहौर के अधिवेशन में १९२९ ई० भारत का लक्ष्य 'पूर्ण स्वतन्त्रता' निश्चित कर दिया गया।

भारत में राष्ट्रीयता की भावना का प्रारम्भ में अँग्रेज़ी सरकार ने बलपूर्वक दमन करना चाहा किन्तु जब इसमें सफलता न मिली तो रिआयतें देने के वादों के जाल फेंके गये। लन्दन से कितने ही मिशन और कमीशन इस सिलसिले में भारत आये। परन्तु देश का स्वतंत्रता आन्दोलन धीरे-धीरे उस जगह पर पहुँच चुका था जहाँ से उसको आज़ादी की मंज़िल साफ दिखाई देने लगी थी। भारत अब सम्पूर्ण स्वतंत्रता चाहता था। अतः जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी वर्धा की जुलाई १९४२ ई० का प्रस्ताव पुनः ७ अगस्त को बम्बई के अधिवेशन में स्वीकार किया गया तो सरकार परीशान हो उठी और उसने अन्धाधुन्ध ढंग से कांग्रेसी नेताओं को गिरफ़्तार करना शुरू कर दिया। इससे सारे देश में हाहाकार मच गया। जनता 'इनक़लाब ज़िन्दाबाद' और 'भारत छोड़ो' की ललकार देती हुई संग्राम में कूद पड़ी। रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं, बैंक व डाकख़ाने लूटे गये, दफ्तर जला दिये गये, तार काट डाले गये। नेताओं के न होने के कारण हिंसात्मक कार्य भी किये गये। अंग्रेज़ों ने भी अत्याचार की हद कर दी। सिर्फ शंका हो जाने पर लोगों को फांसी दी जाने लगी, जायदादें ज़ब्त की जाने लगीं और ऐसा जान पड़ा कि भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन सदैव के लिये कुचल के रख दिया गया। ब्रिटिश-प्रधान मंत्री सर विंस्टन चर्चिल भारत की स्वतंत्रता से निरपेक्ष हो गया।

हिन्दुस्तान की आज़ादी को शायद अभी कुछ देर लग जाती कि बरतानिया की राजनीतिक स्थिति बदल गई। जुलाई १९४६ ई० के चुनाव में

चर्चिल का रूढ़िवादी दल (Conservative Party) पराजित हो गया। उसकी जगह श्रम दल (Labour Party) अधिकार में आया। मिस्टर क्लेमेन्ट एटेली बरतानिया के प्रधान मंत्री हुये। श्रम दल साधारण रूप में भी भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में था। अतः उस समय के कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुलकलाम 'आज़ाद' ने प्रधान मंत्री को उनकी जीत पर बधाई देते हुये उनके पहले के वादों को याद दिलाया। मिस्टर एटेली ने मंत्रिपद सँभालने के बाद ही फ़रवरी १६४६ को घोषणा की कि शीघ्र ही एक मंत्रिमण्डलीय सद्भावना दल (Cabinet Mission) भारत जायेगा जो वहाँ की स्थिति का अध्ययन करने के बाद विधान बनाने के लिये आधार तैयार करेगा। यह मिशन २ अप्रैल १६४६ ई० को भारत आया। कैबिनेट मिशन की इस उद्घोषणा में एक ऐसे विधान के लिये लेबर सरकार ने अनुमति दी थी जिसमें अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं, आयात-निर्यात और सेना के अतिरिक्त, अन्य सभी प्रकार के अधिकार प्रान्तों को दे दिये गये थे। इस प्रस्ताव में कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनों को अन्तरिम काल के लिये सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया गया। कांग्रेस ने वाइसराय लार्ड वैविल का आमंत्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया परन्तु मुसलिम लीग बटवारे से कम के सौदे पर तैयार न थी। बात बढ़ती गई और मतभेद भी बढ़ता रहा। अन्त में मुसलिम लीग तैयार हो गई और लार्ड वेविल के अनुरोध पर तय हुआ कि कोई महत्वपूर्ण पद मुसलिम लीग को दिया जाये। कांग्रेस वित्त विभाग (Finance Department) देने पर राज़ी हुई और मुसलिम लीग का प्रतिनिधि उसपर नियुक्त हो गया। वित्त-विभाग का हाथ में आना था कि मुसलिम लीग ने साधारण कार्य में भी बाधा डालना शुरू किया। वित्त का महत्वपूर्ण पद अधिकार में होने के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि कांग्रेसी नेताओं के मस्तिष्क में भी यह बात उत्पन्न होने लगी कि अब विभाजन के बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता।

अंग्रेज़ों की नई सरकार भारत के राज्य का भार जल्द से जल्द भारत वासियों को दे देना चाहती थी। जनवरी १६४६ ई० की नौसैनिकों के विद्रोह ने उसे अच्छी तरह अनुभव करा दिया था कि भारत की स्थिति क्या है। इसके अलावा वह यह भी सोचती थी कि देर होने से कहीं भारतवालों का विश्वास स्वयं अंग्रेज़ों पर से उठ न जाये। अतः फ़रवरी १६४७ ई० को प्रधान

मन्त्री क्लेमेन्ट एटेली ने यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया कि बरतानिया सरकार ने तय कर लिया है कि जून १९४८ तक प्रत्येक प्रकार के अधिकार भारतवासियों को दे दिये जायँगे। वाइसराय लार्ड वेविल प्रधान मंत्री के इस विचार से सहमत न थे। उनका कहना था कि जब तक साम्प्रदायिक वार्ता समाप्त नहीं हो जाती भारत को स्वतंत्र करना उसे नष्ट करना है। लार्ड वेविल का यह मत था कि ऐसा करने से आगामी पीढ़ियाँ अंग्रेज़ों को क्षमा नहीं करेंगी। लार्ड वेविल अपने इस निर्णय पर इतने कट्टरता के साथ अड़े कि अन्त में इस्तीफ़ा दे कर दिल्ली से चले गये।

लार्ड वेविल के बाद लार्ड माउन्ट बेटन भारत के गवर्नर जनरल और वाइसराय हुये। वे इससे पूर्व एक कुशल सेनापति के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने भारत की स्थिति का बड़ी चतुराई से अध्ययन किया और अनुभव कर लिया कि भारत अब उस स्थान पर आ गया है जहाँ विभाजन के बिना किसी और प्रकार से सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। जब तक देश का विभाजन नहीं कर दिया जायेगा मुसलिम लीग चैन नहीं लेने देगी। कांग्रेस के नेतागण भी परिस्थितियों से विवश हो गये और देश के विभाजन के लिये सोचने लगे। लार्ड माउन्ट बेटन ने बड़ी चतुराई से दोनों पक्षों को विभाजन के लिये राज़ी किया। प्रस्तावित विभाजन की योजना पर स्वीकृति लेने के लिये वे लन्दन गये और वहाँ उन्होंने विरोधी पक्ष वालों की भी अनुमति प्राप्त कर ली। चर्चिल कभी भी मंत्रालय योजना से सहमत न थे। अतः जब माउन्ट बेटन प्लान पेश हुआ तो भारत के विभाजन का बिल बड़े भारी बहुमत से पास हो गया।

अंग्रेज़ी सरकार के निर्णय के बाद भारत के नेताओं का विचार लेना आवश्यक था। इसके लिये १४ जून १९४७ ई० को आल इंडिया कांग्रेस कमेटी का असाधारण अधिवेशन हुआ जिसमें कांग्रेस ने अपने गत निर्णयों को स्वयं खंडित करते हुये भारत के विभाजन का प्रस्ताव बड़े वाद-विवाद के बाद पास किया। मतगणना के समय उनतीस सदस्यों ने विभाजन के पक्ष मे मत दिये और पन्द्रह ने विरोध में। इस प्रकार प्रस्ताव तो स्वीकार हो गया किन्तु कोई प्रसन्न न था। विभाजन के पक्ष में मत देने वाले भी देश के विभाजन को सोच कर ही दुखी हो रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने मस्तिष्क पर एक प्रकार का बोझ अनुभव कर रहा था।

१५ अगस्त १९४७ का दिन भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दिवस है। इसी दिन हिन्दुस्तान का बटवारा किया गया और इसी की सुबह भारत व पाकिस्तान नाम के दो पृथक् राज्य संसार के मानचित्र पर उभर आये। स्वतंत्रता की देवी के स्वागत के लिये भारत में विशेष प्रबन्ध किया गया। १४ अगस्त की रात्रि के बारह बजे विधान-सभा का अधिवेशन हुआ जिसमें घोषणा की गई कि अब भारत पराधीनता के अपमान से मुक्त होकर एक स्वतंत्र देश हो गया है। नौ बजे सुबह पुनः अधिवेशन हुआ जिसमें भारत के प्रथम गवर्नर जनरल ने उद्‌घाटन-भाषण दिया। ऐसा दीखता था कि पूरी दिल्ली प्रसन्नता और प्रफुल्लता के भावों में झूम रही है। अगस्त की तपती हुई दोपहर में चार बजे शाम तक बैठी हुई जनता भारत के राष्ट्र चिह्न के उत्तोलन की प्रतीक्षा करती रही। जन-मानस मे अनेक जिज्ञासायें थीं। भारत का साधारण नागरिक अमित उत्सुकता लिये कल्पना कर रहा था। उसकी आँखों में जाने कैसे-कैसे स्वप्न थे। वह देखना चाहता था कि स्वतंत्र देश के ध्वज के उद्‌भव की क्या शान होती है!

उर्दू ने देश के स्वतंत्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाने में प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण योग दिया था। देश को 'इनक़लाब ज़िन्दाबाद' की ललकार भी उर्दू ही की देन थी। उसके बहुत से कवि देशभक्ति के कारण अभियुक्त रूप मे जेल के सीखचों मे बन्दी पड़े रहे। देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाले उर्दू कवियों को स्वतंत्रता प्राप्त होने पर अपना स्वप्न साकार होता दीख पड़ा। सारे देश में फैली हुई प्रसन्नता की लहर उनके दिलों को भी गरमाने लगी। वे स्वतंत्रता की प्रतिमा के इस प्रदीप्त-रूप में अपना जीवन-उत्साह और शक्ति का आभास देखने लगे थे। ऐसा जान पड़ता था कि मानों सारे देश की प्रसन्नता में सितार की मद्धिम लय बज रही हो। इसरारुलहक़ 'मजाज़' की कविता 'जश्ने-आज़ादी' इन्हीं मधुर तानों को अपने दामन में समेटे हुये है। वे देश की स्वतंत्रता का वर्णन करते हुये स्वयं भी झूम-झूम उठते हैं—

बसद-ग़ुरूर[१] बसद फ़ख्रो-नाज़[२]-आज़ादी
मचल के खुल गईं ज़ुल्फ़े-दराज़[३]-आज़ादी

---

(१) सैकड़ों अभिमान सहित (२) अहंकार (३) लम्बी लटें।

महो-नजूम[1] हैं नग़मातराज़े-आज़ादी[2]
वतन ने छेड़ा है इस तरह साज़े-आज़ादी
ज़माना रक़्स[3] में है ज़िन्दगी ग़ज़लख़्वाँ है
सदा[4] दो अनजुमे-अफ़लाक[5] रक़्स फ़रमायें
बुताने-काफ़िरो-सफ़्फ़ाक[6] रक़्स फ़रमायें
शरीके-हल्क़ए-इदराक[7] रक़्स फ़रमायें
तरब[8] का वक़्त है बेबाक[9] रक़्स फ़रमायें
कि ये बहार पयामीए-सदबहारां[10] है
ये इनक़लाब का मुज़दा[11] है इनक़लाब नहीं
ये आफ़ताब[12] का परतौ[13] है आफ़ताब नहीं
वो जिसकी ताबो-तवानाई[14] का जवाब नहीं
अभी वो सइए-जुनूँख़ेज़[15] कामयाब नहीं
ये इनतेहा[16] नहीं, आग़ाज़े-कारे-मरदाँ[17] है

भारत की स्वतंत्रता पर आनन्द एवम् उल्लास प्रदान करने वाली कविताओं का उर्दू में एक अच्छा संकलन है। आज़ादी के विश्लेषण के साथ उन्होंने प्रसन्नता की लहर भी पूरे देश में दौड़ाई। ऐसा करना स्वाभाविक भी था। जेल में 'चक्की की मशक़्क़त' के साथ काव्य रचना करके उन्होंने अपने हार्दिक भाव एवं राजनैतिक विवेक का प्रमाण दिया था। अब देश स्वतंत्र हो गया था। वे आशा करते थे कि आज़ादी का सूर्य मुल्क के ठिठुरे पौधों में भी जान पैदा कर देगा। मोईम अहसन 'जज़्बी' ने अपनी कविता 'नया सूरज' में इस बात को अच्छी तरह पेश कर दिया है—

बड़े नाज़ से आज उभरा है सूरज हिमालय के ऊँचे कलस जगमगाये
पहाड़ों के चशमों को सोना बनाया नये बल नये ज़ोर इनको सिखाये
लिबासे-ज़री[18] आबशारों[19] ने पाया नशेबी-ज़मीनों[20] प छींटे उड़ाये
घने ऊँचे ऊँचे दरख़्तों का मंज़र ये है आज सब आबेज़र[21] से नहाये

(१) चाँद व तारे (२) स्वतंत्रता का संगीत गान (३) नृत्य (४) आवाज़ (५) आसमान के तारे (६) निर्दयी एवं निर्मम प्रेमिकायें (७) ज्ञानियों के दल में सम्मलित (८) हर्ष (९) निःसंकोच (१०) सैकड़ों बहार का संदेश लाने वाला (११) सुसमाचार (१२) सूर्य (१३) प्रतिबिम्ब (१४) शक्ति एवं पुष्टता (१५) उन्मादपूर्ण संघर्ष (१६) अन्त (१७) वीरकार्य का प्रारम्भ (१८) सुवर्ण का वस्त्र (१९) झरनों (२०) नीची ज़मीनों (२१) सुवर्णजल।

मगर इन दरख़्तों के साये में ए दिल
हज़ारों बरस के ये ठुठरे-से पौदे
हज़ारों बरस के ये सिमटे-से पौदे
ये हैं आज भी सर्द, बेहाल, बेदम
ये हैं आज भी अपने सर को झुकाये
अरे ओ नई शान के मेरे सूरज तेरी आब में और भी ताब आये
तेरे पास ऐसी भी कोई किरन है
जो ऐसे दरख़्तों में भी राह पाये
जो ठुठरे हुओं को, जो सिमटे हुओं को
हरारत[1] भी बख़्शे गले भी लगाये
बड़े नाज़ से आज उभरा है सूरज ! हिमालय के ऊँचे कलस जगमगाये
फ़ज़ाओं[2] में होने लगी बारिशे-ज़र[3] कोई नाज़नी[4] जैसे अफ़शाँ[5] छोड़ाये
दमकने लगे यूँ ख़लाओं[6] के ज़र्रे कि तारों की दुनिया को भी रश्क[7] आये
हमारे अक़ाबों[8] ने इंगड़ाइयाँ लीं सुनहरी हवाओं में पर फड़फड़ाये
फ़ज़ूँतर[9] हुआ नशअए-कामरानी[10] तजस्सुस[11] की आँखों में डोरे-से आये
क़दम चूमने बर्क़,बाद, आबो-आतिश[12] बसद शौक़ दौड़े बसद नाज़ आये
मगर बर्क़ो-आतिश के साये में ए दिल
ये सदियों के ख़ुदरफ़्ता[13] नाशाद[14] तायर[15]
ये सदियों के परबस्ता[16] बरबाद तायर
ये हैं आज भी मुज़महिल[17] दिल-गिरफ़्ता[18]
ये हैं आज भी अपने सर को छिपाये
अरे ओ नई शान के मेरे सूरज तेरी आब में और भी ताब आये
तेरे पास ऐसी भी कोई किरन है
इन्हें पंजए-तेज़ से जो बचाये
इन्हें जो नये बालो-पर आके बख़्शे
इन्हें जो नये सिर से उड़ना सिखाये

---

(१) गर्मी (२) वातावरण (३) सुवर्ण वर्षा (४) मृदुला (५) श्रृङ्गार का सामान (६) अन्तरिक्ष (७) ईर्ष्या (८) शिकारी चिड़िया (९) अत्यधिक (१०) सफलता का उन्माद (११) जिज्ञासा (१२) विद्युत, पवन, जल व अग्नि, (१३) आत्मविभोर (१४) अप्रसन्न (१५) पक्षी (१६) पराधीन (१७) मुरझाया (१८) दुखी।

साधारणतय: ऐसा मालूम होता है कि समस्त जनता स्वतंत्रता प्राप्त करके बहुत खुश है ! परन्तु वास्तव में ऐसा न था। हिन्दुस्तान की आज़ादी पर ख़ुश होने के अलावा यह भी सोचा जा रहा था कि वास्तविक स्वतंत्रता का आभास हमें उस समय उपलब्ध होगा जबकि देश को राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राप्त हो जायेगी। उस समय स्वतंत्रता का सूर्य अवश्य उत्कर्ष की ओर जा रहा था किन्तु देश के पीड़ित जन अपनी परिस्थितियों के हाथों बँधे हुये थे। इस विश्वास से बहुत से लोगों में स्वतंत्रता के प्रति वह सहानुभूति न रही जो वास्तव में होनी चाहिये थी। स्वतंत्रता पर अविश्वास के इसके अतिरिक्त और भी कारण थे। हिन्दुस्तान व पाकिस्तान दोनों स्थानों के अल्पसंख्यकों ने स्वतंत्रता का स्वागत बड़े दुखे दिल से किया। जनता के अलावा विशिष्टगण भी इसी प्रकार के विचार रखते थे। उन दिनों आचार्य कृपलानी कांग्रेस के सभापति थे, जो सिंध के रहने वाले हैं। उन्होंने १४ अगस्त १९४७ को एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा गया था कि आज का दिन भारत के नष्टीकरण का दिन है।

भारत स्वतंत्र हो गया था किन्तु शांति एवं संतोष का दूर-दूर तक पता न था। चारों ओर भ्रम और अविश्वास का वातावरण छाया हुआ था। भारत के एक विशिष्ट व्यक्तित्व वाले मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' ने लिखा है—

> "देश स्वतंत्र हो गया था किन्तु जनता स्वतंत्रता और विजय का पूरा आनन्द न ले सकी। दूसरे दिन जब उनकी आँख खुली तो उन्होंने देखा कि स्वतंत्रता के साथ एक बहुत दुखमय घटना घटित हो गई है। हमने भी अनुमान किया कि उस मंज़िल तक पहुँचने के पहले, जहाँ हम ठहर कर आराम कर सकेंगे और स्वतंत्रता की निधि से लाभ उठा सकेंगे, एक लम्बा और कठिन मार्ग पार करना होगा।"[१]

उर्दू कवियों का एक बड़ा वर्ग भी स्वतंत्रता के बारे में इसी प्रकार के विचार रखता था। उसे चारों ओर होने वाले अत्याचारों के कारण अपनी आज़ादी भी अच्छी नहीं लग रही थी। इस प्रकार के विचार कभी प्रकट रूप में ज़ाहिर हुये हैं और कभी सैन-संकेत में। ग़ज़लों में इसके

(१) India Wins Freedom P. 206

लिये विशेष अवसर प्राप्त थे। बात ऐसी कही जाये कि मनोभाव प्रत्यक्ष भी न हो और कहने वाला कह भी जाये —

निगाहें मुन्तज़िर थीं कब किरन फूटे सहेर[1] जागे
मगर ये रात तो कुछ और काली होती जाती है
(आले अहमद 'सुरूर')

रात के गुज़रते ही एक रात और आई
आप तो ये कहते थे दिन निकलने वाला है
तुम सहेर के गुन गाओ मैं तो ये समझता हूँ
मुझको नींद में पाकर रात फिर पलट आई
(शाहिद सिद्दीक़ी)

देश की स्वतंत्रता से असंतुष्ट कवियों ने ग़ज़ल से बड़ा फ़ायदा उठाया। उन्होंने खुलकर अपने विरोधी विचार प्रकट किये परन्तु शैली में इतनी व्यापकता थी कि वे क़ानून की पकड़ में न आ सकते थे। इस प्रकार की ग़ज़लें उर्दू में बहुत हैं, उदाहरणार्थ अहमद नदीम क़ासिमी की ग़ज़ल देखी जा सकती है —

फिर भयानक तीरगी[2] में आगये
हम गजर बजने से धोखा खा गये
किस तजल्ली[3] का दिया हमको फ़रेब[4]
किस धुँधलके में हमें पहुँचा गये
रहनुमाओ[5], रात अभी बाक़ी सही
आज सैयारे[6] अगर टकरा गये
जिनको हम समझा किये अब्रे-बहार[7]
वो बगूले कितने गुलशन खा गये
आदमी के इर्तेक़ा[8] का मुद्दआ[9]
वो छिपाते ही रहे हम पा गये
बस वहाँ मेमारे-फ़रदा[10] हैं 'नदीम'
जिनको मेरे वलवले[11] रास आ गये

---

(१) प्रभात (२) अन्धकार (३) प्रकाश (४) धोखा (५) नेताओं (६) ग्रह (७) बहार के बादल (८) उन्नति (९) उद्देश्य (१०) भविष्य निर्माणकर्ता (११) उल्लास।

भारत ने अपनी सरकार तो अवश्य बना ली थी किन्तु अभी उर अपना विधान न था। राज्यशासन प्रणाली में वह अभी विदेशी शासकों अनुसरण करता था। इस कार्य की पूर्ति २६ जनवरी १९५० को हु इसी दिन भारत का राज्य गणतंत्र घोषित किया गया। पूरे दिन ख़ुशियाँ म गईं। भारत ने अपना चक्रधारी ध्वज फहराया। गवर्नर जनरल का समाप्त किया गया और राष्ट्रपति की नियुक्ति हुई। सड़कों और मकानों चिराग़ाँ किया गया। जनता के मन में आशा के दीप जले कि अब तक दुराचार रहे उनके अन्त का समय आ गया है। सिकन्दर अली 'जि मुरादाबादी ने अपनी कविता 'एलाने-जमहूरियत' का श्रृंगार इन्हीं आशा पंक्तियों से किया है —

ख़ोदा करे कि ये दस्तूर[१] साज़गार[२] आये
जो बेक़रार हैं अब तक, उन्हें क़रार आये

बहार आये और इस शान की बहार आये
कि फूल ही नहीं काँटों प भी निखार आये

खिले जो फूल तो दे जिस्मे-नाज़[३] की ख़ुशबू
कली अगर कोई चिटके सदाए-यार[४] आये

× × ×

चमन चमन ही नहीं जिसके गोशे गोशे में
कहीं बहार न आये, कहीं बहार आये

ये मैकदे[५] की, ये साक़ीगरी[६] की है तौहीन[७]
कोई हो जामबकफ़[८] कोई शर्मसार[९] आये

ख़ुलूसो-हिम्मते-अहले-चमन[१०] प है मौक़ूफ़[११]
कि शाख़े-ख़ुश्क[१२] में भी फिर से बर्गो-बार[१३] आये

बुराई करने से पहले ही काश इन्साँ को
नज़र हर एक बदी[१४] का मआले-कार[१५] आये

---

(१) विधान (२) अनुकूल (३) प्रेमिका का शरीर (४) मित्र की आव (५) मधुशाला (६) मधुवितरण (७) अपमान (८) भरा प्याला लिये (९) लज्जि (१०) उपवन अर्थात् देश वालों की श्रद्धा व श्रम (११) निर्भर (१२) सूखी डाल (१३) फूल-पत्ते (१४) बुराई (१५) परिणाम।

नुमायशी[1] ही न हो, ये निज़ामे-जमहूरी[2]
हक़ीक़तन भी ज़माने को साज़गार आये

× × ×

ख़ुलूसो-अद्लो-मसावात[3] दिल ने घर कर लें
न ये कि ज़िक्र ज़बाँ पर हो बार बार आये

दिलों की खोट हो जिसके ज़मीर[4] में शामिल
न आयी है वो सियासत न साज़गार आये

ज़बानो-दिल में बहम[5] इत्तसाल[6] हो ऐसा
कि जो ज़बान कहे दिल को एतबार आये

बना दिया है मुहब्बत ने आग को गुल्ज़ार[7]
मगर जो आज के इन्साँ को एतबार आये

न हो जो आम मसर्रत[8] मुहाल है ए दोस्त
कि ज़िन्दगी को किसी हाल में क़रार आये

विभिन्न विचारधारा के कवियों ने भारत के गणतंत्र को विभिन्न रूपों में देखा है। कुछ लोग प्रसन्न थे कि अब हमारा स्वराज्य का स्वप्न साकार हुआ, किन्तु कुछ लोगों ने विशेषकर प्रगतिशील लेखकों ने इसे साम्राज्यवादियों का रहस्य माना। वे सोचते थे कि राष्ट्र का विधान उचित ढंग से नहीं बनाया गया है। इसमें मज़दूरों, किसानों और ग़रीबों की भलाई से अधिक पूँजी-पतियों और अधिकार-लोभियों के लिये गुंजाइश रखी गई है। इस प्रकार की भावना अली सरदार जाफ़री की कविता 'नया विधान' बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करती है—

उन्हें हर इक हक़
हर एक अधिकार
और हमें कोई हक़ नहीं
उन्हें ये हक है कि कारख़ाना को जेलख़ाना बना के रख दें
किसान की खेतियों को नीलाम पर चढ़ा दें
ज़मीं से इनसानियत का सारा रवाज उठा दें

---

(१) दर्शन मात्र (२) गणतन्त्र व्यवस्था (३) श्रद्धा, न्याय व समन्वय (४) अन्तरात्मा (५) आपस में (६) सम्बन्ध (७) उपवन (८) प्रसन्नता

वो भूक को जुर्म, प्यास को इक गुनाह कह दें
अगर वो चाहें तो जेब कतरों को राज प्रमुख का ताज बख़्शें
अगर वो चाहें तो क़ातिलों को तमाम भारत का राज बख़्शें
हमारी कन्याओं का तबस्सुम, हमारी बहनों की सादगी को
शिकागो, न्यूयार्क और लन्दन की रंडियों पर निसार कर दें
ये उनका हक़ है जो हुक्मराँ[1] हैं
हमारा हक़ भूक, बेबसी, मुफ़लिसी,[2] जहालत[3]

× × ×

यही है जमहूरियत तो ऐसी ज़लील जमहूरियत प लानत[4]
हम आज बेदार[5] हो चुके हैं
हमारे ग़म हिम्मतों को महमेज़[6] कर रहे हैं
हमारे दुख आज हमको अहदो-अमल[7] के मैदाँ में ला रहे हैं
शहीद अपने लहू के उफ़ुक़[8] से आवाज़ दे रहे हैं
बुला रहे हैं

× × ×

लिखो हमारा विधान अन्न और शान्ती का विधान होगा
लिखो हमारे वतन के परचम का रंग, रंगे-बहार होगा
लिखो कि मज़दूर और किसानों के सर प अज़मत[9] का ताज होगा
लिखो मशीनों प और ज़मीनों प सिर्फ़ मेहनत का राज होगा
लहू के व्यापारियों को सफ़्फ़ाक[10] क़ातिलों की सज़ा मिलेगी
लिखो कि जन्गें हराम होंगी
लिखो कि जन्गों से आने वाला सियः मुनाफ़ा हराम होगा
हराम होगी हराम ख़ोरी
लिखो कि तन को लिबास
सीनों को इल्म
हाथों को काम होगा
लिखो कि रोटी का और इन्सान की भूक का एहतेराम[11] होगा

---

(१) शासक (२) निर्धनता (३) जड़ता (४) तिरस्कार (५) सचेत (६) अर्थात् प्रोत्साहन (७) क्रिया (८) क्षितिज (९) महान्त (१०) बेरहम (११) सम्मान

देश की स्वतंत्रता से असन्तुष्टि के बहुत से कारण थे। स्वतन्त्रता के बाद की परिस्थितियों का अध्ययन करके उन्होंने अनुभव किया कि स्वतंत्रता के साथ जनता में नैतिक विवेक पैदा होने के बजाय, वे और भी गिर गये हैं। सादगी में स्वय अपने हाथों से अपना गला काट रहे हैं। शायद इसी लिये एक दूसरे प्रगतिशील कवि जाँनिसार अख़्तर स्वतंत्रता के इस रूप से प्रसन्न नहीं हैं जिसका श्रृंगार मानव रक्त से हुआ। उन्हें यह बहार 'फ़रेबे बहार' दीखती है। परन्तु वे देश के भविष्य से निराश नहीं हैं। उनका विचार है कि एक दिन सुन्दर बहार अपने दर्शन अवश्य देगी—

मैं तो यूँ ख़ुश था कि आज़ाद हुआ मेरा वतन
मैं तो यूँ ख़ुश था कि छूटा वो ग़ुलामी का गहन
मैं तो यूँ ख़ुश था कि अब रात ने खींचा दामन
मैं तो यूँ ख़ुश था कि अब सुबह हुई जलवाफ़गन[1]

ढल गया नूर[2] के साँचे में चमन आज मेरा
अपने गुलशन के बहारों प है अब राज मेरा

मैं तो यूँ ख़ुश था कि फूलों की गुँधेगी हैकल
चाँदनी ख़ाक प डालेगी रुपहला आँचल
मौज के पाँव में मोती की बजेगी छागल
लबे-जू[3] नर्म हवा आके जलायेगी कँवल[4]

जाल ज़रतार[5] शुआओं[6] का बुना था मैंने
कितनी हँसती हुई किरनों को चुना था मैंने

न सही आज हर इक ज़ुल्फ़[7] सँवर जायेगी कल
आज रंगत है जो फूलों की निखर जायेगी कल
नब्ज़[8] ख़ाशाक[9] की गुलशन में उभर जायेगी कल
मौज गंगा की हिमालय से गुज़र जायेगी कल

अपना हर रंग धनुक ख़ाक प बरसा देगी
कल ज़मीं हिन्द की ख़ुर्शीद[10] को शर्मा देगी

क्या ख़बर थी कि नज़र ख़ुद है नज़ारों का तिलिस्म[11]
रात की रात है ये चाँद सितारों का तिलिस्म

(१) सुशोभित (२) प्रकाश (३) नदी किनारे (४) दिया (५) सुवर्ण (६) किरणों (७) केशपाश (८) नाड़ी (९) घास-फूस (१०) सूर्य (११) जादू

ये बरसते हुये मोती हैं शरारों[1] का तिलिस्म
यूँ ख़िज़ाँ छुप के रचायेगी बहारों का तिलिस्म
टूट जायेगा कोई दम में ये अफ़सूने-बहार[2]
नोके-हर-ख़ार[3] से टपकेगी अभी ख़ूने-बहार

घर के देहलीज़[4] प बहता ये जवानों का लहू
बन्द होती हुई आँखों से ढलकते आँसू
कितने आँचल में छिपाये हुये ज़ख़्मी पहलू
कितनी ज़ुल्फ़ें हैं गँवाये हुये अपनी ख़ुशबू
कितनी माँगों का उजड़ता हुआ गुलरंग[5] सोहाग
कितनी माँओं के कलेजे में है सुलगी हुई आग

कितने चेहरों से अयाँ[6] आज है, फ़ाक़ों[7] का मलाल[8]
कितनी आँखें है किसी भीक के कासे[9] की मिसाल
कितने काँपे हुये होंटों प हैं ख़ामोश सवाल
कितनी नज़रों को झुकाये है शराफ़त का ख़याल
दर्दे-इफ़लास[10] से फटने को हैं सीने कितने
आज ज़र्रों[11] के हैं मोहताज[12] नगीने[13] कितने

कुछ हो उम्मेद के सीने में झलक आज भी है
दिल में बुझते हुये शोले[14] की चमक आज भी है
परदए-अब्र[15] में हलकी-सी धनुक आज भी है
फूल खिलने की हवाओं में महक आज भी है
इक ज़रा सब्र कि गुलरंग घटा छायेगी
इस गुलिस्ताँ में कोई सुर्ख़ बहार आयेगी

'फ़ारिग़' बोख़ारी ने भी देश की स्वतंत्रता के लिये एक सुन्दर सपना देखा था। किन्तु जिस प्रकार की स्वतंत्रता हमारे यहाँ जन्मी, उससे उन्हें सन्तोष नहीं मिला। उनको स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों पर बड़ा दुख हुआ। इसका वर्णन उन्होंने अपनी कविता 'आज़ादी से पहले, आज़ादी के बाद' में बड़ी सुन्दरता से किया है—

(१) अग्निकिरण (२) बहार की माया (३) प्रत्येक काँटे की नोक (४) डेवढ़ी (५) गुलाब के रंग का (६) प्रकट (७) उपवासों (८) कलह (९) प्याले (१०) दैन्य होने का दुख (११) कण (१२) निर्धन (१३) कीमती पत्थर (१४) अग्नि शिखा (१५) बादल के परदे।

ये सुब्हे-नव[1] है अगर, इस क़दर उदास है क्यों
दिलों में दर्द, निगाहों में हुज़्नो-यास[2] है क्यों
कली-कली को अभी रंगो-बू की प्यास है क्यों
किरन किरन का हलाकत-फ़ज़ा[3] लेबास है क्यों

वही है नग़मों[4] का सैलाब बारगाहों[5] में
वो इसमतो[6] की तेजारत[7] है शाहराहों[8] में
वो झूलता है कोई मरमरी[9]-सी बाहो में
वो अश्क उमड़े हुये हैं कई निगाहों मे

कोई नहीं कि ग़मे-हिज्र[10] के असीरों[11] को
यक़ीं दिलाये कि फ़ुरक़त[12] की रात ख़त्म हुई
वो फूल आज भी मुरझा रहे हैं क्या जाने
बहार आई ख़ेज़ाओं की बात ख़त्म हुई

स्वतंत्रता के बाद के लिये सोचा गया था कि अपना राज्य होने पर सबको सुख के समान अवसर प्राप्त होंगे किन्तु वास्तविक रूप में स्वतंत्रता की निधि एक विशेष प्रकार के लोगों को ही मिली। साधारणजन स्वतंत्रता की देवी के दर्शन की तृष्णा में तड़पते रहे। उनके दिलों की हसरत दिलों में ही रह गई। डा० मसऊद हुसैन ख़ाँ ने अपनी कविता में इस कसक को बड़ी कुशलता से बयान किया है कि पद के लोभी व्यक्तियों की भीड़ में स्वतंत्रता की देवी का दर्शन कितना कठिन हो गया है—

इस भीड़ में कैसे दर्शन हो
मैं क्षुद्र सा इक भटका राही
आया हूँ देता प्रेम दोहाई
डर है किसी से आज न तेरे कारन मुझसे अन-बन हो
इस भीड़ में कैसे दर्शन हो
हम देखना चाहें देख न पायें
भीड़ में भी घुसकर पछतायें
तू ही बता ये शूद्र करें क्या ऊँचों का जब शासन हो

(१) नई सुबह (२) विषाद एवं निराश (३) घातक (४) गीतों (५) सभा-स्थल (६) सतीत्व (७) व्यापार (८) राजपथ (९) सुफ़ैद-से (१०) वियोग कलह (११) बन्दियों (१२) वियोग

इस भीड़ में कैसे दर्शन हो
अब नैन में दर्शन प्यास लिये
और मन में कोमल आस लिये
हम खड़े रहेंगे आज तेरे आगन चाहे सावन हो
इस भीड़ में कैसे दर्शन हो

क़तील शफ़ाई रोमांचकारी कवि हैं। वह आज़ादी को दुल्हन के रूप में देखते हैं किन्तु यह दुल्हन इस तरह आई कि चारों तरफ़ से उसको लूट-खसोट लिया गया था। मैके से भी खोटे ज़ेवर ही मिले थे। आज़ादी का यह प्रतीक भी बड़ा विचित्र है। उनकी कविता 'दुल्हन' आज़ादी से असंतुष्ट भावनाओं को बड़ी सुन्दरता से प्रकट करती है--

बाज रही शहनाई दुल्हन नई नवेली
दुल्हन नई नवेली
स्वामी समझे घूँघट पीछे होगा चाँद का टुकड़ा
घूँघट के पट खुले तो निकला मुरझाया-सा मुखड़ा
ढाँप के रोये मुरझाये-से मुखड़े को अलबेली
दुल्हन नई नवेली
नई नवेली का यह स्वागत? नन्द न सास न देवर
मैके से भी क्या लाई है खोट के पीले ज़ेवर[1]
अब क्या किसी से आँख मिलाये? सोच पड़ी अकेली
दुल्हन नई नवेली
बैन करे या चैन से सोये? रोये या मुसकाये?
आज तो गुज़रा कल क्या होगा? सोच सोच घबराये
जीवन के इस उलझावे में बन गई एक पहेली
दुल्हन नई नवेली
बाज रही शहनाई—आई दुल्हन नई नवेली

उर्दू कवियों में एक वर्ग ऐसा भी है जो राजनीतिक विवेक रखते हुये अपनी समस्यायें विशेष प्रकार के राजनीतिक सिद्धान्त पर हल करना चाहता है। साम्यवाद उनका लक्ष्य है जिसमें जनता एवं मज़दूरों की प्रधानता होगी। यह वर्ग भारत की स्वतंत्रता से बिल्कुल संतुष्ट न हुआ। उन्होंने आज़ादी

(१) आभूषण

को एक धोखे के रूप में देखा और राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होने को जनता के पैर में बेड़ी डालना बतलाया। उनके विचार में देश के बुज़ुर्ग लीडरों ने साम्राज्यवादियों से समझौता करके देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ घात किया है। सरदार जाफ़री इस प्रकार के कवियों में एक विशेष स्थान रखते हैं। उनकी कविता 'फ़रेब' इसी प्रकार की भावनाओं का दर्पण है —

नागहाँ[१] शोर हुआ
लो शबे-तारे-ग़ुलामी[२] की सहर[३] आ पहुँची
लोग चिल्लाये कि फ़रयाद[४] के दिन बीत गये
क़ाफ़ले दूर थे मंज़िल से बहुत दूर मगर
ख़ुदफ़रेबी[५] के घने छाँव में दम लेने लगे
चुन लिया राह के रोड़ों को ख़ज़फ़-रेज़ों[६] को
और समझ बैठे कि बस लालो-जवाहर हैं यही
राहज़न[७] हँसने लगे छुप के कमींगाहों[८] में
तुमने फ़िरदौस[९] के बदले में जहन्नुम[१०] लेकर
कह दिया हमसे गुलिस्ताँ में बहार आई है
चन्द सिक्कों के एवज़[११] चन्द मिलों की ख़ातिर
तुमने नामूसे-शहीदाने-वतन[१२] बेच दिया
बाग़बाँ[१३] बन के उठे और चमन बेच दिया

× × ×

कौन आज़ाद हुआ ?
किसके माथे से सियाही छूटी
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी[१४] का
मादरे-हिन्द[१५] के चेहरे प उदासी है वही
ख़ंजर[१६] आज़ाद है सीनों में उतरने के लिये
मौत आज़ाद है लाशों प गुज़रने के लिये
चोर बाज़ारों में बदशक्ल चुड़ैलों की तरह

(१) अकस्मात (२) गुलामी की अँधेरी रात (३) प्रभात (४) दुहाई (५) स्वप्न वचना (६) कंकड़-पत्थर (७) डाकू (८) कुनिवासास्थान (९) स्वर्ग (१०) नरक (११) बदला (१२) वतन के शहीदों के ख़ून का आदर (१३) बाग़ का मालिक, माली (१४) गुलामी (१५) भारतमाता (१६) कृपाण।

क़ीमतें काली दुकानों प खड़ी रहती हैं
हर ख़रीदार की जेबों को कतरने के लिये
कारख़ानों प लगा रहता है
साँस लेती हुई लाशों का हुजूम
बीच में उनके फिरा करती है बेकारी भी
अपने ख़ूँख़्वार दहेन खोले हुये
बालियाँ धान की, गेहूँ के सुनहरे ख़ोशे
मिस्रो-यूनान के मजबूर गुलामों की तरह
अजनबी देस के बाज़ारों में बिक जाते हैं
और बदबख़्त किसानों की बिलकती हुई रूह
अपने इफ़्लास[1] में मुँह ढाँप के सो जाती है
अब भी ज़िन्दाने-गुलामी[2] से निकल सकते हैं
अपनी तक़दीर को हम आप बदल सकते हैं

× × ×

आज फिर होती हैं ज़ख़्मों से ज़बानें पैदा
तीरह्-ए-तार-फज़ाओं[3] से बरसता है लहू
राह की गर्द के नीचे से उभरते हैं कदम
तारे आकाश प कमज़ोर हबाबों[4] की तरह
शब के सैलाबे-सियाही[5] में बहे जाते हैं
फूटने वाली है मज़दूर के माथे से किरन
सुर्ख़ परचम उफ़ुक़े-सुब्ह[6] प लहराते हैं

ग़ुलाम रब्बानी 'तावाँ' भी उसी वर्ग के कवियों से सम्बन्ध रखते हैं। वे इस स्वतंत्रता से ख़ुश नहीं हैं, उनका भी ख़याल है कि आज़ादी के बदले में धोखा दिया गया है। उनकी कविता '१५ अगस्त १९४७' में यह बातें बिल्कुल साफ़ कही गई हैं—

मग़रबी-शैतनत[7] के चेहरे पर
देख अपने लहू का ग़ाज़ा है
तीन सदियाँ गुज़र चुकीं लेकिन

(१) निर्धनता (२) गुलामी की क़ैद (३) अंधकार आदि (४) बुलबुलों (५) अन्धकार की बाड़ (६) प्रभात का क्षितिज (७) पच्छिमी पैशाचिकता।

ज़ख़्म सीने का अब भी ताज़ा है
किससे शिकवा[1] करें हम अपनों का
गिरते गिरते सँभल गया दुश्मन
देके हमको फ़रेबे-आज़ादी
इक नई चाल चल गया दुश्मन
जिस्म पहले से क़ैद था लेकिन
रूह पर उसने दाम फेंक दिया
आ चुका था जो तिश्ना[2] होटों तक
हमने ख़ुद ही वह जाम[3] फेंक दिया
रात की बाज़गूँ[4] फ़सीलों[5] के
उस तरफ़ मुन्तज़िर सवेरा था
'दौलते-मुश्तरक[6]' के शैदाई[7]
अपनी क़िस्मत में ही अँधेरा था
अपने पावों में बेड़ियों के एवज़
पड़ रही हैं तलाई[8] ज़ंजीरें
तवनाको-हसीन[9] ख़्वाबों की
रूह-फ़रसा[10] है कितनी ताबीरें[11]

स्वतंत्रता की प्रवंचना को समझने वालों में सबके सब साम्यवादी विचार के कवि नहीं हैं। वे लोग जो किसी विशेष राजनीतिक वर्ग से सम्बन्ध नहीं रखते उनमें भी आज़ादी को एक भूल के रूप में देखा जा रहा था। पं० आनन्द नारायण 'मुल्ला' कवि के अलावा एक न्यायाधीश के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उनका विचार है कि आज़ादी को इस प्रकार स्वीकार करके हमने बड़ी भूल की है। उदाहरण के लिये उनकी कविता 'भूल' देख लीजिये जिसमें वह आज़ादी के अलावा नेताओं पर भी विश्वास प्रकट नहीं करते—

मुझसे हाँ भूल हुई और बड़ी भूल हुई
अश्के-नापाक[12] को मैं आँख का तारा समझा
देश भक्तों को ग़रीबों का सहारा समझा

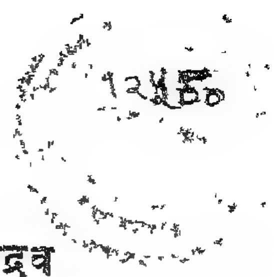
(१) निन्दा (२) प्यासा (३) प्याला (४) अशुभ (५) नगर प्राचीर (६) राष्ट्र मण्डल (७) प्रेमी (८) स्वर्णिम (९) प्रकाशमान (१०) आत्मा को दुख देने वाली (११) स्वप्नफल (१२) अपवित्र आँसू।

बह्र की तह से उभर आई थी तूफ़ाँ में जो रेत
उसको मैं जोशे-अक़ीदत[१] में किनारा समझा
हिर्स[२] की आग में दहके हुये अंगारों को
अर्शे-गांधी[३] का चमकता हुआ तारा समझा
'पसे-नेहरू'[४] तो थी मिट्टी के खिलौनों की क़तार
और मैं लश्करे-क़ौमी[५] को सफ़आरा[६] समझा
ख़सो-ख़ाशाक[७] को गोबर से लिपी इक तामीर[८]
जिसको फ़ौज़ादे-वतन[९] का मैं मनारा समझा
मौज दर मौज तअफ़्फ़ुन[१०] ही तअफ़्फ़ुन निकला
मैं जिसे इत्र का बहता हुआ धारा समझा
मुझसे हाँ भूल हुई और बड़ी भूल हुई

उर्दू में देश की स्वतंत्रता के विषय पर एक सुन्दर संकलन है। प्रायः सभी उच्च कोटि के कवियों ने इस विषय पर विचार प्रकट किया है, उनमें से कुछ कविताओं के उद्धरण हमने इस अध्याय में प्रस्तुत किये हैं। उनके अलावा फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' की 'सहर', क़तील शफ़ाई की 'जश्ने-आज़ादी' और 'वह ज़ावे', अहमद मुजतबा 'वामिक़' की 'नई करवट', साहिर लुधयानवी की 'मुफ़ाहमत', 'कैफ़ी' आज़मी की 'मसालहत', जगन्नाथ 'आज़ाद' की 'तूफ़ान के बाद', 'मख़मूर' जालन्धरी की 'यह बहार', नयाज़ हैदर की 'निशानगी', कमाल सिद्दीक़ी की 'फ़रेबे-आज़ादी', 'फ़िक्र' तौंसवी की 'आज़ादी की पूजा', सतीश आरिफ़ की '१५ अगस्त', अख़्तर सईद की 'आज़ादी', अख़्तरुलईमान की '१५ अगस्त, ४७' इत्यादि कवितायें प्रमुख हैं और अपना महत्व रखती हैं।



(१) आस्था का वेग (२) ईर्ष्या (३) गाँधी के आकाश (४) नेहरू के पीछे (५) राष्ट्र सेना (६) पंक्तियों में सजी (७) कूड़ा-करकट (८) रचना (९) देश के स्पात (१०) दुर्गन्ध।



तीसरा अध्याय

साम्प्रदायिक उपद्रव

मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति घृणा मानव जाति का सबसे बड़ा पतन प्रदर्शित करती है। घृणा के इस आधिपत्य में मानव-रक्त का मूल्य न्यून हो जाता है। धर्म या जाति की रक्षा की आड़ में पशुता और दुराचार का प्रकटीकरण होने लगता है। मानव जीवन की समस्त परम्परायें, उसके विकास शील मूल्य, और सभ्यता के प्रतीक, जो सदियों के सांस्कृतिक अनुसंधान एवम् मानस यात्रा की ऐतिहासिक उपलब्धियों का परिणाम होती हैं, एक क्षण में नष्ट हो जाती हैं। सृष्टि के बाद से अब तक के अथक परिश्रम से जो दीवार मनुष्य ने अपने और पशु के बीच खड़ी की है वह अकस्मात् गिर जाती है। मनुष्य एक छलांग में फिर जानवर बन जाता है।

स्वतंत्रता के साथ ही जो साम्प्रदायिक उपद्रव पूरे भारत में हुये वे न केवल भारत की प्राचीन परम्पराओं के कलंक थे बल्कि उनका होना भी अस्वाभाविक था। देश ने जान जोखिम और बलिदान के फलस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्त की थी। आशा थी कि इसे पाकर जनता ख़ुशी से झूम उठेगी, मन्दिरों, मसजिदों और गुरुद्वारों में घी के चिराग़ जलाये जायेंगे। अब तक जो मतभेद रहे उनको भुलाकर हिन्दू, मुसलमान और सिख एक दूसरे से गले मिलेंगे। एकनिष्ठ होकर सभी लोग देश के निर्माण के लिये प्रयत्नशील होंगे। किन्तु ऐसा न हुआ। स्वतंत्रता मिलते ही आपस में घृणा और बढ़ गई। मन्दिरों, मसजिदों और गुरुद्वारों में चिराग़ जलाने की कौन कहे, उन्हीं का नाम लेकर उनकी पावन प्रतिमाओं को रक्त के धब्बों से रँग दिया गया। हिन्द व पाक के कुल निवासी हिन्दू, मुसलमान या सिख हो गये। इन्सान कोई न रहा! धर्म के नाम पर इतना अत्याचार हुआ कि धरती काँप गई। बूढ़ों और जवानों की हत्या की गई। बच्चों के सरों को बरछियों पर उछाला गया। भाइयों, पतिओं और पिताओं की आँखों के सामने बहनों, पत्नियों और बेटियों का सतीत्व नष्ट किया गया। उनकी छातियाँ काट डाली गईं और इन्सानियत की लाश को नंगा कर के शैतान सरीखे इन्सानों ने ख़ून में डूबी उँगलियों से 'जयहिन्द' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' लिखना शुरू कर दिया। इन्सान-

इन्सान के बीच का यह नंगा नृत्य शायद इतिहास का सबसे बड़ा कलंक बनकर आया था और मानव रक्त पीकर केवल एक प्रश्न-चिह्न ही छोड़ गया है।

साम्प्रदायिक उपद्रवों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उन सिद्धान्तों पर भी है जिनके आधार पर देश का विभाजन स्वीकार किया गया था। भारत को विभाजित करते समय हिन्दू और मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों को अलग-अलग कर देने के ये भी अर्थ होते थे कि साम्प्रदायिकों के कथनानुसार हिन्दू और मुसलमान वास्तव में एक दूसरे से इतने विभिन्न एवं विरक्त हैं कि एक साथ रहकर साधारण जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकते। इस सिद्धान्त ने दोनों पक्षों के दिलों में शंका और भ्रम की भावना अत्यधिक भर दी। यह विष दिलों में भरा पड़ा था जो मौक़ा पाकर बाहर छलक आया और चारों तरफ़ ख़ून ही ख़ून दीखने लगा।

साम्प्रदायिकों के विचार बड़े विचित्र थे। हिन्दू सोचते थे कि हमारा देश, कृष्ण और राम का देश, जिसे प्रकृति ने एक बनाया था, मुसलमानों की चालबाज़ी से बाँट डाला गया। भारतमाता के शरीर के कुछ अंग काटकर मुसलमानों को दे दिये गये हैं। अकारण ही वे भारत की उर्वरा भूमि के एक अच्छे भाग के अधिकारी बना दिये गये और हमारे अधिकारों का हरण कर लिया गया। हमारे देश में हिस्सा बटाने के बाद भी यहीं जमे हुये हैं। उनको भारत छोड़ना पड़ेगा। मुसलमान अपने को भारत का विजेता समझता था कि उसने यहाँ का शासन युद्ध में विजय पाकर ग्रहण किया है। हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं की सम्पत्ति नहीं है कि उसके अधिकारी वही हों। जैसे एक हज़ार वर्ष पहले हम इस देश में आये थे, इसी प्रकार दो हज़ार वर्ष पहले हिन्दू भी यहाँ आये थे। देश के बटवारे ने जो कुछ हमें दिया है, वह उससे बहुत कम है जो वास्तविक रूप में हमें मिलना चाहिये था। यह भी कोई न्याय है कि प्रान्तों को बीच-बीच से काट दिया गया है, न पूरा पंजाब हमें दिया गया और न पूरा बंगाल। काश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद को भी हमसे अलग कर लिया गया। हिन्दुओं ने अंग्रेज़ों को राज्य में अधिकार देने का लोभ देकर मिला लिया। हमारे साथ धोखा हुआ है। सारांश यह कि दोनों पक्षों में एक अजीब तरह की बेइतमीनानी फैली हुई थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों असंतुष्ट थे। दोनों ही अपनी कठिनाइयों का कारण दूसरे पक्षवालों को समझते थे।

साम्प्रदायिक उपद्रवों में जो कुछ दुराचार हुआ उसका विश्लेषण तथा निर्णय इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों, ज्ञानियों और मनोवैज्ञानिकों की कोई कमेटी ही कर सकती है। किस पक्ष की कितनी ज़्यादती थी और इसके फल स्वरूप किसको क्या हानि हुई, इसके निर्णय के लिये न इस पुस्तक में पृष्ठ उपलब्ध हैं और न ऐसा करना हमारे लिये उचित ही है। हमें केवल बुनियादी ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थों को सामने रखकर इन उपद्रवों का प्रभाव उर्दू काव्य पर देखना है।

अंग्रेज़ों के भारत में आगमन के पूर्व हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच किसी प्रकार की साम्प्रदायिक कलह नहीं थी। मुसलमान भारत में विदेशों से तो अवश्य आये थे किन्तु उनको यह देश इतना पसन्द आया कि यहीं के हो रहे। भारत की संस्कृति एवम् सभ्यता ने भी उनपर गहरा प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने विदेशी विचारों को भी भारत की परम्पराओं के अनुसार बदल लिया था। शेरशाह सूरी, अकबर आदि बादशाहों की सुचेष्टा से वे वेष-भूषा तथा कला-सौंदर्य में भारत वालों से इतना मिल गये कि यह पता लगाना कठिन हो गया कि ये कभी विदेश से भी आये थे। नवाबी काल में यह मेल-मिलाप और भी बढ़ा। भारत के सारे नवाबों, विशेषकर अवध वालों ने हिन्दू-मुसलिम मेल-मिलाप की ओर इतना ध्यान दिया कि उनकी उदारता आज तक प्रसिद्ध है। राज्यकार्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण पदों पर हिन्दू विराजमान थे जिन्होंने अपनी सरकार की सेवा जान-माल से की। इसका विशेष उदाहरण उस समय मिलता है, जब लखनऊ के लोकप्रिय नवाब वाजिद अली शाह को अंग्रेज़ों ने क़ैद कर लिया। वाजिद अली शाह अपने प्रान्त में इतने प्रिय थे कि उनको छुड़ाने के लिये तीन महीने तक पूरा लखनऊ जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के अलावा और जातियाँ भी थी, सब मिल कर लड़ते रहे।

भारत के इतिहास में हिन्दू-मुसलिम उपद्रव का अंग्रेज़ों के पहले पता नहीं मिलता। हिन्दू राजाओं और मुसलमान बादशाहों के बीच युद्ध हुये हैं किन्तु उनकी स्थिति दूसरी थी। वे या तो शासन क्षेत्र की वृद्धि के लिये होती थीं या व्यक्तिगत मतभेद के कारण। उस समय कोई भी लड़ाई हिन्दू और मुसलमान के नाम पर नहीं लड़ी गई। मेवाड़ के राणा प्रताप ने अपने जीवन भर अकबर के विरुद्ध युद्ध किया किन्तु उनका मतभेद

व्यक्तिगत रूप से अकबर या मानसिंह से था। उन्हें साधारण मुसलमानों से कोई शत्रुता न थी। इसी प्रकार औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता से हिन्दू व सिख तो क्या बहुत से मुसलमान भी असन्तुष्ट थे, शिवाजी ने मराठों की सेना लेकर जीवन भर युद्ध किया किन्तु यह ललकार कभी न सुनाई कि 'मुसलमानो भारत छोड दो'। औरंगज़ेब की सफ़ाई में कुछ नहीं कहना है परन्तु यह सत्य है कि उसकी लडाई भी राज्य-वृद्धि के लिये थी। उसने जहाँ दक्षिण की मुसलिम रियासतों को नष्ट कर डाला वहीं उसने हिन्दू और सिख राजाओं से अपना राज्य बढ़ाने के लिये उसी तत्परता के साथ युद्ध किया।

'लडाओ और राज्य करो' साम्राज्यवाद का पुराना नियम रहा है। भारतवर्ष में साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को उभार कर अंग्रेज़ों ने हिन्दू महासभा, मुसलिम लीग, अकालीदल और ऐसी ही दूसरी पार्टियों को शक्ति दी। 'हिन्दू पानी, मुसलिम पानी', 'हिन्दू यूनिवर्सिटी, मुसलिम युनिवर्सिटी' एसम्बली और नौकरियों में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये अलग अलग सीटें आदि ऐसी बातें थीं जिनसे मतभेद बढ़ता ही गया। अतः जब उन्होंने भारत को स्वतन्त्र करके भारत वालों के सुपुर्द किया तो उसकी प्रतिक्रिया उनके इच्छानुसार हुई। हिन्दू, मुसलमान और सिख आपस में लड़ मरे। इस समय वे अपने बचाव के लिये यह कहने का मौक़ा भी पा गये कि अंग्रेज़ जो इतने दिनों से भारत को अपने अधिकार में लिये हुये थे उसका कारण केवल यह था कि अगर भारत को हिन्दू या मुसलमान किसी एक को दे दिया जाता तो वे आपस में लड़ मरते। अभी उनमें राज्य करने का विवेक नहीं है।

स्वतंत्रता के साथ ही भारत सरकार को सबसे पहले जिस संकट का सामना करना पडा वह पूरे देश में होने वाले साम्प्रदायिक उपद्रव थे। साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि राजे महाराजे पूँजीपतियों ने साम्प्रदायिक पार्टियों के साथ अपना षड्यंत्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। पूरे देश में हाहाकार मच गया। ख़ून से भारत भूमि लाल होने लगी और ऐसा मालूम हुआ कि अब भारत में एक भी मुसलमान और पाकिस्तान में एक भी हिन्दू या सिख बाक़ी न बच सकेगा। सरकार ने उपद्रवों को रोकने की पूरी कोशिश की लेकिन परिस्थितियों के बदलने में समय लग ही गया। कारण यह था कि फ़ौज और पुलिस में

भी साम्प्रदायिकता का विष फैल गया था। वे अपने कर्त्तव्य की पूर्ति में पक्षपात से काम लेते थे। लेकिन कुछ समय की पुकार और कुछ निस्वार्थ व्यक्तियों, साहित्यकारों, कवियों और कलाकारों की कोशिश सफल हो ही गई। किसी न किसी तरह उपद्रव कम होते-होते समाप्त हुए। इस उपद्रव में कितनी जान-माल की हानि हुई इसका वर्णन नहीं हो सकता। एक हानि तो इतनी बड़ी हुई कि जिसकी पूर्ति आगामी भारत भी न कर सकेगा। वह हानि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या थी। इस शहीदे-वतन ने अपने खून से साम्प्रदायिक उपद्रवों की ज्वाला को बुझा दिया। महात्मा जी की हत्या के विषय पर हम आगामी अध्याय मे सविस्तार वर्णन करेंगे। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जो हानि इस एक बलिदान से हुई उसका हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता।

साम्प्रदायिक उपद्रवों का अध्ययन करते समय हमें भारत के उस नैतिक जीवन को न भूलना चाहिये जिसे अंग्रेज़ी साम्राज्य ने बहुत प्रभावित किया था। दुख की बात यह है कि उन्हें प्रत्येक युग में ऐसे व्यक्ति मिलते गये जिनके द्वारा वे आपस में ही मतभेद पैदा करा देते थे। स्वतन्त्रता संघर्ष के समय भी उन्हें कुछ ऐसे लोग मिल गये थे जो अपने व्यक्तिगत लाभ के चक्कर में देश के जागरूक आन्दोलनों को आघात पहुँचा रहे थे। अतएव जब आज़ादी की मंज़िल क़रीब आई तो उन लोगों का प्रयास अँग्रेज़ों की इच्छानुसार और भी बढ़ा। अन्तिरम शासन बनाने के प्रस्ताव के साथ ही साथ देशद्रोही तत्वों ने साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों की आग को हवा देना शुरू कर दिया। कलकत्ता से इस दुखमय बात का प्रारंभ हुआ और फिर धीरे-धीरे पूरा हिन्दुस्तान इसकी लपेट में आ गया। घृणा की भट्टी इतनी दहकी हुई थी कि जब आज़ादी की देवी ने दर्शन दिये तो जनता ठीक से आनन्द भी न ले सकी। अपने स्वराज्य के प्रारम्भिक दिवस भी उन्हें अशुभ मालूम हुये। मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' ने अपनी पुस्तक में इस घटना का सच वर्णन बड़े दुख से लिखा है —

> "१६ अगस्त का दिन भारत के इतिहास में शोकमय दिवस रहेगा। कलकत्ता के वैभवशाली नगर में जनता के अत्याचार से, जिसका कोई उदाहरण नहीं मिलता, त्रास, हत्या और विनाश का आधिपत्य हो गया था। सैकड़ों

जानें बरबाद हुईं हज़ारों घायल हुये और करोड़ों की जायदाद नष्ट हो गई।"[१]

इन उपद्रवों ने भारत के जन-जीवन को जितना प्रभावित किया था, उससे हर उस आदमी को हमदर्दी थी जिसके सीने में तड़पता हुआ दिल था। सच्चे राष्ट्रीय विचार वाले व्यक्ति मानव-जीवन को खंडित होते न देख सकते थे। उर्दू कवियों ने अपनी गत परम्पराओं को ध्यान में रखते हुये मानवता की गिरती हुई पताका को उठाने की भरसक चेष्टा की। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान होते हुये भी उन सब लोगों की निन्दा की जो धर्म के नाम पर अपने ही भाइयों की हत्या कर रहे थे। उनकी वाणी उन राष्ट्रीय एकता के प्रतीक उन्नायकों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने में पीछे नहीं रही जो मानवता को बचाने के लिये संघर्ष कर रहे थे। अहमद मुजतबा 'वामिक' ने विशेष कर मरती हुई मानवता की 'चीख़ें' अपनी कविताओं के गुंजन में लिपिबद्ध कीं। उन्होंने 'कलकत्ता' और 'नवाखाली' पर भी कविता लिखी है। प्रस्तुत कविता के भावों में सच्ची राष्ट्रीयता का दृढ़ संकल्प कवि की आत्मा की स्वर-लहरी बन कर मुखरित हुआ है —

फिर काली आँधी
पूरब में आई
क़ुरआन जलाती
गीता भुलाती
    दिन को बनाये रात
क्या हो रहा है
दिल रो रहा है
वहशी,[२] दरिन्दे[३]
तन-मन के गन्दे
    भूतों के सौ-सौ घात
बस्ती उजड़ गई
शोभा बिगड़ गई
साथी छूटे सब
कुंबे लुटे सब
    कैसे बने अब बात

(१) INDIA WINS FREEDOM P. 159 (२) बर्बर (३) हिंसक

नारी से पूछो
बच्चों को देखो
शहरी बेचारे
नदी किनारे
कैसे कटेगी रात
कौन आ रहा है
गुन गा रहा है
पैदल भिखारी
हर का पुजारी
हिंसा को देता मात
सीने में गर्मी
बातों में नर्मी
बिछड़े हुओं को
टूटे दिलों को
जोड़ेंगे उसके हात

कलकत्ता और नवाखाली के बाद साम्प्रदायिक उपद्रवों की लपटें बिहार पहुँची। वह भारत के और प्रान्तों के अनुपात में बंगाल के अधिक निकट भी था। यहाँ भी इन्सान भेड़ और बकरियों की तरह काटे गये। इनसान के रूप में भेड़िये चारों ओर धरती को लाल कर रहे थे और भारतमाता का सिर लज्जा से झुका जा रहा था। 'क़ारिश बोख़ारी' ने 'पुकार' के शीर्षक से मानवता की दुहाई लिपिबद्ध की और देश की जनता की बेबसी पर ख़ून के आँसू बहाये —

ये सैलाबे-ख़ूँ[१] ये भयानक झकोले
उफ़ुक़[२] से ये मिलता हुआ तेज़ धारा
कोई नाख़ोदाओं[३] से इतना तो पूछे
कहाँ है किनारा, किधर है किनारा
मुझे यास[४] से अब भी नफ़रत[५] है लेकिन
सहारा कोई ज़िन्दगी का नहीं है

(१) ख़ून की बाढ़ (२) क्षितिज (३) खेवन हारों, नेताओं (४) निराशा (५) घृणा

मैं मरने से अब भी गुरेज़ाँ[1] नहीं हूँ
सवाल अब मेरी मौत ही का नहीं है।

बग़ावत का मैं दिल से क़ायल हूँ लेकिन
लफ़ंगों की ग़ारतगरी[2] कैसे देखूँ
अगरचह् है फ़ितरत[3] मेरी इन्क़लाबी[4]
मगर क़ौम की ख़ुदकुशी कैसे देखूँ

जो अब हमजलीसों[5] से टकरा रहे हैं
उन्हें ग़ैर से जंग करते न देखा
ये आपस में लड़कर जो जाँ दे रहे हैं
वतन के लिये इनको मरते न देखा

ये नेज़े[6], ये भाले, ये आहें, ये नाले[7]
मैं हैराँ हूँ दुनिया में क्या हो रहा है
अलम[8] कौन अम्नो-अमाँ[9] का सँभाले
कि इस सरज़मीं का ख़ोदा सो रहा है

बिहार के साथ ही साथ सम्पूर्ण भारत में आग लग गई। ख़ून की होली चारों तरफ़ खेली जाने लगी। प्रेम और स्नेह के कुल संबंध एक क्षण में काट डाले गये। कुरआन, गीता और ग्रन्थ साहब के प्रेमी दूध पिलाती हुई माँताओं की छातियाँ काटने लगे। बच्चों को माताओं की गोद में ज़बह करने लगे। बेटियों का सतीत्वहरण बापों के सामने किया जाने लगा। अत्याचार एवं दुराचार के वे सारे उपाय सोच निकाले गये जो शायद पशुओं को भी लज्जित कर दें। प्रत्येक समझदार आदमी मानव-जाति के इस पतन से दुखी था। उर्दू कवि भी इस अत्याचार से प्रभावित हो रहे थे। उनमें तो कुछ ऐसे थे जिन्हें व्यक्तिगत रूप से भी हानि हुई थी और कुछ अपने भाइयों की परेशानी से दुखी थे। दोनों ही इस कलह को अपनी कलह समझकर इसके ख़िलाफ़ अपनी कविताओं द्वारा आवाज़ बुलन्द कर रहे थे। पाकिस्तान के कवि 'क़तील शफ़ाई' की कविता 'पड़ोसी' भी इन्हीं भावों से परिपूर्ण है —

---

(१) विमुख (२) विनाश (३) प्रकृति (४) क्रान्ति (५) सहचरों (६) कुन्त (७) विलाप (८) पताका (९) सुख एवं शांति

मोहब्बतों की एबादत[1] का दौर[2] ख़त्म हुआ
मसर्रतों[3] के हयोले झिझक के थम से गये
हवस[4] का रूप कुछ ऐसा ख़ला[5] में लहराया
जवानियों के बगूले बदन में जम से गये
वो हसरतें, वो उमंगें, ख़यालो-ख़्वाब हुई
नज़र उठी तो वो हमसे गये हम उनसे गये

दिलों के गर्म तक़ाज़े ग़ोबार[6] बनके उड़े
वफ़ायें हाँप गई ज़रनवाज़[7] राहों में
लचक के टूट गये इश्तेराक[8] के झूले
रहे न शोख़[9] बुलावे गुदाज़[10] बाहों में
लबों प नाचती शोख़ी का साथ छोड़ दिया
सिमट के रह गये शिकवे-गिले[11] निगाहों में

कभी निगाह में जुगनू से रक़्स[12] करते थे
मगर ख़याल में शोअले से अब भड़कते हैं
कभी ज़बाँ प सितारे से जगमगाते थे
मगर दिमाग़ में कौंदे से अब लपकते हैं
कभी रगों में रवाँ थे बहिश्त[13] के झोंके
मगर लहू में जहन्नुम से अब दहकते हैं

पूरे देश में साम्प्रदायिकता की लपटें स्वतंत्रता के सुन्दर प्रभात को खंडित कर रही थीं। स्वतंत्रता का आनन्द नष्ट हो गया था। अब हर आदमी की निगाह आज़ादी से ज़्यादा उसके बाद की परिस्थितियों पर थी। उर्दू शाएरों ने समय की पुकार को ध्यान में रखा और आज़ादी के बाद के विषय पर उन्होंने अपनी वेदना सार्वभौमिक स्वरों में अंकित की। नरेश कुमार 'शाद' की कविता 'आज़ादी के बाद' इस सिलसिले में एक आदर्श कृति के रूप में पेश की जा सकती है—

नग़मा-अफ़रोज़[14] फ़ज़ाओं प मुसल्लत[15] है सुकूत[16]
एक वहशत-सी दरो-बाम प लहराती है

---

(१) उपासना (२) काल (३) प्रसन्नता (४) आकांक्षा (५) अन्तरिक्ष (६) धूल (७) धनप्रधान (८) सहयोग (९) चचंल (१०) मृदुल (११) शिकवा शिकायत (१२) नृत्य (१३) स्वर्ग (१४) संगीत प्रद (१५) नियुक्त (१६) मौनता

तीरगी[1] एक मचलते हुये दरया की तरह
मौज दर मौज हर इक सम्त बढ़ी आती है

उजड़े उजड़े हुये ख़ामोश से बाज़ारों में
रक़्स करता है सुलगते हुये मलबों का धुवाँ
शाहराहों प बनी-नौअ[2] के मुरदा ढाँचे
अपनी चुप-चाप ज़बानों से हैं फ़रयाद-कुनाँ[3]

भूक और प्यास की मारी हुई अन्धी मख़लूक[4]
मज़हबो-नस्ल के साँचे में ढली जाती है
इक नये दौर के ख़्वाबों का असासा[5] लेकर
कीनो-बोग़्ज़[6] के शोअलों में जली जाती है

हाय ये लोग कि आज़ाद भी होकर इनमें
अपना माहौल बदलने की फ़रासत[7] ही नहीं
इनकी शरयानों[8] में जारी है गुलामी का लहू
इनके सीनों मे अभी जज़्बए-ग़ैरत[9] ही नहीं

कौन इन ख़ाक से रौंदे हुये ऐवानों[10] पर
अपनी आज़ाद हुकूमत का अलम लहराये
और इन ख़ून में कफ़नाई हुई लाशों पर
जश्ने-आज़ादिए-जमहूर[11] के नग़मे गाये

इसी प्रकार अहमद नदीम क़ासिमी की कविता 'आज़ादी के बाद' भी मानवता की व्यापक विषमता को प्रकट करती है जो आज़ादी के बाद जनता के दिल को परेशान कर रहे थे :—

मुन्तशिर[12] पत्तियाँ ख़यालों की
पेच खाती हैं यूँ हवाओं में
जिस तरह अर्श[13] के तमाम नजूम[14]
यकबयक उड़ चले फ़ज़ाओं में

(१) अन्धकार (२) मनुष्य (३) न्याय याचना (४) प्राणी (५) सामान (६) कलह एवं द्वेष (७) प्रतिभा (८) नाड़ी (९) गौरव भावना (१०) सदनों (११) जन स्वतन्त्रता समारोह (१२) अस्तव्यस्त (१३) आकाश (१४) तारे

कोयलों के उगे हैं अंगारे
जिनकी हिद्दत[1] से तप रहे हैं चमन
बन रहे हैं सड़े-गले पत्ते
कितनी जामिद[2] हक़ीक़तों[3] के कफ़न
रोटियाँ बेटियों से तुलती हैं
असमतों[4] की सजी दुकानों पर
पेट भरने के बाद नाचता है
ख़ून का ज़ाएक़ा[5] ज़बानों पर
एक आफ़ाक़गीर[6] सन्नाटा
'ज़िन्दगी ! ज़िन्दगी' पुकारता है
सटपटाता है अपने होठों से
ख़ून की पपड़ियाँ उतारता है
ज़िन्दगी को सम्हालने की मोहिम[7]
कब मोकद्दर[8] के अख़्तियार में है
ये ज़मीं, ये ख़ला[9] की रक़्क़ासा[10]
आदमे-नव[11] के इन्तेज़ार में है

अहमद नदीम क़ासिमी की काव्य-विशेषता बिम्ब-योजना (Image Creation) के माध्यम से अनुभूति का साक्षात्कार कराना है। प्रस्तुत रचना में रूढ़िगत बिम्बों से सर्वथा नये अर्थों की ओर संकेत करना वास्तव में शाएर के गहरे व्यक्तित्व का परिचय कराता है। व्यापक सामाजिक सत्य तभी महत्व पूर्ण होता है जब वह शाएर के व्यक्तित्व की वास्तविक स्थिति का पूरा-पूरा परिचय करा दे। उपर्युक्त रचना इस दृष्टि से काफ़ी सफल कृति कही जा सकती है।

इन उपद्रवों ने हमारे जीवन का रस ही समाप्त कर दिया था। संगीत के मधुर सुरों के बजाए हमें बिलखती हुई स्त्रियों, बच्चों की चीख़ें सुनने को मिल रही थीं। कवि का हृदय और भी कोमल होता है। वह बरबत के सीने में संगीत का दम घुटते देखकर चीख उठा। अपने चारों ओर

(१) गर्मी (२) ठोस (३) सत्यों (४) सतीत्व (५) स्वाद (६) विश्व व्यापक (७) अभियान (८) भाग्य (९) अन्तरिक्ष (१०) नर्तकी (११) नवीन मनुष्य

ठंडी लाशें देखकर उसका दिल भर आया और अ
जनता से शांति की भीख माँगने लगा। 'साहिर'
'आज' इसी दर्द भरी चीख़ को अपने दामन में लिये

साथियो ! मैंने बरसों तुम्हारे लिये
चाँद, तारों, बहारों के सुपने बुने
हुस्न और इश्क़ के गीत गाता रहा
आरज़ूओं[१] के ऐवाँ[२] सजाता रहा
मैं तुम्हारा मुग़न्नी[३], तुम्हारे लिये
जब भी आया, नये गीत लाता रहा
आज लेकिन मेरे दामने-चाक[४] में
गर्दे-राहे-सफ़र[५] के सिवा कुछ नहीं
मेरे बरबत के सीने में नग़मों का दम घुट
तानें चीख़ों के अम्बार में दब गई है
और गीतों के सुर हिचकियाँ बन गये हैं
मैं तुम्हारा मुग़न्नी हूँ, नग़मा नहीं हूँ
और नग़मे की तख़लीक़[६] का साज़ो-साम
आज तुमने जला कर भसम कर दिया है
और मैं अपना टूटा हुआ साज़ थामे
सर्द लाशों के अम्बार को तक रहा हूँ
मेरे चारों तरफ़ मौत की वहशतें नाचती
और इनसाँ की हैवानियत जाग उठी है
बच्चे माओं की गोदी में सहमे हुये हैं
बहनें बेहुरमती[७] के तसव्वर[८] से लरज़ाँ[९]

हर तरफ़ शोरे-आहो-बुका[११] है
और मैं इस तबाही के तूफ़ान में
अपने नग़मों की झोली पसारे

(१) आशाओं (२) सदन (३) गायक (४) फटे हुये द
की धूल (६) रचना (७) अनादर (८) कल्पना (९)
(११) रोने-धोने का शोर।

दर-बदर फिर रहा हूँ
मुझको अम्न[१] और तहज़ीब[२] की भीक दो
मेरे गीतों को लै, मेरे सुर, मेरी नै
मेरे मजरूह[३] होंटों को फिर सौंप दो
साथियो ! मैंने बरसों तुम्हारे लिये
इनक़लाब और बग़ावत के नग़मे अलापे
अजनबी राज के ज़ुल्म की छाँव में
सरफ़रोशी[४] के ख़्वाबीदा-जज़्बे[५] उभारे
और उस सुब्ह की राह देखी
जिसमें इस मुल्क की रूह आज़ाद हो
आज ज़ंजीरे-महकूमियत[६] कट चुकी है
खेत सोना उगलने को बेताब हैं
वादियाँ लहलहाने को बेचैन हैं
उनकी आँखों में तामीर के ख़्वाब हैं
मुल्क की वादियाँ, घाटियाँ, खेतियाँ
औरतें, बच्चियाँ
हाथ फैलाये ख़ैरात की मुन्तज़िर[७] हैं
उनको अम्न और तहज़ीब की भीक दो
माओं को उनके होंटों की शादाबियाँ[८]—!
नन्हें बच्चों को उनकी ख़ुशी बख़्श दो
मुल्क की रूह को ज़िन्दगी बख़्श दो
मुझको मेरा हुनर, मेरी लै बख़्श दो
मेरे सुर बख़्श दो, मेरी नै बख़्श दो
आज सारी फ़ज़ा है भिखारी
और मैं इस भिखारी फ़ज़ा में
अपने नग़मों की झोली पसारे
दर-ब-दर फिर रहा हूँ
मुझको फिर मेरा खोया हुआ साज़ दो

---

(१) शान्ति (२) सभ्यता (३) घायल (४) वीरता (५) सोई हुई भावनाएँ (६) पराधीनता की ज़ंजीर (७) प्रतीक्षक (८) पल्लविता।

मैं तुम्हारा मुग़न्नी, तुम्हारे लिये
जब भी आया, नये गीत लाता रहूँगा

'साहिर' लुधियानवी की प्रस्तुत नज़्म कई दृष्टियों से उस समय के नितान्त समसामयिक विषय-वस्तु को वर्णन करने के बावजूद भी महत्व पूर्ण है। इस काव्य रचना की आत्मपरक (Subjective) संवेदना, सम्पूर्ण स्थिति को ऐसे स्तर से उठाती है कि जहाँ व्यापक सत्य नितान्त व्यक्तिगत अद्वितीय (Unique) अनु- भूति बन कर व्यक्त हो गया है। विषय वस्तु की आत्मभावना निरपेक्ष सौन्दर्य तत्व (Aesthetic Distance) के साथ उभर कर आया है। यह साहिर की अपनी विशेषता है।

साम्प्रदायिक उपद्रवों ने जीवन के प्रत्येक श्रेष्ठ मूल्य को नष्ट कर डाला था। पशुता का जो व्यवहार मनुष्य ने मनुष्य के साथ किया था उसकी आँधी में प्रेम का दीपक कहाँ ठहर सकता था। जानवरों ने उसे बुझाकर ही दम लिया था। शरीफ़ कुंजाही अपनी कविता 'इस क़दर याद है' में जिस प्रकार अपनी प्रेमिका के विषय में सोचता है वह एक वर्ग की आप बीती है। इस नफ़रत की अग्नि में जाने कितने ही मोमी दिल पिघले हैं—

नाम तो याद नहीं है मुझको
इस क़दर याद है रहते थे हम इक क़सबे में
और कई बार गली-कूचे में आते-जाते
आँखें दो-चार हुआ कीं अपनी
इसमें कोशिश को बहुत दख़्ल नहीं था, फिर भी
मैं उसे देख के इक ऐसा सुकूँ पाता था
जैसे सहरा[1] में भटकता राही
पाराए-अब्रे-गुरेज़ाँ[2] तक कर
अपनी दिलचस्पियाँ इस हद से मगर बढ़ न सकीं
कमदिली, दुनिया का डर
झूटी वज़ादारी[3]
कई बातें थीं
जिनसे ये नक़्श[4] बहुत गहरे न होने पाये

(१) मरुस्थल (२) भागते हुये बादल के टुकड़े (३) कुरीति (४) चिह्न।

और रहा रब्त[1] फ़क़त[2] ज़ौक़े-नज़र[3] तक महदूद[4]
वरना अपनाने को जी चाहता था
आज जब फ़ितनों[5] ने करवट बदली
हादसे[6] बेदार[7] हुये

ज़ीस्त[8] उस चार गिरह कपड़े की हमबख़्त[9] बनी
जिसकी क़िसमत में हो आशिक़ का गरेबाँ[10] होना

नाम जब क़ाबिले-ताज़ीर[11] हुये
उसकी पादाश[12] में दिल कितने धड़कने से रुके
—दिल भी वो दिल कि कई काअबों[13] से जो बेहतर थे
ख़ून पानी से भी अरज़ाँ[14] निकला
ऐसे आलम[15] में मुझे आज वो याद आई है
जाने इस वक़्त वो किस हाल में है
किसके नापाक इरादों की बुझाती है प्यास
आह ! इन लमहों में वो जब्र[16] का दिल पर एहसास[17]
या किसी कैम्प में मरने की तमन्नाई[18] है
अपने शाने[19] प उठाये हुये बारे-हस्ती[20]
या किसी शख़्स की कोशिश के तुफ़ैल[21]
उसकी ये आरज़ू बर आई है
जाने इस वक़्त वो किस हाल में है
नाम भी याद नहीं है उसका
इस क़दर याद है रहते थे हम इक क़सबे में

प्रगतिशील काव्यधारा में प्राप्त सामाजिक यथार्थ किस प्रकार अत्यन्त रोमैन्टिक थीम के साथ व्यक्त होता है उसका सबसे कुशल प्रमाण हमें इस कविता में मिलता है। मानवीय संवेदना की यह रंगीन झाँकी इतिहास की इस बर्बरता को भी एक माया का आवरण देकर मार्मिक बना देती है।

---

(१) तादात्म्य (२) केवल (३) दर्शन-रुचि (४) सीमित (५) विपत्ति (६) घटनायें (७) सजग (८) जीवन (९) सहभाग्य (१०) गला (११) दण्ड देने लायक़ (१२) प्रतिकार (१३) मक्का शरीफ़ में ईश्वर का वह घर जिसकी हज के लिये प्रतिवर्ष मुसलमान जाते हैं (१४) सस्ता (१५) दशा (१६) बल-प्रयोग (१७) अनुभव (१८) इच्छुक (१९) कंधे (२०) जीवनभार (२१) बदौलत

साम्प्रदायिकता के इस बढ़ते हुये अंधकार ने पूरे भारत में घटाटोप कर रक्खा था। इनसानों ने अपने हाथों अपनी ऐसी दुर्गति बनाई थी कि इनसान की सूरत का पहचानना मुश्किल हो गया था। प्रेम और स्नेह की धारायें जो मनुष्य को मनुष्य से आलिंगनबद्ध कर देती हैं इस बढ़ते हुये तूफ़ान में दब कर रह गई थीं। भारत का पंजाब, जो अपने गेहूँ की बालियों और प्रेम-कहानियों के लिये प्रसिद्ध था, साम्प्रदायिक उपद्रवों का गढ़ बना हुआ था। हीर और सोहनी के नग्न शरीर का प्रदर्शन हो रहा था और राँझा व महीवाल खड़े तमाशा देख रहे थे। उर्दू कवि पंजाब के इस दुर्भाग्य पर भी दुखी हुये। अहमद मुजतबा 'वामिक़' की कविता 'पंजाब' उन आँसुओं की एक लड़ी है जो मानवता के विनाशपर मनुष्य की आँखों से बरबस निकल पड़ते थे —

हट गये होश[१] के महवर[२] से तमद्दुन[३] के क़दम
ज़िन्दगी बरसों की बीमार नज़र आती है
जल रही है सरे-बाज़ार[४] चिता ग़ैरत की
मौत और ज़ीस्त[५] के दोराहे प पहरा देने
अहरमन[६] अपने जहन्नुम[७] से निकल आया है
भेड़िये आदमी के रूप में घुस आये हैं
ज़हर पेवस्त[८] हुआ जाता है शिरयानों[९] में
बरबरीयत[१०] के हवसख़ाने[११] हुये फिर आबाद
फिर उठा ले गया सीता को कोई रावन आज
अब द्रोपदी के जसद[१२] पर नहीं बाक़ी कोई तार
अस्मते-मरयमो-हव्वा[१३] की हक़ीक़त हुई ख़्वाब
हट गये होश के महवर से तमद्दुन के क़दम
ज़िन्दगी बरसों की बीमार नज़र आती है
जैसे अब ख़ुश्क हैं पंजाब के सारे दरया
सोने की बालियाँ जिन खेतों में लहराती हैं
अब उन्हीं खेतों में उड़ते हैं हया-सोज़[१४] शरार[१५]

(१) चेतना (२) धुरी (३) संस्कृति (४) बाज़ार के किनारे (५) जीवन (६) बुराइयाँ कराने वाला देव (७) नरक (८) विलीन (९) नाड़ी (१०) पशुता (११) काम वासना के गृह (१२) शरीर (१३) मरियम और हव्वा का सतीत्व (१४) लज्जा का नाश करने वाले (१५) अग्निकण।

और लहू से उन्हें सेराब[1] किया जाता है
इसी मिट्टी से बनेंगे नये तक़्दीस[2] के घर
गुरुद्वारे नये, मसजिद नई, मन्दिर भी नये
दूर इक दूसरे से दूर, बहुत दूर कहीं
कि मोबादा[3] कहीं मिल-जुल के दिलों के ये अयाग़
इक नई आग से भर दें न ज़माने के अयाग़[4]
फिर कहीं जाग न उट्ठे कोई जलियाँवाला
इनको रखना है अभी सदियों इसी तरह ग़ुलाम
अब ये पंजाब नहीं एक हसीं ख़्वाब नहीं
अब ये दो-आब है, सह-आब[5] है, पंजाब नहीं
अब यहाँ वक़्त अलग, सुब्ह अलग, शाम अलग
इसी तक़सीम ने पंजाब तुझे लूट लिया
अब रगों में तेरी पिघली हुई चाँदी न रही
सोहनी अब न महीवाल कोई गायेगा
अब यहाँ हीर को राँझा न कभी पायेगा
क्योंकि इन नग़मों से इरफ़ाँ[6] की झलक आती थी
ऐसे गीतों से अख़ूवत[7] की महक आती थी
अब मगर दानिशे-अफ़रंग[8] के फ़ितनों[9] की क़सम
हट गये होश के महवर से तमद्दुन के क़दम
ज़िन्दगी बरसों की बीमार नज़र आती है

वामिक की रचनाओं की यह विशेषता है कि वे वर्तमान के माध्यम से अतीत और भविष्य को भी एक साथ भावात्मक एकता के स्तर पर लाकर प्रस्तुत कर देते हैं। प्रस्तुत कविता में जहाँ एक ओर वे पंजाब के भूत पूर्व गौरव से प्रभावित हैं वहीं वे उसके माध्यम से ज़िन्दगी बरसों की बीमार नज़र आती है, का भी दिग्दर्शन हमें करा देते हैं।

भारत के इतिहास में इन उपद्रवों का उदाहरण शायद ढूँढ़े से भी न मिल सके। अंग्रेजों के उकसाने पर हिन्दू और मुसलमान इसके पहले भी लड़े किन्तु

(१) सिंचित (२) पावनता (३) ईश्वर न करे कि फिर ऐसा हो (४) शराब पीने का प्याला (५) तीन-पानी (६) ज्ञान (७) भाईचारा (८) विदेशी नीति (९) अशान्ति।

स्वतंत्रता के साथ-साथ जो उपद्रव देश में हुये उनकी निर्दयता भारत कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता। 'राही' मासूम रज़ा एक 'अजनबी' को भारत का इतिहास बताते हुये जब साम्प्रदायिक उपद्रवों का उल्लेख करते हैं तो व्याकुल हो जाते हैं। इन उपद्रवों का कारण अंग्रेज़ों के साथ वे उन नेताओं को भी समझते हैं जिन्होंने देश का विभाजन स्वीकार कर लिया --

दूसरी जंग से चौधरी थक गये
और जनता के तेवर भी कुछ और थे
राहबर[1] भी तेजारत प राज़ी हुये
काले बाज़ार में दाम लगने लगे
कुछ मिशन आये मरक़े-मोहब्बत[2] हुई
कुछ शिकायत हुई कुछ तेजारत हुई

और नतीजे में हिन्दोस्ताँ बट गया
ये ज़मीं बट गयी, आसमाँ बट गया
शाख़े-गुल[3] बट गया, आशियाँ[4] बट गया
तर्ज़े-तहरीर[5], तर्ज़े-बयाँ[6] बट गया
हमने सोचा कि वो ख़्वाब ही और था
अब जो देखा तो पंजाब ही और था

कितनी बहनों की मीठी निगाहें लुटीं
प्यार की छावँ, नज़रों की राहें लुटीं
कितनी आशाओं की गहरी आँखें लुटीं
महजबीनों[7] की वो गर्म-बाहें[8] लुटीं
आस कच्चे गढ़े की तरह बह गई
सोहनी बीच तूफ़ान में रह गई

पाँच दरयाओं का गीत बहने लगा
और कोहे-हिमालय[9] का सर झुक गया
असमते-ज़िन्दगी[10] पर कड़ा वक़्त था
और तद्दुमन[11] खड़ा चीख़ता ही रहा

---

(१) रास्ता दिखाने वाला (२) प्रेम के प्रयोग (३) फूल की डाली (४) घोंसला (५) रचना शैली (६) वर्णन शैली (७) चाँद की तरह मुखड़ा रखने वालियाँ (८) जवान बाँह (९) हिमालय पर्वत (१०) जीवन का सतीत्व (११) संस्कृति

राम के देश में कोई सीता न थी
कृष्न के देश में कोई राधा न थी
हीर सड़कों प नंगी फिराई गई
जख़्मी छाती से महफ़िल सजाई गई
रावी में हर रवायत[1] बहाई गई
दोनों हाथों से ग़ैरत लुटाई गई
कुछ लुटेरे बड़े आदमी बन गये
और हम घर में शरनार्थी बन गये
टाट के परदे पैहम[2] सरकते रहे
बच्चे नेज़ों[3] के ऊपर हुमकते रहे
और काजल के टीके बिलकते रहे
मामता के घरौंदे सिसकते रहे
कौन अन्धे शिकारी को समझा सका
कौन घबराई हरनी का दुख पा सका
औरतें सरहदों की तरफ़ चल पड़ी
कोई झिझकी कहीं और रोई कहीं
नाक की कील सर की रेदा[4] भी नहीं
जूतियाँ घर के दहलीज़ पर रह गईं
आगरा रात की तरह सुंसान था
चाँद का हुस्ने-संजीदा[5] हैरान था

राजधानी में होने वाले उपद्रवों को भारत के इतिहास में एक विशेष महत्व प्राप्त है। यह कितने दुर्भाग्य की बात है जहाँ देश के प्रमुख नेतागण, मन्त्री, अधिकारी आदि सेना व पुलिस के साथ पधारते रहे हों वहीं स्थान साम्प्रदायिक दलों के लिये भी अड्डा बन जाये। दिन-दहाड़े लोगों की हत्या की जाये। यहाँ तक कि राष्ट्रपिता को भी गोली मार दी जाये। उर्दू कवि को इन कुल बातों का पूर्ण ध्यान है अतः यदि वह देखता है कि दिल्ली में मंत्रणा-परिषद् के भवन का भी सिर झुक गया है तो आश्चर्य की बात नहीं। वास्तव में इन उपद्रवों ने पूरे भारत का सिर झुका दिया था। 'वामिक़' अपनी कविता 'देहली' में कहते हैं —

(१) परम्परा (२) लगातार (३) बरछों (४) चादर (५) गम्भीर सुन्दरता।

हमारी मजलिसे-शूरा[1] के ऊँचे-ऊँचे महल
नज़र झुकाये जमूदे-असल[2] से सर बोझल
वो बेबसी कि ज़रा आगे बढ़ नहीं सकते
किताबे-वक़्त[3] की तहरीर पढ़ नहीं सकते
भड़क रहे हैं निगाहों के सामने शोले
ज़बाँ न मुँह में हो जिसके वो किस तरह बोले
ये शहरे-दिल्ली बहिश्ते-नज़र[4] जो था कल तक
बना हुआ है जहन्नुम ज़मीं से ता-बा-फ़लक
सियाह शोले दिलों की सियाहियाँ लेकर
उठे हैं आज वतन की तबाहियाँ[6] लेकर
तमाम शहर प छाई हुई है इक वहशत[7]
नज़र झपकते ही कैसी बदल गई हालत
दरिन्दे दौड़ते फिरते हैं सर्द लाशों में
लहू से तर किये नाख़ून, गोश्त दाँतों में
घरों का हाल तो बाज़ार से भी बदतर है
जिधर उठाओ नज़र ज़िन्दगी मोक़द्दर[8] है
जो लुट चुके हैं वो घर सायँ-सायँ करते हैं
जो जल रहे हैं अभी सर्द आहें भरते हैं
निकल पड़े हैं मकानों को छोड़कर शहरी
जब आबरू प बन आई तो मौत की ठहरी
हज़ारों औरतों का आज लुट रहा है सोहाग
न जाने कितनी तमन्नाओं[9] में लगी है आग
यतीम बच्चे बिलकते हैं गोदियों के लिये
ग़रीबे-शहर तरसते हैं रोटियों के लिये
उजड़ के कितने मआबुद[10] बने सियहख़ाने[11]
जो आदमी को न समझा, ख़ोदा को क्या जाने
ये हाल देख के सकते में आ गई है फ़सील
तमाम क़िला का मैदाँ बना है ख़ून की झील

---

(१) मंत्रणा परिषद् (२) क्रिया का गतिरोध (३) समय की पुस्तक (४) स्वर्ग (५) आकाश तक (६) विनाश (७) बर्बरता (८) मलीन (९) आ... (१०) पूजागृह (११) कुकर्मगृह

बहाये बैठी है आँसू लहू के चाँदनी चौक
करोल बाग़ के दिल में करौलियों की नोक
पुरानी दिल्ली से भी बढ़ गई नई दिल्ली
पुराने क़िला में जाकर बसी नई दिल्ली
हज़ार बार ये बस्ती उजड़-उजड़ के बसी
हज़ार बार ये दिल्ली बिगड़ बिगड़ के बनी
मगर कुछ अबकी दफ़ा इस तरह के चरके हैं
कि जितनी चोटें हैं उतने ही दिल के टुकड़े हैं
ये जोड़ तो सकते हैं लेकिन कहाँ है वो मरहम
जो टूटे रिश्तों को क़ौमों के कर दे फिर बाहम[1]
मगर ये कैसे हो जब चारा-साज़[2] ख़ुद लाचार
इलाज कौन करे जब तबीब[3] ख़ुद बीमार
हमारी मजलिसे-शूरा के ऊँचे-ऊँचे महल
नज़र झुकाये जमूदे-अमल से सर बोभल

साम्प्रदायिक उपद्रवों के विषय पर उर्दू में इतनी कुछ सामग्री एकत्रित हो गई है कि उनमें सबका वर्णन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। प्रमुख कवियों में प्रायः सभी ने किसी न किसी रूप में इस विषय पर अपने भाव प्रकट किये हैं। उनमें 'जोश' मलीहाबादी की 'फ़सादी लीडर के नाम' मजाज़ लखनवी की 'वतन-आशोब', सरदार जाफ़री की 'आँसुओं के चराग़', गुलाम रब्बानी ताबाँ की 'इन्तेक़ाम', वामिक की 'बिहार', 'गति भयंकर', 'तअर्रुफ़', 'नौवारिद मेहमान से', 'मुसलिम हिन्दी', 'माँ' और 'ज़मीर' अख़्तरुल ईमान की 'ग़ुलाम रूहों का कारवाँ' और 'आज़ादी के बाद', फ़िक्र तौंसवी की 'काफ़ला', 'कैफ़ी' आज़मी की 'क़ौमी हुक्मराँ' बलराज कोमल की 'अकेली', अहमद नदीम क़ासिमी की 'एक तारीख़ी कहानी', 'फ़ारिग़' बोख़ारी की 'पन्द्रह अगस्त', अख़्तर होशयारपुरी, की 'पन्द्रह अगस्त के बाद', अख़्तर कमाल की 'सवाल हाए-बेजवाब', कमाल अहमद सिद्दीक़ी की 'रात नाचने लगी' और 'क़द्रें' आदि मुख्यतः उल्लेखनीय हैं। इन सब कवियों ने अपनी कविताओं में मानव-मित्रता को उभारा है और इसके विपरीत कार्य करने वालों की निन्दा की है। 'जोश' मलीहाबादी ने अपनी कविता 'हिन्दुस्तान

---

(१) परस्पर (२) उपचारक (३) इलाज करने वाला।

व पाकिस्तान का नाअरा' में एक दूसरा प्रयोग किया है। अब तक प्र व्यक्ति ने उपद्रियों की निन्दा ही की थी। उनके भावों का विश्लेषण किया था। 'जोश' ने बड़ी कलाकारी से काम लेते हुये व्याख्यात्मक रू उन बातों को सामने रखा है जो एक मानव-शत्रु सोच सकता है —

ए शख़्स हमको ग़ौर से क्या देखता है तू
हाँ ! हम हैं, जौरपेशा,[१] ख़ूँरेज़ो[२]-मर्ग-ख़ू[३]
ये देख कोहनियों से टपकता हुआ लहू
बेटों के सर उड़ाये हैं, बापों के रू-बरू[४]
ज़ोलीदा[५] काकुलों[६] की घटाओं के सामने
बच्चों को भून डाला है माओं के सामने
चुन-चुनके हमने खाये हैं कितने ही नौजवाँ
अतफ़ाल[७] के गलों में भी डाली हैं रीसमाँ[८]
पीराने-ख़स्ताजाँ[९] के भी तोड़े हैं उस्तख़ाँ[१०]
गुलचेहरा[११] औरतों की भी काटी हैं छातियाँ
दो कर दिया है चीर कर हमने, यक़ीन कर,
बच्चों को उनको माओं की गोदी से छीन कर
बूजहल की शराब से छलके जाम[१२] को
बट्टा लगा दिया है मोहम्मद के नाम को
ज़िन्दा किया है रावने-दोज़ख़-मोक़ाम[१३] को
हाँ ! हमने रूसियाह[१४] बनाया है राम को
क़ुरआँ को हम प फ़ख़ है, वेदों को नाज़ है
सच है हरामज़ादे की रस्सी दराज़ है
मजबूरियों को तज के ख़रीदेंगे अख़्तियार[१५]
पायेंगे दीन बेच के दुनिया का इक़्तेदार[१६]
दैरो-हरम[१७] को छोड़ के मानिन्दे-अहले-नार[१८]
हम और सलतनत का सँभालेंगे कारोबार

(१) अत्याचारी (२) रक्तपात करने वाला (३) मृत्यु-प्रकृति (४) सा (५) उलझा हुआ (६) केशों (७) बच्चे (८) रस्सियाँ (९) कमज़ोर बूढ़े (हड्डियाँ (११) गुलाब की तरह चेहरा रखने वाली (१२) प्याला (१३) रा जिसका स्थान नरक में है (१४) पतित, जिसका चेहरा काला हो (अधिकार (१६) सत्ता (१७) गिरजा और मसजिद (१८) नरक वालों की तरह।

सर अपने लेंगे क़ौम की इस हाय हाय को
और छोड़ देंगे ऊँट को, तज देंगे गाय को
अब तक कि दम है हिन्दुओ-मुस्लिम के दरमियाँ
हाँ ! हाँ !! छेड़ी रहेगी यूँ ही जंगे-बेअमाँ[1]
उलझी रहेंगी शामो-सहेर[2] ज़ेरे-आसमाँ[3]
ये चोटियाँ सरों की, ये चेहरों की दाढ़ियाँ
हाँ ! होश में क़त्ताल[4] का भंगी न आयेगा
जिस वक़्त तक पलट के फ़िरंगी न आयेगा

देश और जाति के विनाश से उर्दू कवि पूरी तरह प्रभावित हुआ। नज़्म कहने के अलावा ग़ज़लों में इस प्रकार के विचार लिपिबद्ध किये गये। ग़ज़ल अपने विशेष रूप और कला के कारण प्रत्यक्ष रूप में किसी की निन्दा नहीं करती, उसके शिकवा में भी अदा होती है। कवियों ने ग़ज़ल की इस अदा से भी फ़ायदा उठाया और कभी साफ़-साफ़ और कभी सैन-संकेत में अपनी बातें पेश कीं। ऐसा करते हुये उन्होंने बड़ी कलाकारी से काम लिया और ग़ज़ल की भावना को क्षति न पहुँचने दिया, जिससे शेर की आन-बान दोबाला हो गई —

तुझे हो सैरे-चमन मुबारक, मगर ये राज़े-चमन भी सुनले
कली कली ख़ून हो चुकी थी, शगुफ़्त-गुलहाए-तर[5] से पहले
कहाँ कहाँ उड़के पहुँचे शोले, ये होश किसको, ये कौन जाने
हमें है बस इतना याद अबतक लगी थी आग अपने घर से पहले
भरी बहार में ताराजिए-चमन[6] मत पूछ !
ख़ोदा करे, न फिर आखों से वो समाँ गुज़रे
('जिगर' मुरादाबादी)

बहार आते ही टकराने लगे क्यों साग़रो-मीना
बता ए पीरे-मैख़ाना[7] ये मैख़ानों प क्या गुज़री
अभी तो चश्मे-इबरत[8] वक़्त का रफ़्तार देखेगी
अभी ये किस तरह कह दूं सितमरानों[9] प क्या गुज़री
(जगन्नाथा 'आज़ाद')

---

(१) कभी शान्ति न देने वाला युद्ध (२) सुबह और शाम (३) आसमान के नीचे (४) हत्या-स्थल (५) ताज़ा खिले हुए फूल (६) बाग़ की बरबादी (७) मधुशाला के वृद्ध (८) शिक्षामयी आँखें (९) अत्याचारकर्ताओं।

हम अपनी तख़रीब[1] कर रहे हैं, हमारी वहशत का क्या ठिकाना
फ़ज़ा में बिजली न हो तो ख़ुद ही, उजाड़ देते हैं आशियाना
ग़मे-मोहब्बत तलाश करने चले थे लेकिन ये कैफ़ियत है
झुकी झुकी मुज़महिल नज़र से झलक रहा है ग़मे-ज़माना
(ज़हीर काश्मीरी)

साम्प्रदायिक उपद्रवों ने उर्दू ग़ज़ल पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। विभिन्न विचार धारा रखने वाले कवियों ने विभिन्न रूप में अपने विचार प्रस्तुत किये। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि आवेग के समय भी उन्हें अपना उद्देश्य याद रहा और उन्होंने उपद्रव करने वालों की निन्दा करते समय किसी पक्षपात से काम नहीं लिया। इस प्रकार की ग़ज़लें उर्दू में बहुत सी हैं जो कि पूरी की पूरी साम्प्रदायिकता के विरोध में प्रबल विचारधारा प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणार्थ 'साहिर' लुधयानवी की एक ग़ज़ल देख लीजिये—

तरबज़ारों[2] प क्या बीती, सनम-ख़ानों[3] प क्या गुज़री
दिले-ज़िन्दा तेरे मरहूम[4] अरमानों प क्या गुज़री
ज़मीं ने ख़ून उगला, आसमाँ ने आग बरसाई
जब इनसानों के दिन बदले तो इनसानों प क्या गुज़री
हमें ये फ़िक्र उनकी अनजुमन[5] किस हाल में होगी
उन्हें ये ग़म कि उनसे छुट के दीवानों प क्या गुज़री
मेरा इलहाद[6] तो ख़ैर एक लानत[7] था सो अब भी है
मगर इस आलमे-वहशत[8] में ईमानों प क्या गुज़री
ये मंज़र कौन सा मंज़र है, पहचाना नहीं जाता
सियहख़ानों[9] से कुछ पूछो, शबिस्तानों[10] प क्या गुज़री
चलो वो कुफ़्र[11] के घर से सलामत आगये, लेकिन
ख़ोदा के ममलेकत[12] में सोख़ता-जानों[13] प क्या गुज़री



(१) ध्वस (२) सुख-स्थल (३) नायिका-गृह (४) स्वर्गीय (५) सभा (६) धर्म विमुखता (७) तिरस्कार (८) दुर्दशा (९) अर्थात् गरीबों का घर (१०) अर्थात् अमीरों का घर (११) अधर्म (१२) राज्य (१३) दुखियारों।

चौथा अध्याय

महात्मा गांधी की हत्या

भारतीय मान्यताओं के अनुसार जब धरती पर पाप, पाखण्ड, अन्याय एवं हिंसा का अतिक्रमण होता है तो सज्जन को दुख और दुरात्मा को अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे संकट के समय कोई ऐसा युगान्तकारी महा-पुरुष जन्म लेता है जिसकी समस्त शक्तियाँ जन-भावना को मुखरित करती हैं। वह अपनी मंगलमयी कल्पना को सरकार बनाकर और जीवन के प्रति एक सामाजिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करके पापाचार, पाखण्ड, अनीति और हिंसा के बजाय सदाचरण एवं सद् विवेक के नवीनतम स्रोत प्रवाहित करता है। अंग्रेज़ों के अत्याचारपूर्ण राज्य काल में महात्मा गांधी की पृष्ठ-भूमि इसी प्रकार की है।

महात्मा जी का परिचय भारत वालों से प्रत्यक्ष रूप में नहीं हुआ। उनकी ख्याति का सूर्य सर्वप्रथम दक्षिणी अफ्रीका के अन्धकारमय वातावरण के बीच अंग्रेज़ों की दमन-नीति के विरोध में उदय हुआ। दक्षिणी अफ्रीका में बहुत से भारतवासी व्यापार और नौकरी के उद्देश्य से रहा करते थे। वे प्रवासी भारतीय वहाँ के शासकों के अत्याचार से परेशान थे। गांधी जी ने सबसे पहले उनमें आत्मबल और स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न की। अहिंसा के शांति-मय सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने वहाँ के भारतीयों में नई चेतना-शक्ति फूंक दी। थोड़े ही दिनों में उन्होंने भारतीयों में ऐसा साहस भर दिया कि वे अपने भाग्य को बदलने के प्रयास में संलग्न हो गये। यद्यपि उस समय महात्मा जी की स्थिति मिस्टर मोहनदास कर्मचन्द गांधी, बार० एट० ला० की ही थी किन्तु उनका व्यक्तित्व अफ्रीका तक सीमित न था। उनके संघर्ष ने सारे संसार को उनकी ओर आकृष्ट कर दिया था। भारत के समाचार-पत्रों में विशेष कर उनके स्वतंत्रता के संघर्ष का वर्णन छपता था। अतएव उन्होंने भारत की राजनीति में प्रवेश किया तो वे किसी प्रकार अपरिचित नहीं थे।

भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन के नेतृत्व का भार महात्मा गांधी ने उस समय ग्रहण किया जब कांग्रेस नरम-दल और गर्म-दल की लहरों के बीच सन्दिग्धता में हचकोले खा रही थी। उन्होंने केवल उचित नेतृत्व ही को नहीं

निछावर करना पड़े ! इस सम्बन्ध में उन्हें महान् अन्तर्राष्ट्रीय शहीद इमाम हुसैन से भी प्रेरणा मिली थी,[१] जो सत्य की रक्षा के लिये अपने साथियों समेत करबला के तपते हुये मैदान में शहीद हो गये थे। इसी प्रकार महात्मा गांधी की सामाजिक सेवायें भी एक विशेष स्थान रखती हैं। अस्पृश्यता-निवारण एवं बुनियादी शिक्षा योजना उनके क्रिया-क्षेत्र का आधार बनी हुई थीं।

महात्मा गांधी का उद्देश्य अहिंसा परमो धर्मः था। वे हिंसात्मक कार्य-प्रणाली में विश्वास न रखते थे। अफ्रीका से लेकर अब तक जितने आन्दोलन उन्होंने चलाये, उनका विशेष उद्देश्य जनता में आत्महीनता की भावना समाप्त करके आत्मबल और आत्मसम्मान का पाठ सिखाना था। वे राजनीति के मूल्यों को एक सर्वोच्च नैतिक आधार पर देखना चाहते थे। इस उद्देश्य को सामने रखते हुये उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन की भी विधिवद्धता की। यद्यपि इस सम्बन्ध में उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े परन्तु विजय भी उन्हीं के हाथ में रही। वह दिन भी आया जब उनका स्वप्न साकार हुआ, भारत माता के पैरों की बेडी काटी गयी और लाल क़िला पर देश का तिरंगा फहराया गया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की यह गतिविधि गांधी जी के सिद्धान्तों के आधार पर राष्ट्रीय उपलब्धि बनकर अवतरित हुई।

जैसा कि पिछले अध्याय मे हमने साम्प्रदायिक आन्दोलन एवम् नर-बलि के नंगे नृत्य के विषय में विश्लेषण किया है, स्वतंत्रता के साथ-साथ विष बेल के समान उगी थी। उसकी विषमता देश के विभाजन और अंग्रेज़ों के कुकर्मों के साथ सम्बद्ध थी। परिणाम स्वरूप स्वतंत्रता के साथ सारे देश में साम्प्रदायिक उपद्रव भी होने लगे। कलकत्ता, नोआखाली और बिहार के बाद ये लपटे दिल्ली तक पहुँचने लगीं। महात्मा गांधी, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही इस प्रकार की विषमता के विरोध में बिताया था, इस दुराचार से सबसे अधिक दुखी थे। उन्हे इस प्रकार से उपद्रवों का होना अपने सिद्धान्तों की हार जान पड़ी। इसके विरोध में वे स्वयं उठ खड़े हुये। उन्होंने पीड़ित क्षेत्रों का भ्रमण करके वहाँ के लोगों को सान्त्वना दी। भारत में अभी उनका सम्मान बाक़ी था। जहाँ भी वे गये उनके प्रेम की बूँदों ने साम्प्रदायिकता की ज्वाला को ठंडा कर दिया। महात्मा जी की यह मानवीय मित्रता देश

(१) हुसैन डे, (लखनऊ, अगस्त १९४२) के अवसर पर महात्मा जी का संदेश।

के संकीर्ण साम्प्रदायिक तत्वों को बहुत खली। धीरे-धीरे देश की साम्प्रदायिक शक्तियों ने उनके ख़िलाफ़ खुला विद्रोह करना शुरू किया। जगह-जगह उनके विरुद्ध षड्यंत्र किये जाने लगे। दिल्ली में होने वाले उपद्रवों से विशेष लाभ उठाया गया और महात्मा जी को खुल्लम-खुल्ला हिन्दुओं का शत्रु कहना प्रारम्भ किया गया। गांधी जी इन धमकियों से भयभीत होने वाले न थे। उन्होंने खुलकर साम्प्रदायिक तत्वों की निन्दा की और अपने राज्य में अपने को लुटवाने पर आश्चर्य किया। अन्त में मजबूर होकर 'आमरणव्रत' रखने की घोषणा भी की। इस घोषणा से सारा भारत काँप उठा। दिल्ली वासियों की एक मीटिंग ने १२ हज़ार आदमियों के हस्ताक्षर के साथ एक निवेदन प्रस्तुत किया कि हमें आप की शर्तें मंज़ूर हैं। आप अपना व्रत तोड़ दीजिए। दिल्ली में उपद्रव भी समाप्त हो गये। परन्तु अब साम्प्रदायिक वर्ग उनके बिलकुल विरुद्ध हो गया। महात्मा जी प्रार्थना में गीता के साथ क़ुरआन और इन्जील का भी पाठ करते थे। इसका भी विरोध किया गया और हैन्डबिल भी बाँटे गये। यहाँ तक कि एक दिन प्रार्थना में बम फेंका गया। भारत के सौभाग्य से महात्मा जी बच गये। किन्तु उनके जीवन का सौभाग्य भारत को बहुत दिनों तक प्राप्त न रह सका। भारतीय इतिहास को कलंकित करने वाला भी जन्म चुका था। देशघातक तत्वों ने उन्हें आख़िर देश से ही छीन लिया। देश के साम्प्रदायिक तत्वों के एक पागल प्रतिनिधि ने प्रार्थना में जाते हुये उनकी हत्या कर दी और स्वयं भारतमाता के मस्तक का कलंक बन गया।

महात्मा गांधी की हत्या कोई मामूली बात न थी। पूरा भारत इस दुर्घटना से काँप उठा। भारत का सूर्य जो पौन-सदी से उसको प्रकाशित कर रहा था अकस्मात् बादल में लुप्त हो गया। सारे संसार में महात्मा गांधी का शोक मनाया गया। भारत सरकार ने तीन दिनों तक पूर्ण शोक का वातावरण रखा। किन्तु दुख एवं लज्जा की बात है कि जहाँ चारों ओर राष्ट्रपिता की हत्या पर जनता की दुखभरी चीखें सुनाई दे रही थीं वहाँ कुछ इन्सान के रूप में भेड़िये उज्जैन व ग्वालियर में खुल्लम-खुल्ला ख़ुशी मना रहे थे और मिठाइयाँ बाँट रहे थे। इस प्रसंग में भारत का साम्प्रदायिक वर्ग इतना बदनाम हुआ कि उस समय के हिन्दू-महासभा के सभापति डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया।

महात्मा गांधी का व्यक्तित्व केवल राजनीति अथवा समाज-कल्याण तक सीमित न था। भारत के जागरूक एवं अनुभूति पूर्ण साहित्यकारों को भी उससे प्रेरणा मिली। उर्दू इस अनुषंग में शायद भारतीय भाषाओं में सबसे आगे है। उसमें उस समय भी महात्मा गांधी के राजनीतिक अनुसंधानों एवं अहिंसा की प्रशंसा मिलती है, जब भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन अपनी प्रारम्भिक स्थिति में था। पं० बृज नारायन 'चकबस्त' ने सर्व प्रथम 'फ़रयादे-क़ौम' के नाम से एक कविता १९१४ ई० में लिखी। उसके पश्चात् होम-रूल की स्थिति आते-आते फिर 'चकबस्त' ने मिसेज़ एनी बेसेन्ट और महात्मा गांधी का नाम लेकर भारतवासियों के ख़ून में गर्मी पैदा की। 'अकबर' इलाहाबादी ने भी अपने रंग में स्वदेशी आन्दोलन, हिन्दू-मुसलिम सहयोग और राजनीतिक-संघर्ष इत्यादि पर महात्मा जी के व्यक्तित्व को अभीष्ठ रखते हुए एक काव्य संग्रह 'गांधी नामा' संकलित किया। डा० इकबाल राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी से सहमत न थे परन्तु उनके महान् व्यक्तित्व का सम्मान करते थे। उन्होंने अपनी उर्दू और फ़ारसी दोनों रचनाओं में बहुत-सी जगहों पर गांधी जी के लिये 'मर्दे पोख़्ताकारो-हक़अन्देशओ-बासफ़ा[1] की तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। उर्दू कवियों के एक बड़े वर्ग ने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व, देशभक्ति, नेतृत्व एवं आदर्श पर अपने उद्गार प्रकट किये हैं। ज़फ़र अली ख़ाँ, मौलाना 'सफ़ी', 'सीमाब' अकबराबादी, 'हसरत' मोहानी, 'साग़र' निज़ामी, नवाब जाफ़र अली ख़ाँ 'असर', आनन्द नारायण 'मुल्ला', 'जोश' मलीहाबादी और 'शमीम' करहानी इत्यादि महात्मा गांधी के महान् व्यक्तित्व एवं आदर्श से प्रभावित हैं। इस सम्बन्ध में कही गई प्रत्येक कविता श्रेष्ठ वर्ग की नहीं है परन्तु महात्मा जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश अवश्य डालती है।

श्रद्धा-स्नेह और सूझ-बूझ की मिली-जुली स्थिति लिये हुये उर्दू कवि शुरू से महात्मा गांधी का ज़िक्र करते आये हैं। इस प्रकार की अकस्मात् हत्या से वे बहुत दुखी हुये। देश में छाये हुये शोक के वातावरण ने उनके दिलों में शोक एवं क्लेश की भावना भर दी और आँखों से करुणा के आँसू और क़लम से धधकती अनुभूति से भरे शब्द निकल पड़े। इन्हीं शब्दों ने कविताओं का रूप धारण कर लिया। जिसने जिस आँख से महात्मा

(१) सत्यवादी, साधु और कर्तव्यशील व्यक्ति।

गांधी को देखा था उसी प्रकार वर्णन करने लगा। 'जोश' मलीहाबादी इनक़लाबी शाएर हैं, उन्होंने देखा था कि महात्मा गांधी के नेतृत्व ने किस प्रकार भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को सफल बनाया है और उन्होंने अपने प्राण निछावर करके कौन-सा स्थान प्राप्त कर लिया है, इसीलिये वे महात्मा जी को 'हिन्द का शाहे शहीदाँ' कहते हैं। नवाब जाफ़र अली ख़ाँ 'असर' लखनवी उन्हें दूसरी तरह देखते हैं। उनके सामने महात्मा जी के समाज कल्याण के महान् कार्य हैं। अतः वे उन्हें 'आरिफ़े-यगाना' समझते हैं। 'मजाज़' लखनवी उनकी मानव-मित्रता से प्रभावित हैं। उन्हें आश्चर्य है कि वह महापुरुष, जिसने अपने आख़िरी साँस एवं शरीर के अन्तिम रक्त-बूँद तक मनुष्य को मानवता का पाठ दिया था, उसकी हत्या किस प्रकार कर डाली गयी। उन्हें इस 'सानेहा' पर बड़ा दुःख है—

हिन्दू चला गया न मुसलमाँ चला गया
इनसाँ की जुस्तुजू[1] में इक इनसाँ चला गया

अल्लामा जमील मज़हरी भी महात्मा जी की हत्या को एक महान् अन्तर्राष्ट्रीय हानि समझते हैं। अपने करुण उद्गारों को प्रकट करते हुये उन्होंने लिखा —

ये क्या हुआ कि अँधेरा सा छा गया इकबार
उदास हो गईं सड़कें उजड़ गये बाज़ार
बढ़ा रही हैं उरूसाने-हिन्द[2] अपना सिंगार
ठहर गई है सरे-राह[3] वक़्त की रफ़्तार
सुकूते-शाम[4] में इक रंगे बेकसी क्यों है
ये आज नब्ज़े-तमद्दुन[5] रुकी-रुकी क्यों है
निसार[6] होते हैं शोले ये किसकी मैयत पर
ये कौन हो गया, क़ुरबान राहे-मिल्लत[7] पर
ये किसके ख़ून के धब्बे हैं आदमीयत पर
मोक़ामे-हैफ़[8] है ए हिन्द तेरी क़िस्मत पर
बहार आते ही लूटा ख़िज़ाँ ने बाग़ तेरा
तेरी हवाओं ने गुल कर दिया चराग़ तेरा

(१) खोज (२) हिन्दुस्तान की दुल्हनें (३) रास्ते के किनारे (४) संध्या की नीरवता (५) संस्कृति की नाड़ी (६) निछावर (७) राष्ट्र की राह (८) तिरस्कार की जगह।

वे उसका वक़्त के धारे को मोड़ते जाना
हर एक मोड़ पर कुछ नक़्श[1] जोड़ते जाना
अमल[2] से पावँ की ज़ंजीर तोड़ते जाना
दिलों के टूटते रिश्तों को जोड़ते जाना

ग़रज़ कि आँख प परदा जो था, उठा के गया
दिलों की ईंट से मन्दिर नया बना के गया

मैं मानता हूँ कि तूने दिलों को जोड़ दिया
जो सो रही थीं उमंगें[3] उन्हें झिंझोड़ दिया
मगर वतन से जो बाँधा था अह्द[4] तोड़ दिया
क़रीब आई जो मंज़िल तो साथ छोड़ दिया

जो रास्ते में असा[5] रख के राहबर सो जाय
तो फिर बजा[6] है ये ख़तरा कि काफ़ला खो जाय

ये क्या कि जेठ में जब प्यास तेज़ हो सबकी
तो सूख जाये उसी वक़्त जल भरी नद्दी
उगे जो चाँद कभी लेके चाँदनी अपनी
तो उसकी फ़िक्र में मिंडलाये हर तरफ़ बदली

अगर रहेगा तेरा हुस्ने-इन्तेज़ाम[7] यही
तो फिर रहेगी खोदाई[8] में सुब्हो-शाम यही।

उर्दू के बहुत से कवियों ने इस विषय पर कवितायें लिखी हैं। उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की हत्या को बहुत बड़े दुख के साथ अनुभव किया। उन्होंने इस हत्या को किसी व्यक्ति की हत्या नही मानी। उनके कविमन को ऐसा लगा जैसे किसी ने भारत की प्राचीन मान्यताओं पर चोट की है। वह महापुरुष जिसने भारत को नवीन जीवन प्रदान किया था उसकी इस तरह हत्या कर डालने की घटना ने सब को तड़पा दिया। महात्मा जी ने 'जीवन दान' दिया था, प्रत्येक क्षेत्र में उनकी महिमा बखानी जा रही थी परन्तु भारतवासियों का सिर दुख एवं शोक से झुका जा रहा था। 'अर्श' मलसियानी ने इसी प्रकार की भावनाओं को अपनी कविता में स्थान दिया है—

(१) चिह्न (२) क्रिया (३) उल्लास (४) प्रतिज्ञा (५) लाठी (६) उचित (७) सुन्दर प्रबन्ध (८) विश्व।

ऊँचे परबत गहरे सागर देखके है हैरान
उड़ सकता है कितना ऊँचा
जा सकता है कितना गहरा
धुन का पक्का बात का सच्चा इक कमज़ोर इनसान
तूफ़ानों में जिसके बदल से हर मुश्किल आसान
सबको साहस देने वाला
देश की नैया खेने वाला
हाथ में ले पतवार अगर वे काँप उठें तूफ़ान
वीर, बहादुर, योद्धा जिसका करे ज़माना मान
उसकी ऊँची शान
उत्तम और महान
बापू उत्तम और महान

देश पिता ने कटती-मरती देखी जब संतान
दर्द-भरी आवाज़ उठाई
गुमराहों को राह दिखाई
इस पर भी जब अन्त में देखा ख़ुद अपना अपमान
अपने इक बेटे की गोली खाकर दे दी जान
उसकी ऊँची शान
जग में उसकी ऊँची शान
उत्तम और महान
बापू उत्तम और महान

धरती डोली अम्बर डोला, देख के ये बलिदान
अली, हुसैन, हसन के पथ पर
ईसा और लिनकन के पथ पर
जिस पथ पर सोक्रात ने चलकर रक्खी अपनी आन
दिया उसी पथ पर बापू ने देश को जीवन दान
उसकी ऊँची शान
जग में ऊँची शान
उत्तम और महान
बापू उत्तम और महान

भारत के नेतृत्व का भार महात्मा जी ने बहुत दिनों तक अपने कंधों पर उठाया था। देश के संकट काल में उन्होंने अपने अमर सिद्धान्तों द्वारा जनता को स्वतंत्रता की प्रेरणा दी थी। देश की स्वतंत्रता के बाद की स्थिति में उनकी दशा एक आशा-दीप की थी। जहाँ भी वे गये उनके ओजपूर्ण व्यक्तित्व के प्रकाश से साम्प्रदायिकता की घटायें वातावरण से हट गईं। वे 'मीरे-कारवाँ' बने सारी जनता को उसका मार्ग दिखाते रहे, लोगों में उनकी अवहेलना की जाती रही फिर भी वे अपने सन्देश को वैसे ही सुनाते रहे। इसीलिये जब सहसा देश पर समस्त घटनायें वज्रपात-सी गिरीं तो ऐसा लगा जैसे देवलोक वालों ने यह देखकर कि धरती वाले उनका वह सम्मान नहीं कर रहे हैं, जो वास्तविक रूप में करना चाहिये, महात्मा गाँधी को अपने यहाँ बुला लिया। 'वामिक' की कविता 'वतन का मीरे-कारवाँ' बड़ी प्रभावशाली एवं सुन्दर कविता है। उनका विश्वास है कि महात्मा जी हमारी नज़र से दूर होकर हमारे दिलों के निकट हो गये हैं—

जवाब इसका कौन दे किसे अब इतना होश है
कि आज हिन्द किसके सोग में सियाहपोश[१] है
जवाब इसका कौन दे ये किसका ख़ून बह गया
ये कौन जाते जाते दिल का राज़ सबसे कह गया
ये कौन क़त्ल हो गया
फ़सानए-हयात[२] कौन कहते कहते सो गया
जवाब इसका कौन दे
कि ख़ुद हमारे हाथ उस लहू में हैं रँगे हुये
वो बूढ़ा जिस्म मर गया मगर वो काम कर गया
जिसे न जीते जी न अपने आगे पूरा कर सका
तमाम[३] उम्र दर्से-अम्नो-आशती[४] दिया किया
तमाम उम्र जो इसी उमेद पर जिया किया
कि एक दिन ज़रूर सारे तफ़रक़े[५] मिटायेगा
फ़साद[६] का ये खोखला तिलिस्म[७] टूट जायेगा

---

(१) काला वस्त्र धारण किये, शोक प्रदर्शन (२) जीवन-गाथा (३) समस्त (४) सुख-शन्ति का पाठ (५) मतभेद (६) उपद्रव (७) रहस्य।

वही बुज़ुर्गे-ख़ानदाँ[1] वही हमारा रहनुमा[2]
हमीं से आज छुट गया
ग़लत कि मीरे-कारवाँ[3] ग़लत कि अपना पासबाँ[4]
नज़र से दूर हो गया
नज़र से दूर होते ही दिलों में खिंच के आ गया
हमारी रूह[5] के शिकस्ता[6] तारों को मिला गया
दिलों में जिनके चोर हैं वो ख़ूब इसको जान लें
कि रात फिर अब न आयेगी घटा न दिल प छायेगी
कि जिसको आज ये कोई कमन्द[7] फिर लगा सके
जो सो रहे थे जाग उठे
वो चाँद जो ग़ुरूब[8] हो गया था बनके आफ़ताब
दिलों को इक नई शोआए-ज़िन्दगी[9] में गूँथता
बुलन्द होता जा रहा है मशरिक़ी-फ़ज़ाओं[10] में

महात्मा गांधी के उद्देश्यों से प्रभावित होकर उर्दू कवियों ने एक सुन्दर एवं श्रेष्ठ संकलन एकत्रित कर दिया है। महात्मा जी की हत्या के विषय पर विशेषकर कवितायें कही गई हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कवितायें देखी जा सकती हैं —

रखवाला लाखों जानों का ग़मख़्वार[11] ग़रीब किसानों का
निकला वो जब अपनी कुटिया से दिल काँप उठा ऐवानों[12] का
शक्ती से मोहब्बत की उसने मुँह फेर दिया बलवानों का
मँझधार में उसको पाया है जब ज़ोर बढ़ा तूफ़ानों का
मज़बूत थे हक़[13] से हाथ उसके
अल्लाह की रहमत[14] साथ उसके
रहबर[15] भी, रिशी भी, क़लन्दर[16] भी इस दौर[17] का एक पयम्बर[18] भी
मेहतर भी, ग़रीब जोलाहा भी संसार के शाहों से बेहतर भी
था एक फ़क़ीर बरहना[19] वो थर्राते थे जिससे लश्कर भी
क्यों लोग चिता पर लाये हैं क्यों फुँकता है नूर[20] का पैकर भी

---

(१) परिवार का वरिष्ठ (२) नेता (३) कारवाँ का सरदार (४) रक्षक (५) आत्मा (६) टूटे हुये (७) फन्दा (८) अस्त (९) जीवन अग्नि-की शिखा (१०) पूर्व के वातावरण (११) सवेदक (१२) सदन (१३) सत्य (१४) दया (१५) नेता (१६) मस्त फ़क़ीर (१७) समय (१८) धर्म महात्मा (१९) नग्न (२०) प्रकाश

वो दिल से ग़म धोने वाला
वो मर के अमर होने वाला
फ़ाँ जब कोई आयेगा तो उससे कौन बचायेगा
रों की, बेआसों की कौन आकर आस बँधायेगा
ग दिलों में भड़की है अब कौन ये आग बुझायेगा
के अछूत, अभागों को अब कौन गले लगायेगा
इक तू जो नहीं ग़म दूना है
अब भारत सूना-सूना है

(बापू—हामिद उल्ला 'अफ़सर')

इस शान्ती वाले दाता से व्योहार न टूटे ए साथी
हम झूल रहे हैं झूला जिस प वो तार न टूटे ए साथी
क्यों रोक रहा है बढ़ने दे इस प्रेम-लता को बढ़ने दे
बहता है जो आँसू बहने दे ये तार न टूटे ए साथी
परलोक की बातें चलकर परलोक में समझी जायेंगी
हम सबकी मुहब्बत का बंधन इस पार न टूटे ए साथी
वो काम करें हम क्यों जिससे भारत के पिता का दिल टूटे
मन्दिर का कलस या मसजिद का मीनार न टूटे ए साथी
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आपस में रहें भाई-भाई
गूँधा है जो बूढ़े माली ने वो हार न टूटे ए साथी
उस वक्त तलक सुखसागर की लहरों से न खेला जायेगा
उस देश दुरोही की जब तक तलवार न टूटे ए साथी
जीना हो कि मरना ए साथी सब साथ का अच्छा होता है
दम टूटे तो टूटे आपस का व्योहार न टूटे ए साथी
रखता है 'नज़ीर' उनको जो सुखी उपदेश का उनके पालन कर
इस तार से वो सुनते हैं ख़बर ये तार न टूटे ए साथी

(गांधी जी की याद में—'नज़ीर' बनारसी)

सत्य का पालन करने वाला ज्ञानी व विद्वान
तेरा जीवन था संसार की शान
तूने दिया था अँधियारे में उजियारे का दान

तेरे त्याग ने तोड़ दिया माया का अभिमान
तेरे उठ जाने से अपने हाथों से आशा के दामन छूटे
प्रेम के बन्धन टूट गये हैं
रोज़-रोज़ कब आते हैं जग में तुझसे सावन्त
देवता, साधू, संत
सदियाँ बीतें तो पैदा हो तुझ जैसा इनसान
मानुष जीवन का आदर्श था तेरा शान्ति सुभाव
लुट गया है ए धरती तेरा सुहाग, सिंगार बनाव
ए आज़ादी के रखवाले, औतारों के महिमा वाले
ए आज़ादी के मन्दिर के प्रेम पुजारी
तेरे दर्शन को आये हैं सब संसारी, सब नरनारी
मीठी नींद में सोया है तू किस आलम में खोया है
आँखें खोल हमें पहचान
'आन लगा है बान पुजारी, आन लगा है बान'
तूने बढ़ाया था संसार का मान
अब तुझ से दोबाला हो जायेगी स्वर्ग की शान
सत्य का पालन करने वाला ज्ञानी व विद्वान
(उजियाले का दान—

शहीद कौन है इस शान का वफ़ा के लिये
बता सके तो बताये कोई ख़ोदा के लिये
थी ज़िन्दगी भी तेरी, मौत भी ख़ोदा के लिये
वो और होंगे जो मरते हैं मास्वा[1] के लिये
इसीलिये हो मुसलमान में कि हिन्दू हो
तड़पते हैं हरमो-दैर[2] इसी सदा[3] के लिये
समझने वाले बिलआख़िर[4] समझ ही जायेंगे
अभी से क्यों वो समझते नहीं ख़ोदा के लिये
ख़ोदा ही रहम करे उन मुसाफ़िरों पर 'अम्न'
भँवर को खींच के लाये जो नाख़ोदा के लिये
(गांधी की शहादत—गोपी

(१) अतिरिक्त, सूफियों का एक विशेष विश्वास (२) मसजिद (३) आवाज़ (४) आख़िर में।

किसने ज़हर पिया
तुझको जलाने मुझको जलाने
दौड़ पड़ा वो बात निभाने
जीवन दान दिया
ये किसने ज़हर पिया
बिखरे जाते थे दीवाने
बीच में आया सबको बचाने
हँस हँस घाव लिया
ये किसने ज़हर पिया !
जिसकी हत्या में भी था हित
शाएर की आँखों में अमरित
उसको नज़्र किया
ये किसने ज़हर पिया

(बापू—डा० मसऊद हुसैन ख़ाँ)

इन कविताओं से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि उर्दू कवि महात्मा जी के व्यक्तित्व को भारत के लिए एक वरदान के रूप में समझते हैं। महात्मा जी का मानव-प्रेम से ओतप्रोत जीवन विशेषकर उनके विचारों को प्रेरित करता है जिसमें समानता एवं समन्वय का प्रभुत्व है। भारत की समस्त जातियाँ स्वतंत्र देश की निधि से लाभ उठाने के लिये समान अधिकार रखती है और जो इसका विरोधी है वह अपने राष्ट्र के जीवन को कलंकित करता है। उर्दू कवियों ने महात्मा जी के अमर उद्देश्यों को प्रसारित करते हुये, उनकी श्रद्धाञ्जलि में इन्हीं फूलों को बिखेरा है। उन्होंने केवल शोकगीत मात्र नहीं लिखे हैं बल्कि उनके उद्देश्य को आगे बढ़ाया है और यही समय की सबसे बड़ी माँग थी। इस दृष्टि से इन कविताओं का महत्व अत्यधिक है।

गांधी-साहित्य के संकलन में उर्दू कवियों ने प्रारम्भ से जो प्रयास किया था उसका विशेष उदाहरण महात्मा गांधी की हत्या पर कही गयी कविताओं में मिलता है। इस दुखमय घटना पर अधिकांश कवियों ने कुछ न कुछ अवश्य कहा है जिसका सिंहावलोकन इस अध्याय से भी हो सकता है। विस्तार से बचने के लिये बहुत से शाएरों को छोड़ दिया गया है वरना इस सम्बन्ध में 'जिगर' मुरादाबादी की 'गांधी जी की याद में', जगन्नाथ 'आज़ाद'

की 'गांधी', शमीम करहानी की 'पीरे-मशरिक़', तिलोक चन्द 'महरूम' की 'अहिंसा का पैग़म्बर', कृष्ण गोपाल 'मग़मूस' की 'यादे-गाँधी', मज़हर इमाम की '३० जनवरी १६४८', तालिब देहलवी की 'तासुरात', अशरफ़ भोपाली की 'गांधी', 'अर्श' बदायूनी की '३० जनवरी १६४८', 'ज़िया फ़तहबादी' की 'गाँधी', मुनव्वर लखनवी की 'गांधी जी की शहादत' इत्यादि 'कवितायें भी अपना महत्व रखती हैं।

पाँचवाँ अध्याय

विश्वशान्ति-आन्दोलन

शान्ति मानव-सभ्यता और संस्कृति की पहली कामना है। मानवीय प्रवृत्तियों में से वह आदिम प्रवृत्ति है जो मूल-भूत रूप से जीवन में समरसता, विकास और सौहार्द्र के लिये प्रेरणा देती है। मनुष्य इसके लिये पाषाण युग से ही क्रियाशील रहा है। उसने प्रारम्भ में ही यह अनुभव कर लिया था कि सभ्यता के विकास के लिये शांति और सन्तोष की बड़ी ज़रूरत होती है। सत्य तो यह है कि शुरु में उसने जो लड़ाइयाँ भी लड़ीं इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये थीं। मानो शांति वह मंज़िल है जिसको उपलब्ध करने के लिये मानव समाज और मानव जाति सदैव से प्रयत्नशील रही है।

धर्म को मानव-समाज में एक विशेष स्थान प्राप्त रहा है और इतिहास बताता है कि उसने सबसे अधिक विचारों की धारायें मोड़ी हैं। दुनिया के प्रत्येक धर्म का बुनियादी उद्देश्य शांति रही है। यद्यपि यह भी अपनी जगह सत्य है कि संसार में सबसे ज़्यादा दंगे, विद्रोह और युद्ध भी धर्म ही के नाम पर हुये हैं, फिर भी जब हम धर्मों की मूल शिक्षाओं पर नज़र डालते हैं तो यही मालूम होता है कि शांति एवं सन्तोष के लिये ही उनका अस्तित्व रहा है। महात्मा बुद्ध ने सारनाथ की पुण्य भूमि से जो ज्ञान, धर्म और शांति की किरणें बिखेरीं वे मानव-इतिहास की उन उदात्त प्रवृत्तियों की परिचायक हैं जिनके प्रकाश से भारत ही नहीं विश्व को चेतना का प्रकाश आज भी मिलता है। बौद्धमत के अतिरिक्त जैनमत भी इसी प्रेरणा से ओतप्रोत है। उन्होंने अपनी शिक्षा में मनुष्य तो क्या कीट-पतंगों का मारना भी पाप बतलाया। वैष्णव मत ने भी अपने भक्ति के महान आदर्श में शांति की प्रेरणा समाविष्ट की है। इस्लाम अरबी के 'सिल्म' शब्द से निकला है जिसके अर्थ सुलह और सलामती के होते हैं। वह उपद्रवों और दंगों को नष्ट करके शांति व संतोष की व्यापक व्यवस्था स्थापित करने आया था। मसीह एक गाल पर थप्पड़ मारने वाले को दूसरा गाल पेश कर देने को कहते हैं। संक्षेप में यह कि शांति प्रत्येक धर्म का ध्येय है। यह एक ऐसी शक्ति है जो सबको आलिंगनबद्ध किये हुये है।

उर्दू साहित्य मे यों तो शांति का परिशोध एवं उसकी प्रशंसा शुरू से ही मिलती है किन्तु यहाँ जिस प्रकार हम 'शांति' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, वह उस इच्छा का नाम नहीं है जो ललित-कलाओं में किसी न किसी प्रकार मिलती है। यहाँ 'शांति' से अभिप्राय वह आन्दोलन है जो दूसरी बड़ी लड़ाई के समाप्त होने के बाद संसार के सामने आया। यों तो जान-माल के नुक़सान से मानव-जाति सदैव प्रभावित हुई है लेकिन दूसरे महायुद्ध में विज्ञान की उन्नति ने ऐसे भयानक और विनाशकारी यंत्र पैदा कर दिये जिससे युद्ध केवल युद्ध-क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा। उन यंत्रों से केवल किसी देश का नाश ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति के नाश की सम्भावनायें तीव्र हो गई। एटम-बम और हाईड्रोजन-बम ऐसे शक्तिशाली यंत्र इन्सानों के हाथों में आ गये जिनसे लोगों को शंका होने लगी कि अगर इनके प्रयोग पर प्रतिबन्ध न लगाया गया तो शायद सारा विश्व ही इसकी लपेट में आकर नष्ट हो जायगा। सभ्यता की समस्त प्रगति एवम् संस्कृति का पूर्ण विकास जो मनुष्य ने लाखों वर्षों के परस्पर श्रम व संधान से प्राप्त किये हैं, एक क्षण में विनष्ट हो जायेंगे। इन बमों की भीषणता का अनुमान इससे किया जा सकता है कि जहाँ यह बम फटता है उसके आसपास की सैकड़ों मील दूरी की दुनिया ही बदल जाती है। उदाहरण के लिये हिरोशिमा की दशा देख लीजिये। महान वैज्ञानिकों का कथन है कि आज तो उससे कहीं ज्यादा ताक़तवर और विनाशकारी बम अमरीका और रूस के पास मौजूद हैं।

कवि, साहित्यकार और कलाकार उस महान संस्कृति के अधिकारी एवं रक्षक होते हैं जो लाखों वर्षों में मनुष्य अर्जित कर पाता है। इसीलिये जब तृतीय विश्वयुद्ध का भय हुआ तो सौन्दर्य एवम् भावनाओं की उदात्त प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि कवियों एवम् कलाकारों ने मानव जाति को विज्ञान के दिये हुये यंत्रों के दुरुपयोग से रोका। जनता को उस महान एवम् भयानक ख़तरे से सचेत किया। उन्होंने बार-बार इस बात की घोषणा की कि यह नाम के नेता अपने फ़ायदे के लिये तुम्हारी ज़िन्दगी से खेल रहे हैं। इसी भय को ध्यान में रखते हुये पेरिस में १९४९ ई० में कुछ समझदार लोगों ने एक कान्फ्रेंस की जिसमें ७२ देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये। परिस्थितियों पर विचार करके निर्णय हुआ कि—

'जनता युद्ध नहीं चाहती, युद्ध केवल वे लोग चाहते हैं
जो कपटी हैं, जो निर्दयी हैं, जो मानव असमभाव पर जीवित

हैं, जिनके लिये इनसानी ख़ून तेल और धान की तरह बिकाऊ माल है बल्कि इन चीज़ों से भी सस्ता है।'

संसार के कुल तटस्थ राजनीतिकों, विचारकों, साहित्यिकों और कलाकारों ने इस विश्वव्यापक शांति-आन्दोलन का स्वागत किया। भारत भी इस सिलसिले में किसी देश से पीछे न रहा। बम्बई में ११, १२, १३ मई १९५१ को एक अखिल भारतीय शांति परिषद् (All India Peace Convention) का अधिवेशन हुआ जिसके सभापति-मंडल में डा० सैफ़उद्दीन किचलू, डा० अटल, पृथ्वी राज कपूर, पं० सुन्दर लाल, अनिल विश्वास, प्रो० कोशम्बी, मुल्कराज आनन्द और बाबा सोहन सिंह भाखना थे। इस परिषद् ने देश में शांति-आन्दोलन के संगठन के लिये विभिन्न अपीलों, प्रस्तावों और वक्तव्यों को रखा जिनमें इस बात पर ज़ोर दिया गया कि शांति-आन्दोलन मानव-सभ्यता के स्थायित्व और उन्नति में बहुत लाभदायक और उपयोगी है। लोक-सभा के सदस्यों और देश की जनता के अलावा उसने सभ्यता के अधिकारियों से भी एक अपील की जिसका ज़िक्र यहाँ अनुचित न होगा—

'निःसंकोच युद्ध-उपासक अपने आर्थिक लाभ के कारण लड़ाई की तैयारी करते हैं। यह भी सत्य है कि मानव-मस्तिष्क को जातियों के बीच भ्रान्ति, भय, घृणा और शत्रुता की दीक्षा द्वारा युद्ध के लिये तैयार किया जा रहा है—रेडियो, प्रेस, फ़िल्म, टेलीविजन आदि को जनता में अविश्वास, घृणा पैदा करने और लड़ाई को अपरिहार्य सिद्ध करने के लिये प्रयोग किया जा रहा है। चुटीले वाक्य और भड़काने वाले वक्तव्य वास्तविक युद्ध के लिये मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

मानव-मस्तिष्क को इस मनोवैज्ञानिक युद्ध के लिये तैयार करने में प्रसार के ये महान् साधन, जो दानव का रोल कर रहे हैं, इसको अभीष्ठ रखते हुये अखिल भारतीय शांति परिषद् संसार की सभ्यता के नेताओं—साहित्यकारों, कवियों, नाटककारों, फ़िल्म प्रोड्यूसरों, पत्रकारों, रेडियो कमिन्ट्रियों से इस अनुषंग में उनके

उत्तरदायित्व को अनुभव करने की माँग करता है, चाहे वे किसी भी दृष्टि के समर्थक हों और सब ऐसी चीज़ों को लिखने, प्रकाशित करने और प्रोपगन्डा करने से घोर विरक्ति पैदा करें जो कि —

०—जनता में प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अविश्वास या घृणा पैदा करें।

०—युद्ध या अत्याचार को प्रोत्साहन प्रदान करें।

०—जनता की कामनाओं का उपहास या अनुचित प्रदर्शन करें।

०—किसी प्रकार राष्ट्रीय या जातीय अनुभूतियों व भावनाओं को ठेस लगायें।

परिषद् अपने पोषकों में विशेषकर साहित्यकारों से माँग करती है कि वे अपने क़लम की रचनात्मक शक्ति से मानव भ्रातृत्व और जातियों के बीच मित्रता की नींव पर शांति के लक्ष्य का प्रसार करें'[1]

भारत के लोकप्रिय प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने बिना इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिये अलग से कांग्रेस मंच से शान्ति आन्दोलन के विकास में प्रेरणा दी। उन्होंने अपने भाषणों में जनता को समझाया कि इस समय का सबसे बड़ा ख़तरा जंग की बात करना और जंग की तैयारी करना है —

'दुनिया ने पहले एटम बम देखा, वह बुरा हो सकता है लेकिन एटमी शक्ति जनता के लिये फ़ाएदेमन्द चीज़ भी है। अब उसका बड़ा भाई हाइड्रोजन बम आया है। हाइड्रोजन बम का तबाही के अलावा और कोई इस्तेमाल नहीं……हाइड्रोजन बम की तबाही इतनी व्यापक है कि उसके इस्तेमाल के बाद के नतीजे की कल्पना करना भी मुश्किल होगा।'

और फिर युद्ध के भयानक परिणाम को जनता के समक्ष रखने के बाद उससे बचने का उपाय भी बतलाया—

1. Peace And The Indian People, P 16

> 'हम खामोश कैसे बैठ सकते हैं अगर हम इस खौफ़नाक इस्तेमाल को रोकना चाहते हैं जो बहुत नेक ख़याल है'' न सिर्फ़ देश और राज्य बल्कि हर औरत और मर्द इस बात का हक़ रखता है कि वह इस बात का इज़हार करे कि वह इस बम से क्या महसूस करता है। क्योंकि इसने इनसानियत के भविष्य को लरज़ा दिया है।'[1]

उर्दू के कवि बौद्धिक रूप से अपने को दुनिया की जनता के इतना निकट समझते हैं कि समसामयिक परिस्थितियों से सचेत रहते हुये विश्व राजनीति से बराबर प्रभावित होते रहते हैं। अपने पहले की परम्पराओं पर दृष्टि रखते हुये उन्होंने इस शांति आन्दोलन में भी भाग लिया और यथाशक्ति इस प्रेरणा को आगे बढ़ाया। अतः आज शान्ति की रक्षा और युद्ध की निन्दा उनके चिन्तन और कल्पना में एक विशेष स्थान प्राप्त कर चुकी है। 'वामिक' जौनपुरी ने इसका बहुत अच्छा विश्लेषण किया है। वे चाहते हैं कि 'नीला परचम' व्यापक हो जाये :—

हम इसलिये अम्न[2] चाहते हैं
कि जंग के भूत कोरिया की हदों से बाहर निकल न आयें
बुझा दो इस आग को वहीं पर
दोबारा फिर जी उठे न हिटलर
कि जिसके नापाक साये में आके जंगबाज़ अपने जुल्म ढाये।

हम इसलिये अम्न चाहते हैं
कि एशिया से सुफ़ैद क़ौमें हटा लें अपना सियाह डेरा
ये काले बादल बरस न जायें
हम आज मिलकर क़सम ये खायें
कि हिन्द को हम न बनने देंगे कभी भी इस जंग का अखाड़ा

मगर हम उस वक़्त क्या करेंगे
पड़ोस में आग जब लगेगी

(१) ११ अप्रल १९५४ का एक भाषण (२) शान्ति।

तो उठके शोले ज़रूर लपकेंगे अपने प्यारे वतन की जानिब
ख़िज़ाँ बढ़ेगी चमन के जानिब
तुम्हें अभी कुछ पता नहीं है
यहाँ कभी बम गिरा नहीं है

वो हिरोशिमा व नागासाकी का क़ातिल अब तक मरा नहीं है
हमारी मसजिद के ऊँचे-ऊँचे मिनारों का सर झिंझोड़ देगा
हमारे मन्दिर के जगमगाते कलस के गहने को तोड़ देगा
हमारे गंगो-जमन के सीमीं[१] कलाइयों को मरोड़ देगा
हमारे ये ताज और अजन्ता जमाले-मरमर,[२] जमाले असवद[३]
हमारी तहज़ीब के अमर कारनामे जिनके नक़ूशो-गुम्बद
हमारी तख़लीक़[४] के नमूने
हमारे पिन्दार[५] के सफ़ीने[६]

जवान हो जो हुये थे पैदा
जवान जो आज तक रहे हैं
जवान ताज़िन्दगी रहेंगे

मगर इन ऐटम के ज़लज़लों में शबाब इनका न टिक सकेगा
कोई न इनको बचा सकेगा

हमारी तहज़ीब जिसके नग़मों में इश्क़ की रूह पल रही है
हमारी तहज़ीब जिसके रक़्सों[७] में नौजवानी मचल रही है
मुसव्वरी[८] वो कि जिसकी आँखों में फ़िक्र की शमा[९] जल रही है
वो बुतगरी[१०] जिसके साक़ो-क़द[११] में हुस्न की आँच ढल रही है
हमारी तहज़ीब जिसके मेमार[१२] तुलसी व कालीदास जैसे
बरहना[१३] इनसानियत के तन पर पहनाया जाये लिबास जैसे

हमारी तहज़ीब के ग़ज़लख़्वाँ टैगोरो-ग़ालिबो-मीर जैसे
हमारी तहज़ीब के निगहबाँ हरीशचन्द और नज़ीर जैसे

---

(१) रजत (२) सफेद पत्थर का सौन्दर्य (३) काले पत्थर की सौन्दर्य (४) रचना (५) दम्भ (६) नौका (७) नृत्य (८) चित्रकारी (९) दिया (१०) मूर्तिकला (११) भुजाओं एवं आकार (१२) निर्माणकर्ता (१३) नग्न।

हयाते-जावेद[1] पा चुके हैं
मगर ये डर है कि मर न जायें
ये सच्चे मोती बिखर न जायें

कथाकली का वो पैरहन[2] तुमसे अम्न की भीक माँगता है
मनीपुरी का कुँवारापन तुमसे अम्न की भीक माँगता है
खनक अदाओं का बाँकपन तुमसे अम्न की भीक माँगता है
ये परचमे अम्न ही के साये में रहके परवान चढ़ सकेंगे
फ़ोनून-मश्शातए-जहाँ[3] हैं मोहाफ़िज़त[4] इनकी हम करेंगे
वे सिनअतों[5] जिनको हम सीने से लगा के रखे हुये हैं अब तक
हमारे गुमनाम दस्तकारों के साथ ही साथ चल बसेंगी

अगर न ये जंग रुक सकी तो
हमारी तारीख़े-इरतेक़ा[6] सोनहरी जिल्दें, रुपहली सतरें
लहद[7] में निसयाँ[8] के दफ़्न होंगी
हमारी हव्वा हमारी मरियम, हमारी सीता, हमारी राधा
हमारी जून और हमारी जोया
उरूसे[9]-हासिल उरूसे-दुनिया

हमारे दिल में न रह सकेंगी
हमारी दुनिया को छोड़ देंगी
हमारी उज़रा हमारा शैली हमें कभी फिर न मिल सकेंगी
हमारी शोरीं जो आज अपनी शरतों से है घर की रौनक़
न घर रहेगा न घर की रौनक़

न जाने ये जंग क्या करेगी
बस एक सन्नाटा एक वहशत[10]
मोहीब[11] चीख़ें क़दम-क़दम पर
हवा में गोली की सनसनाहट
वो मौत के ख़ौफ़ से जिसके दिल अभी से दहल रहा है

(१) अमर जीवन (२) कपड़ा (३) संसार को सजाने वाली कला (४) रक्षा (५) कलायें (६) विकास का इतिहास (७) समाधि (८) विस्मृति (९) दुल्हन (१०) खिन्नता (११) भयानक।

हमारे खेतों की छातियों को न जाने कब तक ये टैंकें रौंदें
न जाने कबतक न आग बरसाने वाले राकेट फ़ज़ा में कौंदें
अगर हम इससे बच गये तो वबाई-कीड़ों के बम गिरेंगे
अगर हम इससे भी बच गये तो नेयामे-बम[१] का शिकार होंगे

बदन प उभरेंगे कोढ के दाग़
बदल के रह जायेंगी शबाहत[२]
ज़मीन पर एड़ियाँ रगड़कर
हमें तमन्नाये मौत होगी
मगर न हम जल्द मर सकेंगे—

कोई न होगा किसी का हमदम !
वो जंग होगी कि हश्र होगा !!

शान्ति की आवाज़ संसार की सारी जनता की आवाज़ है जो इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि उसकी व्यापकता से युद्ध करने वाले भी भयभीत हो रहे हैं। आज 'शान्ति' कोई मामूली-सा शब्द नहीं है। इसकी कल्पना रखने में स्वर्गीय सुख है। 'राही' मासूम रज़ा भी अपनी मशहूर नज़्म में विश्व में शांति के प्रतीक नीले परचम को फहरा देने की बात बड़े सशक्त ढंग से कहते हैं :

खोलो नीला परचम साथी, खोलो नीला परचम
युद्ध की अग्नि की लपटों से जीवन की जूही कुम्हलाये
लै की डोरी टूट रही है गाये तो भौंरा कैसे गाये
शबनम[३] अंगारों की क़ैदी, कौन कली की प्यास बुझाये
काजल की कविता मिलती है, नैन-कँवल[४] में नीर भर आये

जीवन की वीना पर कोई झपट रहा है मौत का सरगम
खोलो नीला परचम साथी खोलो अपना नीला परचम
जीवन की कोमलता पर अब रेंग रहे हैं कोढ़ के धब्बे
खेतों की हरियाली में अब होते हैं एटम के चरचे
युद्ध से दूकानों पर हलचल, मिल को इक पल नींद न आये

(१) बम की तलवार (२) आकृति (३) ओस (४) क़लम के आकार की वस्तु जिसमें मोमबत्ती जलाते हैं।

युद्ध आकाश के ध्यान का दुश्मन, युद्ध से सागर का दिल धड़के
धरती की ये आस न टूटे नस्लों में है फूलों का मौसम
खोलो नीला परचम साथी खोलो अपना नीला परचम

युद्ध यानी हर रात अमावस, युद्ध यानी हर दिन गहनाया
दीवाली भी दीप को ढूँढे, युद्ध से चारों ओर अँधियारा
युद्ध यानी दीवारें बैठें, युद्ध यानी शमशान हो दुनिया
युद्ध यानी सड़कों पर बिगड़े, सारा रंग-रचाव कला का
युद्ध यानी हर घुँघरू बिखरे, युद्ध यानी चीख़े हर परचम
खोलो नीला परचम साथी, खोलो अपना नीला परचम

युद्ध यानी कलियाँ जल जायें, धूप पड़े और लाशें चिटख़ें
घुँघरू संगीनों पर उछले, मौत की ताल प लाशें नाचें
बालों की ख़ुशबू मर जाये, सड़ती गलती लाशें महकें
युद्ध यानी खेतों में लाशें घर और स्कूल में लाशें
धरती जख्मों से बेदम है आओ लगाओ अम्न का मरहम

खोलो नीला परचम साथी, खोलो अपना नीला परचम

धरती के सूखे होठों पर अम्न का रस टपकाओ
जीवन के मन्दिर में जाकर अम्न के सुन्दर दीप जलाओ
दुनिया भरके साज़ मिला कर, जीवन का संगीत बनाओ
जीवन के सपने नाच उठें अम्न का वो पैग़ाम सुनाओ
जीवन की बीना पर छेड़ो, अम्न की धुन मद्धिम मद्धिम
खोलो नीला परचम साथी खोलो अपना नीला परचम

की नाशवान शक्ति सारे संसार को झुलस कर राख बना देगी। न की सुन्दरतम उदात्त एवम् जीवन्त कोमलता एटम बम ज्वाला से सम्पूर्ण विश्व में तहस-नहस हो जायेगी। फिर हमें की मनोहर मुस्कान से आनन्द मिलेगा और न आँगन में खेलता तुतला-तुतलाकर हमको अपनी शरारतों की कथायें सुनायेगा। वी की कविता 'फूल—मेरा नन्हा सा बेटा' में इसी आतंकजन्य रुणा को प्रकट करती है—

'ए मेरे बेपरवा बेटे !
हुस्ने-ज़मीं के जोया[1] बेटे !
आ तुझको आग़ोश में ले लूँ
फेंक दे गेंद और बल्ला बेटे !
देख फ़ज़ा[2] में आग की थाली
जिसमें दोज़ख़ मँडलाते हैं
देख वो उड़ते भूत फ़लक पर
सूद के सौदागर आते हैं
कच्चे ख़ून की चाट है इनको

कहीं ये तुझको देख न पायें
छोटे छोटे नर्म लबों को
अंगारों पर भून न खायें
खोल न दें तोपों के दहाने[3]
तेरी हँसी को निगल न जायें
तेरे बढ़ते पाँव के दुश्मन
गेसूओं के अजगर छोड़ें
तेरी जुस्तजूओं के पंछी
टैंक के नीचे दम न तोड़ें'
खेल मेरे आँगन में बेटा !
खेल कि मैं ज़िन्दा हूँ अबतक
मेरे हाथ करोड़ों लाखों
से लेंगे आग़ोश[4] में तुझको
तेरे इन हाथों के होते—
ज़ीस्त की ये तौहीन न होगी
खेलो बेटा ! खेल दिखाओ
बल्ला पकड़ो, गेंद उठाओ
और फिर ऐसी हिट लगाओ
फ़लक को जाकर जो लरज़ादे !
मौत के उड़ते भूत भगा दे !!

(१) अन्वेषी (२) वातावरण (३) मुख (४) गोद ।

शांति आन्दोलन के सम्बन्ध में 'साहिर' लुधियानवी की सुप्रसिद्ध कविता 'परछाइयाँ' एक विशेष महत्त्व रखती है। यह कहना शायद अनुचित न होगा कि 'साहिर' की इस कविता का वर्णन किये बिना, उर्दू में शान्ति-आन्दोलन का वर्णन अधूरा है। 'साहिर' की कविता बहुत लम्बी है आइये संक्षेप में परछाइयाँ ही देख ली जायें—

जवान रात के सीने प दूधिया आँचल
मचल रहा है किसी ख़्वाबे-मरमरीं[1] की तरह
हसीन फूल, हसीं पत्तियाँ, हसीं शाख़ें
लचक रही हैं किसी जिस्मे नाज़नीं[2] की तरह
फ़ज़ा में घुल से गये हैं उफ़ुक़[3] के नर्म ख़ुतूत[4]
ज़मीं हसीन है, ख़्वाबों की सरज़मीं की तरह
तसव्वरात[5] की परछाइयाँ उभरती हैं

कभी गुमान की सूरत, कभी यक़ीं की तरह
वो पेड़ जिनके तले हम पनाह लेते थे
खड़े हैं आज भी साकित[6] किसी अमीं की तरह

इन्हीं के साये में फिर आज दो धड़कते दिल
ख़मोश होटों से कुछ कहने सुनने आये हैं
न जाने कितनी कशाकश[7] से कितनी काविश[8] से
ये सोते जागते लमहे चुरा के लाये हैं

यही फ़ज़ा थी, यही रुत, यही ज़माना था
यहीं से हमने मोहब्बत की इब्तेदा की थी
धड़कते दिल से, लरज़ती हुई निगाहों से
हुज़ूरे-ग़ैब[9] में नन्ही-सी इल्तेजा[10] की थी

कि आरज़ू के कँवल खिल के फूल हो जायें
दिलो-नज़र की दोआयें क़ुबूल हो जायें
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

---

(१) उजले स्वप्न (२) मृदुल-देह (३) क्षितिज (४) चिह्न (५) कल्पनाओं (६) स्थिर (७) उहापोह (८) जोखिम (९) अदृश्य ईश्वर की सेवा में (१०) आकाश।

तुम आ रही हो ज़माने की आँख से बचकर
नज़र झुकाये हुये और बदन चुराये हुये
ख़ुद अपने क़दमों की आहट से झेंपती, डरती
ख़ुद अपने साये की जुम्बिश से खौफ़ खाये हुये
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

रवाँ है छोटी सी किश्ती हवाओं के रुख़ पर
नदी के साज़ पर मल्लाह गीत गाता है
तुम्हारा जिस्म हर इक लहर के झकोले से
मेरी खुली हुई बाहों में झूल जाता है
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

मैं फूल टाँक रहा हूँ तुम्हारे जूड़े में
तुम्हारी आँख मसर्रत से झुकती जाती है
न जाने आज मैं क्या बात कहने वाला हूँ
ज़बान ख़ुश्क है, आवाज़ रुकती जाती है
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

मेरे गले में तुम्हारी गुदाज़[1] बाहें हैं
तुम्हारे होंटों प मेरे लबों के साये हैं
मुझे यक़ीं है कि हम अब कभी न बिछुड़ेंगे
तुम्हें गुमान कि हम मिलके भी पराये हैं
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

मेरे पलंग प बिखरी हुई किताबों को
अदाए-इज्ज़ो-करम[2] से उठा रही हो तुम
सोहाग रात जो ढोलक प गाये जाते हैं
दबे सुरों में वही गीत गा रही हो तुम
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

वो लमहे कितने दिलकश थे वो घड़ियाँ कितनी प्यारी थीं
वो सेहरे कितने नाज़ुक थे वो लड़ियाँ कितनी प्यारी थीं

(१) मृदुल (२) नम्रता एवं दया की भावना।

नागाह लहकते खेतों से टापों की सदायें आने लगीं
बारूद की बोझिल बू लेकर पच्छिम से हवायें आने लगीं
ख़ामोश ज़मीं के सीने में ख़ैमों की तनावें गड़ने लगीं
मक्खन-सी मुलायम राहों पर बूटों की ख़राशें पड़ने लगीं
फ़ौजों के भयानक बैंड तले चरख़ों की सदायें डूब गईं
जीपों की सुलगती धूल तले फूलों की क़बायें[1] डूब गईं
इन्सान की क़ीमत गिरने लगी, अजनास[2] के भाव चढ़ने लगे
चौपाल की रौनक़ घटने लगी, भरती के दफ़ातिर[3] बढ़ने लगे
बसती के सजीले शोख़ जवाँ, बन-बन के सिपाही जाने लगे
जिस राह से कम ही लौट सके, उस राह प राही जाने लगे
इन जाने वाले दस्तों में ग़ैरत भी गई बरनाई[4] भी
माओं के जवाँ बेटे भी गये, बहनों के चहीते भाई भी
बसती प उदासी छाने लगी, मेलों की बहारें ख़त्म हुईं
आमों की लचकती शाख़ों से झूलों की क़तारें ख़त्म हुईं
धूल उड़ने लगी बाज़ारों में, भूक उगने लगी खलियानों में
हर चीज़ दुकानों से उठकर रूपोश[5] हुई तहख़ानों में
बदहाल घरों की बदहाली बढ़ते-बढ़ते जंजाल बनी
मँहगाई बढ़कर काल बनी, सारी बस्ती कंगाल बनी
चरवाहियाँ रास्ता भूल गईं, पनिहारियाँ पनघट छोड़ गईं
कितनी ही कुँवारी अबलायें, माँ-बाप के चौखट छोड़ गईं
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

तुम आ रही हो सरेआम बाल बिखराये
हज़ार गूना मलामत[6] का बार उठाये हुये
हवस-परस्त[7] निगाहों की चीरा-दस्ती[8] से
बदन की झेंपती उरयानियाँ[9] छिपाये हुये
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

तुम्हारे घर में क़यामत का शोर बरपा है
महाज़े-जंग[10] से हरकारा तार लाया है

) वस्त्र (२) सामान (३) कार्यालय (४) जवानी (५) गुप्त (६) तिरस्कार
प (८) दुराचार (६) नग्नता (१०) रणक्षेत्र

कि जिसका ज़िक्र तुम्हें ज़िन्दगी से प्यारा था
वो भाई 'नरग़ाए-दुश्मन'[1] में काम आया है
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

वो रहगुज़र[2] जो मेरे दिल की तरह सूनी है
न जाने तुमको कहाँ लेके जाने वाली है
तुम्हें ख़रीद रहे हैं ज़मीर[3] के क़ातिल
उफ़ुक़[4] प ख़ूने-तमन्नाए-दिल की लाली है
तसव्वरात की परछाइयाँ उभरती हैं

सूरज के लहू में लुथड़ी हुई वो शाम है अब तक याद मुझे
चाहत के सुनहरे ख़्वाबों का अंजाम है अब तक याद मुझे
उस शाम मुझे मालूम हुआ, खेलों की तरह इस दुनिया में
सहमी हुई दोशिज़ाओं[5] की मुस्कान भी बेची जाती है
उस शाम मुझे मालूम हुआ, इस कारगहे-ज़रदारी[6] में
दो भोली-भाली रूहों की पहचान भी बेची जाती है

उस शाम मुझे मालूम हुआ, जब बाप की खेती छिन जाये
ममता के सुनहरे ख़्वाबों की अनमोल निशानी बिकती है
उस शाम मुझे मालूम हुआ जब भाई जंग में काम आयें
सरमाये के क़हबाख़ाने[7] में बहनों की जवानी बिकती है

सूरज के लहू में लुथड़ी हुई वो शाम है अब तक याद मुझे
चाहत के सुनहरे ख़्वाबों का अंजाम है अब तक याद मुझे

तुम आज हज़ारों मील यहाँ से दूर कहीं तनहाई में
या बज़्मे-तरबआराई[8] में
मेरे सपने बुनती होगी, बैठी आग़ोश पराई में
और मैं सीने में ग़म लेकर दिन-रात मशक़्क़त करता हूँ
जीने की ख़ातिर मरता हूँ
अपने फ़न[9] को रुसवा[10] करके अग़यार[11] का दामन भरता हूँ

(१) शत्रु-सेना (२) मार्ग (३) अन्तरात्मा (४) क्षितिज (५) कुँवा
(६) धनप्राधान-संसार (७) वेश्यालय (८) आनन्द-सभा (९) कला (१०) नि
(११) दूसरों ।

और आज जब इन पेड़ों के तले फिर दो साये लहराये हैं
फिर दो दिल मिलने आये हैं
फिर मौत की आँधी उट्ठी है, फिर जंग के बादल छाये हैं

मैं सोच रहा हूँ इनका भी अपनी ही तरह अंजाम न हो
इनका भी जुनूँ[१] नाकाम न हो
इनके भी मोक़द्दर में लिक्खी, इक ख़ून में लुथड़ी शाम न हो

सूरज के लहू में लुथड़ी हुई वो शाम है अब तक याद मुझे
चाहत के सुनहरे ख़्वाबों का अंजाम है अब तक याद मुझे

हमारा प्यार हवादिस[२] की ताब ला न सका
मगर इन्हें तो मुरादों की रात मिल जाये
हमें तो कशमके-मर्गे-बे-अमाँ[३] ही मिली
इन्हें तो झूमती-गाती हयात मिल जाये

बहुत दिनों से है ये मशग़ला सयासत का
कि अब जवान हों बच्चे तो क़त्ल हो जायें
बहुत दिनों से है ये ख़ब्त हुक्मरानों को
कि दूर दूर के मुल्कों में क़हत बो जायें

चलो कि आज सभी पाएमाल[४] रूहों से
कहें कि अपने हर इक ज़ख़्म को ज़बाँ करलें
हमारा राज़, हमारा नहीं सभी का है
चलो कि सारे ज़माने को राज़दाँ करलें

कहो कि अब कोई क़ातिल अगर इधर आया
तो हर क़दम प ज़मीं तंग होती जायेगी
हर एक मौजे-हवा रुख़ बदल के झपटेगी
हर एक शाख़ रगे-संग[५] होती जायेगी

कहो कि अब कोई ताजिर इधर का रुख़ न करे
अब इस जगह कोई कुँवारी न बेची जायेगी

---

(१) उन्माद (२) घटनाओं (३) मुक्तिहीन मृत्यु की असमंजस (४) दलि... पत्थर।

ये खेत जाग पड़े, उठ खड़ी हुईं फ़सलें
अब इस जगह कोई कियारी न बेची जायेगी

ये सरज़मीन है गौतम की और नानक की
इस अर्ज़-पाक[1] प वहशी न चल सकेंगे कभी
हमारा ख़ून अमानत है नसले-नव[2] के लिये
हमारे ख़ून प लशकर न पल सकेंगे कभी

कहो—कि आज भी हम सब अगर ख़मोश रहे
तो इस दमकते हुये ख़ाकदाँ[3] की ख़ैर नहीं!
जुनूँ की ढाली हुई एटमी बलाओं से
ज़मीं की ख़ैर नहीं, आसमाँ की ख़ैर नहीं

गुज़श्ता जंग में घर ही जले मगर इस बार
अजब नहीं कि ये तनहाइयाँ[4] भी जल जायें
गुज़श्ता जंग में पैकर[5] जले मगर इस बार
अजब नहीं कि ये परछाइयाँ भी जल जायें

तसव्वुरात की परछाइयाँ उभरती हैं

उर्दू में इस विषय पर काफ़ी मर्मस्पर्शी रचनायें लिखी गयी हैं। शायद ही कोई उल्लेखनीय कवि हो जिसने इस संग्राम में भाग न लिया हो। परन्तु 'फ़िराक़' गोरखपुरी की 'अमरीकी बनजारानामा' और 'डालर देश', सरदार जाफ़री की 'ख़ूनी हाथ', जाँनिसार अख़्तर की 'अम्न या जंग', नयाज़ हैदर की 'तीसरी जंग नहीं होगी', सलाम मछली शहरी की 'नीले पंख', मख़मूर जालन्धरी की 'हाइड्रोजन बम', कैफ़ी आज़मी की 'अम्न का परचम', हबीब तनवीर की 'जंग न होने पाये' अहमद नदीम क़ासिमी की 'आख़िरी फ़ैसला', जगन्नाथ 'आज़ाद' की 'रोकलों से पेरिस तक', मख़दूम मोहीउद्दीन की 'अँधेरा', नरेश कुमार 'शाद' की 'अम्न', मज़हर इमाम की 'चचा साम की अपील' प्रेमवाट बरटनी की 'फ़ाख़्ता की उड़ान' इत्यादि कवितायें इस सिलसिले में प्रमुख हैं। इन कविताओं को देखने से मालूम होता है कि शान्ति की प्रेरणा उर्दू के स्वभाव में बसी जा रही थी। लोग आपसी मतभेदों को

(१) पवित्र-भूमि (२) नवीन पीढ़ी (३) दुनिया (४) एकान्त (५) शरीर।

ूल गये थे और राजनीतिक क्षेत्रों में विचारों की विभिन्नता रखते हुये भी
ांति की मंज़िल में एक थे। स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ संकल्प-अनुष्ठान में
ांति की मंज़िल में एक थे। स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ संकल्प-अनुष्ठान में
ाग ले रही थीं। रज़िया क़िदवाई की कविता 'जंग और औरत' स्त्री-जाति
ी भावनाओं का बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शन करती है—

जंग से कौन बशर आज गुरेज़ाँ-सा[1] नहीं
ख़ौफ़ से कौन तबाही के परेशाँ-सा नहीं
लेकिन इस ख़ौफ़ ने औरत को किया है बेदार[2]
ज़ुल्म और जब्र[3] से लड़ने को किया है तैयार
उसके प्यारों को तबा जंग की कब रास आई
उसके ममता भरे दिल के न करो ज़ख़्म हरे
पिछली ही जंग के तो अभी नहीं ज़ख़्म भरे

जंग के और सितम अब न सहेगी औरत
ख़ुद ही इक जंग नई आज लड़ेगी औरत

वो है कोशाँ हसीं किरदार बनाने के लिये
नई दुनिया, नये मेमार[4] बनाने के लिये
अपने सिंदूर की लाली को बचाने के लिये
लहलहाते हुये खेतों की हिफ़ाज़त के लिये
मुसकुराते हुये फूलों की नफ़ासत के लिये
अपने माज़ी[5] की हसीं याद की अज़मत[6] के लिये
आने वाले नये अदवार[7] की म्लिवत[8] के लिये

आज औरत है बढ़ी अम्न की तलवार लिये
इक नया अज़्म[9] लिये, कुछ नये अफ़कार[10] लिये

शांति आंदोलन से प्रभावित होकर उर्दू के कवियों ने जहाँ इतनी सुन्दर
ाएँ कीं वहीं अनुवाद भी किया। वे जानते थे कि सारा मानव समाज
इस सम्बन्ध में हमारे साथ है। जिसके भी सीने में तड़पता हुआ दिल

(१) विमुख-सा (२) उद्विग्न (३) अत्याचार (४) निर्माणकर्ता (५) भूतकाल
महानता (७) युगों (८) वैभव (९) संकल्प (१०) विचार।

है वह इन्सान की बरबादी से अवश्य प्रभावित होगा और दिल की पुकार कविता की झंकार में ज़रूर सुनाई देगी। भारत की अपनी भाषाओं के अलावा उन्होंने विदेशी भाषाओं में उपलब्ध रचनाओं के भी अनुवाद किये। इन अनुवादों से उर्दू के काव्य-साहित्य में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है और अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराओं का संगम देखने को मिला है।

●

छठवाँ अध्याय

अन्तर्राष्ट्रीय विवेक

मानव सभ्यता के इतिहास की विडम्बना है कि ज्ञान एवं धर्म, संस्कृति एवं कला और बौद्धिक एवं धार्मिक श्रेष्ठता रखने वाली जातियाँ, जिनकी महानता की कथायें आज भी मिस्र के पिरामिड, दजला-फ़रात की घाटी, मोहनजोदड़ों, हड़प्पा और अजन्ता इत्यादि के खंडहर कहते रहते हैं सहसा अपने उन प्रतिद्वन्द्वियों के पराधीन हो गईं, जिनकी गिनती कुछ सदियों पूर्व सभ्य देशों में भी न होती थी।

भारत, ईरान, अरब, और मिस्र आदि अपने तिरस्कार को बहुत दिनों तक सहन न कर सके और विभिन्न उपनिवेशों में विदेशियों के विरुद्ध स्वतंत्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ हो गया। उर्दू कवि भारतीय परिस्थितियों के पीछे संसार के समस्त राष्ट्रों के संघर्ष और विदेशियों के अत्याचार का अनुमान करके स्वयं को उनके निकट पाते हैं। उनके दुख को अपना दुख समझते हैं। यही बात उनके अन्तर्राष्ट्रीय विवेक का कारण बनी।

प्रथम महायुद्ध के बाद सम्पूर्ण विश्व में पराधीनता के विरुद्ध स्वतंत्रता के जागरण की लहर बड़ी तेज़ी से बढ़ी। साम्राज्यवादियों ने पराधीनों को युद्ध में सम्मिलित करके अपने शत्रुओं के मुक़ाबिले में शक्ति तो अवश्य प्राप्त कर ली थी परन्तु पराधीनों को सेना के साथ उनके देश में जाने का भी अवसर मिल गया जिससे उन्होंने उनके खोखलेपन को भी समझ लिया था। युद्ध के बीच उनकी भेंट उन जन-नेताओं से भी हुई जो अपनी परिस्थितियों से उन्हीं की तरह परीशान थे। पराधीनों पर इस युद्ध की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया भी अच्छी हुई। इससे उन्हें अपनी शक्ति का अनुमान हो गया कि यदि वे संगठित रूप में किसी माँग पर अटल हो जायें तो साम्राज्यवादियों को उनके सामने झुकना पड़ेगा।

इसी समय विश्व के इतिहास में अपनी तरह की वह अनोखी घटना भी घटी जो समस्त देशों और विशेषकर एशिया के जागरण की प्रत्यक्ष

कड़ी है। ७ नवम्बर १९१७ को रूस में जो कुछ हुआ था वह पूँजीवाद एवं श्रमदल के उस टकराव का परिणाम था जो बहुत दिनों से धीरे धीरे हृदयों में पोषण पा रहा था। श्रमिकों की इस नई सरकार के पास मार्क्स का महान तत्वज्ञान था जिसमें मानव-जीवन और उससे सम्बन्धित समस्त बातों का उपाय भौतिक दृष्टिकोण से दिया गया था। रूस की इस जनक्रान्ति ने संसार के समस्त राष्ट्रों को उनके स्वतंत्रता-संग्राम में प्रोत्साहन दिया। एशिया के देशों पर उनकी निकटता के कारण उसका विशेष प्रभाव पड़ा। के० एम० पनिक्कर ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

'इससे किसी को इनकार नहीं होगा कि रूस की जनक्रान्ति ने एशिया की जनता की नाड़ी की गति बढ़ा दी और न इस पर ही शंका की जा सकती है कि इसने जन-जागरण में भी सहायता की और इससे ज्ञानी लोगों के हृदय में उन बहुत सी चीज़ों के सम्बन्ध में भ्रम ने जन्म लिया जिन्हें उन्होंने पश्चिम से बिना किसी संकोच के ग्रहण कर लिया था। इसी प्रकार यह भी मानना पड़ेगा कि इसने एशिया की जनता पर पश्चिम की पकड़ कमज़ोर कर दी'[1]

रूस की जनक्रान्ति के बाद एशिया के देशों में एक अन्तर्राष्ट्रीय विवेक व्यापक हो गया था। जनता में 'विश्व के समस्त स्वतंत्रता प्रेमी एक हों' की ललकार बराबर सुनी जा रही थी। उर्दू कवियों ने समयकी माँग को सदैव प्रिय रखा है, इस अवसर पर वे किसी से पीछे कैसे रह सकते थे। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीयता को भी अपनी रचना के द्वारा प्रस्तुत किया। उन्हें संसार के समस्त मनुष्यों को एक जैसा अनुभव किया। उदाहरणार्थ ज़हीर काश्मीरी की कविता 'बैनुल-अक़्वामियत' देखी जा सकती है—

दूर उधर, जब मेरे अजदाद[2] ने तक़सीम किया
रंग और नस्ल की बुनियाद प इनसानों को
परचमे-अम्न उतारे गये तहक़ीर[3] के साथ
जंग की गूँज ने थर्रा दिया वीरानों को

(१) Asia and Western Dominance P 253. (२) पूर्वजों (३) निरादर।

इसी अन्दाज़ से बहता रहा इनसाँ का लहू
इसी अन्दाज़ से हर मुल्क में चमकी शमशीर

सुब्ह होती है तो सूरत की तिलाई[1] किरनें
मशरिक़ी-कोह[2] प सिमटी हुई थर्राती हैं
ताबिशे-ज़ीस्त[3] क़बीलों से निकल कर फैली
जामली, पीकन व पीरू के समनज़ारों[4] से
नूर की मौज किसी तौर नहीं बट सकती
रंग और नस्ल की मिटती हुई दीवारों से

ताज, अहराम, अबुलहैल, मोअल्लक़-बाग़ात[5]
एक मज़बूत तसलसुल[6] का पता देते हैं

साम्राज्यवादियों ने पराधीनता की बेड़ी में विभिन्न देशों को कसते हुए एशिया पर अपनी विशेष दृष्टि रखी थी। भारत, ईरान, चीन, इन्डोनेशिया, सभी उनके क्रिया-क्षेत्र के केन्द्र बने हुये थे। साथ ही स्वतंत्रता की भावना ने दिलों में गर्मी पैदा कर दी तो एशिया इस समय भी सबसे आगे रहा। नेतृत्व का भार भारत ने उठाया तो स्वतंत्रता की प्रेरणा को प्रोत्साहन देने में उर्दू कवियों ने समय की पुकार का साथ दिया। एशिया के जागरण में उन्हें अपना भाग्य भी बदलता हुआ-सा दीख पड़ने लगा। इस अनुभव ने प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता के भावों को उद्‌गारित कर दिया। 'जोश' मलीहाबादी अपनी कविता 'इसतक़बाले-मयकदा' में एशिया के जागरण में इतने मस्त हैं कि उन्हें समस्त संसार एक मधुशाला-सा दीखता है—

कुछ नहीं परवा, नये पैमाने ढाले जायेंगे
एक क्या, सौ जश्न के पहलू निकाले जायेंगे

डग-डगाकर पियेंगे हम शराबे-गुलफ़रोशाँ[7]
गायेंगे-नाचेंगे, झूमेंगे, ज़मीनोआसमाँ

बुलबुलों के चहचहो छाजाओ सौते-ज़ाग़[8] पर
अब्र[9] के आवारा टुकड़ो, मिल के बरसो बाग़ पर

(१) स्वर्णिम (२) पूर्वीय-गिरि (३) जीवन-दीप्ति (४) पुष्पोद्यान (५) झूलते-बाग़ (६) सम्बन्ध (७) फूल की तरह लाल शराब (८) कव्वे की आवाज (९) बादल

कौसेरो[१]-गंगा के धारो, एक हो मिलकर बहो
मौत के गुल को निलल लो ज़िन्दगी के चहचहो
चाक हो यूँ फूट के परदो कि रोयें फ़ितना-साज़[२]
अपनी गिरहें खोल दे तारीख़ की ज़ुल्फ़े-दराज़[३]
हाँ तजल्ली[४] के मिनारे बनके उभरो पसतियो[५] !
बोलते शहरों में हो तबदील गूँगी बसतियो !
ए फ़ज़ा गुल-पैरहन[६] हो ए सबा[७] इठला के चल
ए ज़मीं अँगड़ाई ले, ए आसमाँ करवट बदल
ख़ाक को गरमाओ, कोहसारो[८] प नेज़े गाड़ कर
सुर्ख़ किरनों, मुसकुराओ बादलों को फाड़कर
आग के धारो बहो, लोहे के पहियो गनगनाओ
हाँ मशीनों बड़बड़ाओ, बिजलियो जुंबिश में आओ
हाँ तनआसानी[९] के डाएन को पटक दे ए वतन
धूप पर अपने पसीने को छिड़क दे ए वतन
ओस पड़ जायेगी, ख़ूनी धूप सौंला जायेगी
जब चलेगा झूम कर, सावन की रात आ जायेगी

सरदार जाफ़री की कविता 'हर्फ़े अव्वल' कई दृष्टियों से उर्दू में रखती है। वह एशिया के जागरण से इसलिये प्रसन्न है क्योंकि उनः यह अनुभव करता है कि अब साम्राज्यवादियों को अपना दुराचार हो पड़ेगा—

अब से होगा एशिया पर एशिया वालों का राज
दस्ते-मेहनत[१०] को मिलेगा दस्ते-मेहनत से ख़ेराज[११]
ज़िन्दगी बदली है, बदला है ज़माने का मेज़ाज
फोड़ देंगे हम ये आँखें, हमको मत आँखें दिखाव
एशिया से भाग जाव

डालरों के ज़ोर पर इस दरजा इतराते हो क्या
हमको अपनी तोप, अपने टैंक दिखलाते हो क्या

(१) स्वर्ग में दूध की नहर (२) उपद्रवकारी (३) लम्बे केश (
(५) अधम (६) लाल वस्त्र धारण किये (७) पुर्वाई (८) पर्वत (९
१०) मेहनत करने वाले हाथ ११ बोझ

हाइड्रोजन और एटमबम से धमकाते हो क्या
हम नहीं डरने के, जाकर अपने भूतों को डराव
एशिया से भाग जाव

बुन रहे हैं जाल मिलकर आज तसबीहो[1]-जनेव
बच के जा सकता नहीं देसी-बिदेसी कोई देव
पड़ रही है हर क़दम पर इक लिलंगाने की नेव
धान और गेहूँ के पौदों में कमानों का झुकाव
एशिया से भाग जाव

चल रहे हैं वक़्त और तारीख़ के खेतों में हल
फल रहे हैं पेड़ की शाख़ों में तलवारों के फल
साँस लेते ही बज उठते हैं, हवाओं के दोहल
अलअमाँ[2] बिगड़ी हुई सरकश फ़ज़ाओं का तनाव
एशिया से भाग जाव

एशिया हंसियों का जंगल है तुम्हारे वास्ते
साहिलों की रेत भूबल है तुम्हारे वास्ते
ख़ून से लबरेज़ छागल है तुम्हारे वास्ते
बून्द पानी भी न देंगे तुमको पानी के पियाव
एशिया से भाग जाव

तुम जहाँ भी पाँव रक्खोगे ज़मीं हट जायेगी
ज़ुल्म की गरदन, हवा के धार से कट जायेगी
ये फ़ज़ा इक बम के गोले की तरह फट जायेगी
सलतनत की फ़िक्र छोड़ो ख़ैर जानों की मनाव
एशिया से भाग जाव

एशिया की ख़ाक पर दम तोड़ता है सामराज
एशिया की ठोकरों में है मलूकीयत[3] का ताज

(१) माला जिसपर ईश्वर का नाम जपा जाये (२) भगवान् शांति दे
(३) सम्राटवाद

एशिया में एशिया का जश्ने-आज़ादी है आज
एशिया के ख़ून में है सुब्हे-मशरिक़[1] का रचाव
एशिया से भाग जाव

एशिया की जंग आज़ादी है इक दुनिया की जंग
है हमारे जख्मे-दिल में सारे आलम की उमंग
हाँ बदल जाने को है अब मशरिको[2] मग़रिब[3] का रंग
आज सब मिलकर पुकारो, मिलके सब नारे लगाव
एशिया से भाग जाव

एशिया के इस जागरण से दिलों में कितनी आशायें जन्म ले और उनकी कल्पना कितनी मनोहर थी इसका अनुमान करना हो तो सिद्दीक़ी की कविता 'मेरा एशिया' देखी जा सकती है —

हसीन ख़्वाबों की रोशनी में शबे-ख़यालात[4] से गुज़र कर
जहाँ जहाँ था गुमाने-फ़िरदौस[5] उन हेजबात[6] से गुज़र कर
ग़मे-वतन और ग़मे-ज़माना के तल्ख़ लमहात[7] सेगुज़र कर

ग़मे-बशर[8] जाग उठा है शायद
यही मेरा एशिया है शायद

ये एशिया की तड़प नहीं है हयात गिरकर सँभल रही है
ज़मीरे-इनसाँ[9] की हर सदाक़त[10] नये तसव्वुर में ढल रही है
क़दामते-ज़िन्दगी के साये में ज़िन्दगी ख़ुद बदल रही है

होबाब-सा[11] उठ रहा है शायद
यही मेरा एशिया है शायद

शिकस्ते-पिन्दार[12] से निगाहे-ख़िज़ाँ में शरमिन्दगी मिलेगी
बहार अब जावदाँ बनेगी, गुलों को पाइन्दगी मिलेगी
बहिश्ते-आदम[13] की हर कहानी को इक नई ज़िन्दगी मिलेगी

(१) पूर्व के सुबह (२) पूर्व (३) पच्छिम (४) ख़यालों की रात (५) स्वर्ग (६) परदों (७) क्षणों (८) मनुष्य का दुख (९) मनुष्य की अन्तरात्मा (१०) सत्य (११) बुलाबुला-सा (१२) दम्भ टूटना (१३) अमर।

ये ख्वाब सच हो रहा है शायद
यही मेरा एशिया है शायद

उर्दू में एशिया पर कविताओं का एक वृहत संकलन है। विभिन्न विचार-धारा के कवियों ने विभिन्न रूप में एशिया के जागरण पर विचार प्रकट किये हैं। इस सम्बन्ध में अहमद नदीम क़ासिमी की 'रात बेकराँ तो नहीं' ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' की 'निशाते-सानिया' 'साहिर' लुधियानवी की 'तुलूए-इश्तर-किय्यत', 'एहसासे मरदाँ' 'शिकस्ते ज़िन्दाँ' व 'आहंग' सिकन्दर अली 'वज्द' की 'बशारत' व 'सुब्हे-नव' ज़हीर काश्मीरी की 'एशिया', 'अर्श' मलसियानी की 'एशिया को छोड़ दो' वामिक़ की 'चैलेन्ज' नयाज़ हैदर की 'उजाला' फ़िक्र तोसंवी की 'एशिया को छोड़ दो' और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की 'शोरिशे-बरबते-नै' इत्यादि कवितायें विशेषकर उल्लेखनीय हैं। उर्दू कवियों ने सामूहिक रूप से एशिया के जागरण पर तो कविताएँ लिखी ही हैं साथ ही उन्होंने देशों और उनके स्वतंत्रा-प्रेमियों पर भी कविताएँ लिखी हैं जिन्होंने अपने अपने देश की स्वतंत्रता के लिये उत्सर्ग, त्याग एवम् बलिदान किये हैं।

(१) चीनः—भारत के बाद १९४९ ई० में चीन को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। भारत ने विश्वशान्ति और स्वातंत्र्य प्रेम के महान आदर्शों के साथ चीन की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। उसने भी भाई बनने का वचन दिया परन्तु आज संसार से यह बात छिपी नहीं है कि उसने किस प्रकार अपने वचन को बेशर्मी से तोड़ा और अपने सबसे बड़े हमदर्द और दोस्त मुल्क हिन्दुस्तान के साथ विश्वासघात और धोखाबाज़ी करके विश्वशांति की पीठ में छुरा भोंका है। इस समय हमारा उद्देश्य उक्त समस्या पर वाद-विवाद और उसका उर्दू काव्य पर प्रभाव वर्णन करना नहीं है। इसका वक्तव्य आगामी अध्याय में किसी प्रकार विस्तार से आयेगा। यहाँ केवल उस काल की कविताओं का वर्णन करना है जबकि चीन, भारत और अन्य देशों को मित्रता का भ्रम दिये हुये था। भारतीय जनता को उसकी कूटनीति का अनुभव न था बल्कि वे समझते थे कि वे चीन के सहयोग से एशिया के जागरण का प्रतीक बनेंगे। उनका यह विचार स्वाभाविक भी था। चीन के स्वातंत्र्य-आन्दोलन और जन क्रान्ति को देखते हुये कोई भी इस प्रकार के धोखे खा सकता है। उर्दू कवियों ने भी अन्य भारतीयों की तरह धोखा खाया। चीनियों की कथनी और करनी की प्रतिकूलता को समझने के लिये, उनके जन-आन्दोलन का वर्णन शायद यहाँ अनुचित न होगा।

'फिराक़' गोरखपुरी ने अपनी कविता 'इनक़लाबे-चीन और अम्ने-आलम' में मानव जीवन को गीत गाते सुना था जिससे भाग्य बदलने की प्रेरणा मिलती थी—

मँडलाई कई करोड़ हाथों की घटा
तूफ़ान कई करोड़ बल खा के उठा
जल उठे कई करोड़ सीनों में चिराग़
परदा-सा कई करोड़ आँखों से उठा
पेशानिए-चीन जगमगाती हुई आज!
उट्ठी है हयात गीत गाती हुई आज!
तक़दीरे वक़्त के दरीचों से इधर
वो झाँक रही है मुस्कुराती हुई आज
फटते ज्वालामुखी का होता है गुमाँ
दहकी हुई छातियों से उठता है धुवाँ
बरसेंगे आफ़ताब इस बादल से
जाता है आग में नहाने इनसाँ

चीन की स्वतंत्रता एशिया के लिये शुभलक्षण समझा गया था। भारत ने चीन को अपना पड़ोसी मित्र समझकर वहाँ की सरकार को बड़ा प्रोत्साहन दिया था। १९४९ में कम्यूनिस्ट सरकार को सर्व प्रथम भारत ने मान्यता प्रदान की थी और सयुंक्तराष्ट्र में बराबर कोशिश की थी कि उसे भी सम्मिलित कर लिया जाये। चीन और तिब्बत के झगड़े को भारत ने बड़ी उदारता से निपटा दिया था जब कि वह अंग्रेज़ी सरकार से भारत को दान के रूप में मिला था। उर्दू का वर्तमान कवि भारत के इन सब उपकारों को अपनी आँखों से देख रहा था। देश की सरकार के व्यवहार को अभीष्ट रखते हुये उन्हें भी चीनियों से श्रद्धा थी। वे श्रद्धा के भाव उस समय की कविताओं में बड़े सुन्दर रूप से वर्णित हैं। इन कवियों में कुछ ऐसे भी थे जो साम्यवादी विचारधारा में विश्वास रखते थे। संयोगवश चीन की नई सरकार भी साम्यवाद को अपना आदर्श कहती थी। परिणामस्वरूप कवियों ने इस विषय पर भी कवितायें लिखीं। उदाहरणार्थ सरदार जाफ़री की कविता 'सैलाबे-चीन' देखी जा सकती है। उनकी यह कविता कई प्रकार से महत्व पूर्ण है। उन्होंने इस कविता में स्वतंत्रता के पूर्व के चीन की दुर्दशा का भी विश्लेषण किया है।

चीन इक मुल्क था
बादशाहों, ग़ुलामों, कनीज़ों, किसानों का इक देस था
जिसके मैदान क़हत और वबाओं से आबाद थे
जिसके दरयाओं में ज़र्द सैलाब बहते रहे
और नीले आकाश पर
बादलों की तरह टिड्डियाँ उड़ रही थीं

चीन इक सिनरसीदा[१] गुनहगार था
जिसके पैरों में ज़ंजीर, गरदन में तौक़े-गेराँ[२] था
जिसके सीने में दिल की जगह इक बड़ा ज़ख़्म था
चीन इक दाश्ता,[३] इक कनीज़, एक दोशीज़ा[४] का नाम था
जो हज़ारों बरस से बरहना[५]
ज़माने के बाज़ार में बिक रही थी
चीन इक बूढ़ी माँ थी
स्यांग ने जिसको बदकार जापानियों की हवस[६] और ज़ेना[७]
लिये दे दिय

चीन एक लाश थी
जिस पर अंग्रेज, अमरीकी और दूसरे सामराजी
गिधों की तरह सालहासाल मिंडलाये हैं
बोटियाँ जिसकी सरमायादारों में तक़सीम होती रही हैं
चीन ज़ालिम ज़मींदार और जंगजू डाकुओं का वतन था
अपने काग़ज़ के फूलों
चाय की पियालियों
और अफ़यून की गोलियों के लिये
सारी दुनिया में मशहूर था

इतनी जीर्ण परिस्थितियों से लड़कर स्वतंत्रता पाने वाला देश भी अ आदर्शों से डिग जाये तो कितने दुख की बात है। भारत की जनता चीन उन्नति का एक प्रतीक समझ रही थी। यह भ्रम कई कारणों से हुआ था। वे सोचते थे कि अकाल और दूसरे प्राकृतिक संकटों का मो सँभालते हुये जो देश स्वतंत्रता की मंज़िल पर पहुँच जाये वह जीवन के

(१) बूढ़ा (२) भारी तौक़ (३) उपपत्नी (४) कुँवारी (५) नग्न (६) कामवा (७) व्यभिचार।

को बढ़ाने के लिये अवश्य प्रयत्न करेगा। नरेश कुमार 'शाद' ने पूंजीवाद के विसर्जन से प्रफुल्लित होकर चीन की स्वतंत्रता में जीवन का श्रृंगार होते देखा था। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से चीन की भूमि को बधाई दी थी। चीन के सुपुत्रों की इस सफलता के अवसर पर उन्होंने लिखा था —

तेरे फ़ाकाकश[1] बच्चों ने
कितना भारी काम किया है
खेल के अपने ख़ून की बाज़ी
तेरे दिल का ज़ख़्म सिया है
दुनिया भर के इनसानों को
जीने का पैग़ाम दिया है

दुनिया भर में गूँज रहा है, माऊ और सनयात का नाम
लाल सलाम ए चीन की धरती, चीन की धरती लाल सलाम

उर्दू कवियों ने चीन की स्वतंत्रता पर प्रसन्नता प्रकट करते हुये बहुत सारी कवितायें कही हैं जो आज चीनी आक्रमण के बाद उसके उद्देश्यो पर एक विडम्बनापूर्ण व्यंग्य का कार्य कर रही है। वामिक की 'मंज़िल के क़रीब' अहमद राही की 'निगारे चीन' परवेज़ शाहिदी की 'यांगसी को सलाम' इत्यादि कवितायें इस विषय पर सार्थक प्रयास के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं।

(२) कोरिया :—दूसरे महायुद्ध के अन्त में अमरीका, बरतानिया, चीन और रूस ने यह तय किया कि कोरिया जो १९०५ ई० से ही जापान के अधिकार में चला गया था अब स्वतंत्र कर दिया जाये। परिणाम स्वरूप इसे दो भागों में विभाजित करके अमरीका और रूस के सिपुर्द कर दिया गया। इसका मनशा यह था कि दोनों देश अपने-अपने तौर पर कोरिया को आज़ादी के मार्ग पर लगा दें। अमरीका और रूस दोनों ने अपने क्षेत्रवालों को सैन शिक्षा एवं यंत्र दिये। रूस वालों ने पहल करके उत्तरी कोरिया वालों को १९४७ ई० के अन्त तक पूर्ण स्वतंत्रता दे दी और अपने देश को चले गये किन्तु अमरीका ने अपना अधिकार बाक़ी रखा। इस बात ने कोरिया

(१) भूखे।

वालों के दिलों में शंका पैदा कर दी और उत्तरी कोरिया वाले दक्षिणी कोरिया को स्वतंत्र करने के लिये तुल गये। २५ जून १९५० को उत्तरी कोरिया ने अपनी सेना दक्षिण की ओर रवाना कर दी। अमरीका ने सोचा कि यह आक्रमण रूस की अनुमति से हुआ है। इसलिये उसने सुरक्षा समिति में विरोध किया। सुरक्षा समिति पर अमरीका का प्रभाव था इसलिये वह अमरीका की सहायता के लिये तैयार हो गई। शान्ति के नाम पर उसने अपनी सेना को भी उत्तरी कोरिया से लड़ने का आदेश दे दिया और इस तरह न सिर्फ़ दक्षिणी कोरिया की राजधानी सीवल फिर वापस मिल गई बल्कि उसी वर्ष नवम्बर तक पूरा कोरिया भी आधीनता में आगया। अपनी स्थिति को पूरी तरह सुदृढ़ करने के लिये अमरीका और उसके साथियों की फ़ौजें मनचूरिया की सीमा पार करके आगे बढ़ने लगीं तो चीन अपनी सीमा को सुरक्षित करने के बहाने लड़ाई के मैदान में कूद पड़ा। चीन उत्तरी कोरिया का हमदर्द बनकर भेड़ बकरियों की तरह सिपाहियों को कटाता हुआ आगे बढ़ता चला गया और अपनी प्रसारवादी नीति को सफल बनाने में जी जान से जुट गया। अपने सबल प्रयासों के बावजूद वह अपने इरादे में पूरी तरह कामयाब न होसका। अमरीकी फ़ौजों की ताक़त का उसे एहसास होगया। एशियाई देशों में कुछ ने—जो चीन के नापाक इरादे से परिचित नहीं थे—अमरीका की आलोचना भी की। भारत ने इसे विश्वशांति के लिये एक चेतावनी समझा और जल्द से जल्द इसे समाप्त कराने की चेष्टा की। उसकी यह कोशिश सफल रही और अन्य देशों के सहयोग से संधि होगई। इस प्रकार वह अग्नि जो लगभग एक वर्ष से वातावरण में भय की भावना प्रोत्साहित कर रही थी अपने अन्त को पहुँच गई।

उर्दू कवियों की सहानुभूति सदैव की तरह इस बार भी स्वतंत्रता प्रेमियों से रही। उन्होंने कोरिया पर होने वाले अत्याचारों को मानव-जाति के लिये निन्दनीय समझा। किसी देश को उसके वासियों से छीन कर युद्धस्थल बनाना उन्हें सहन न हुआ। उन्होंने कोरिया के योद्धाओं को अपनी शुभ-कामनायें भेजी और उनके साहस की प्रशंसा की। अली सरदार जाफ़री की कविता 'कोरिया' इस सम्बन्ध में विशेष स्थान रखती है—

कोरिया जंग के बादल में तड़पती बिजली
कोरिया अम्न के परचम की जवाँ अँगड़ाई

कोरिया लाखों गरजते हुये नक़्क़ारों से
शोर में हँसती हुई गाती हुई शहनाई

मौत लाख आग के और ज़हर के बम बरसाये
ज़िन्दगानी तो मिटी है न मिटेगी हरगिज़
चाहे संगीनों के जंगल हों कि तोपों के पहाड़
अम्न की फ़ौज रुकी है न रुकेगी हरगिज़

बच्चे आते हैं खिलौनों की सजाये हुये फ़ौज
औरतें आँखों में आँसू के शरारे[1] लेकर
टैंकों का है टरकटर की जबीनों प जलाल[2]
परचम उड़ते हैं हथेली प सितारे लेकर

याद है हमको हर इक ख़ून के क़तरे का हिसाब
क़र्ज़ इक दिन ये टूमन को चुकाना होगा
आज सोते हैं मसोलेनी व हिटलर जिसमें
कल उसी क़ब्र में औरों का ठेकाना होगा

ए किमग्ररसीन की नज़रों की जगाई हुई क़ौम
ख़ाक में कौन मिलायेगा जवानी तेरी
दास्ताँ तेरी हर इक दिल प लिखी जायेगी
मायें बच्चों को सुनायेंगी कहानी तेरी

मेरे बच्चों की चमकती हुई आँखों की हँसी
मेरे माशूक़ा के आँचल की लरजती हुई छाँव
सब तेरे साथ है सब, बोलते गाते हुये होंट
उठते लहराते हुये हाथ थिरकते हुये पाँव

अम्न की छाँव में मैदाँ से सिपाही पलटें
सूनी गोदों में मोहब्बत की बहार आजाये
बाप को अपने बुढापे का सहारा मिल जाये
माओं के दर्द भरे दिल को क़रार आ जाये

---

(१) अग्नि-शिखा (२) वैभव।

'कैफ़ी' आज़मी को कोरिया की जनता की ललकार में वह दृढ़ता दीख पड़ी जिससे उन्होने नवीन जीवन के निर्माण की आशा का अनुभव किया। उनकी प्रसिद्ध रचना 'कोरिया का नारा' उन नवयुवकों का उत्साह भी लिये हुये है जिन्होंने साम्राज्यवादियों के अत्याचारपूर्ण वातावरण में आँख खोली है। इस अनुभव से ओत-प्रोत उनकी कविता में बडा ओज और साहस मिलता है।

ख़ूँ-ख़्वार फ़रानको के बेटो
अब हम प न फ़तह पा सकोगे
स्पेन नहीं ये कोरिया है
इसको न जला-मिटा सकोगे
तारीख़ का रुख़ बदल दिया है
ये अहेद[1], य वक़्त है हमारा
जो मौत से लड़के जी उठे हैं
वो मर न सकेंगे दोबारा
सीनों की ख़राश ही न देखो
माथों प बल पड़े हुये हैं
ख़न्दक़ में गिराये थे जो लाशे
सीयुवल में वो उठ खड़े हुए हैं
कल जिनके सिये थे होंट तुमने
वो शोला-ज़बान[2] हो गये हैं
बरछों प जिन्हे उठा लिया था
बच्चे वो जवान हो गये हैं
आज ऐसी सज़ा मिलेगी तुमको
दुनिया न सितम का नाम लेगी
अपना ही नहीं, ये कोरियन क़ौम
हर क़ौम का इन्तेक़ाम[3] लेगी
उनको न हिला सकेंगे भौंचाल
मैदाँ में जो पाँव गड़ गये हैं
गाड़े थे जो सर क़दम क़दम पर
धरती में वो जड़ पकड़ गये हैं

(१) काल (२) अग्निवार्ता (३) बदला।

अब कुछ न यहाँ मिलेगा तुमको
अपने ही बमों से पेट भर लो
घर जो जला दिये थे इन्हीं मे
क़बरों की जगह पसन्द कर लो
है फ़तेह का इन्तेज़ार तुमको
और मौत तुम्हारी जुस्तजू[१] में
इनसाँ का लहू बहाने वालो
बह जाओगे तुम इस लहू में
सदियों की लगी भड़क उठी है
तपते हुये एशिया से भागो
न्यूयार्क में लो पनाह जाकर
भागो अभी कोरिया से भागो

कोरिया की परिस्थितियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुये अन्य कवियों ने भी विचार प्रकट किये है। 'वामिक़' जौनपूरी ने 'सहारे' और ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' ने 'कोरिया के जाँबाज़ों से' के शीर्षक से सुन्दर कवितायें कही हैं। इनके अलावा जाँनिसार 'अख़्तर' की कविता 'शुमाली कोरिया' भी इस विषय पर अद्वितीय है—

कोरिया ! तेरे जमहूर[२] जागे
तेरे लाखों किसान और मज़दूर जागे
चल पड़े हैं दकिन की तरफ़
सफ़-ब-सफ़[३]
आज तेरे जवाँ हौसला और जियाले सिपाही
एटमी बम की धमकी न काम आ सकी
ज़ुलमतों ने तेरे गिर्द क्या क्या न डाले थे घेरे
रोशनी के मोक़ाबिल मगर ठहर सकते थे कब तक अँधेरे
आज सारी ज़मीं तेरी अपनी ज़मीं है
आज सीवल के बाग़ लिएजून के गुलसिताँ सुर्ख़ हैं
एशिया की ज़मी सामराजी लुटेरों प अब तंग है
जिनका ले-दे के कोई सहारा अगर है तो बस तीसरी जंग है

---

(१) जिज्ञासा (२) जनता (३) पंक्तियों की पंक्तियाँ।

कोरिया ! जंग के देवताओं से कह दे
आज तख़रीब[1] के इन ख़ोदाओं से कह दे
अम्न की फ़ौज के सामने तीसरी जंग का कोई इमकाँ नहीं है
आज इनसान इनसान है, आज इनसान हैवाँ[2] नहीं है
हाँ बढ़ेजा कि कुछ देर का और ये अरसए-रज़्म[3] है
जिन्दबाद ए अमर कोरिया तेरे दिल में कुछ अरसेन का अज़्म है

(३) इन्डोनेशिया :—छोटे-छोटे द्वीपों में बटे हुये इन्डोनेशिया के सात करोड़ व्यक्तियों में स्वराज्य की इच्छा सर्वप्रथम १६०८ में प्रकट हुई। १६०८ ही में डीमाकारटा, मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों ने पोदी एटामो के नाम से एक संस्था की स्थापना की थी जिसने राजनीति के अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिये विशेष रूप से कार्य-क्रम बनाया था। इसके बाद समय समय पर विभिन्न विचारधाराओं के लोगों ने अनेक संस्थाओं को जन्म दिया। धार्मिक उद्देश्यों के साथ 'सरकत इसलाम' ने १६११ में और राष्ट्रीयता को प्रधानता देते हुये 'इनडश पार्टीज़' ने १६१२ में कार्य प्रारम्भ किया। इन्डोनेशिया वासियों का यह राजनीतिक संघर्ष वहाँ के साम्राज्यवादी डचों को सहन न हुआ और उन्होंने बलात् दमन कार्य प्रारंभ कर दिया परन्तु इससे स्वतंत्रता की चिन्गारी ज्वाला बन गई और १६१४ ई० में एक विद्वान युवक समाऊँ के नेतृत्व में ईस्ट इंडिया शोसल डेमोक्रेटिक एसोसियेशन की नींव पड़ी। यह संस्था पूर्ण रूप से मार्क्सवाद की प्रेमी थी और प्रत्यक्ष रूप में साम्यवादी विचारधारा रखती थी। डच सरकार इस संस्था से सबसे अधिक घृणा करती थी अतः इसके नेता को ही देश से निकलवा दिया। इसके बाद डा० सुकर्ण ने 'इन्डोनेशियन नेशनल-पार्टी' की स्थापना की। यह संस्था साम्यवाद को अपना लक्ष्य न बनाकर 'स्वतंत्र इन्डोनेशिया' की इच्छुक थी परन्तु शीघ्र ही यह संस्था भी विसर्जित कर दी गई।

इन्डोनेशिया के स्वतंत्रता-आन्दोलन की गति में तेजी उस समय आई जबकि १६३६ में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने वहाँ की अनेक छोटी-छोटी राजनीतिक पार्टियों को 'गेपी फ़ेडरेशन' के नाम से एक कर दिया। इस संस्था

(१) विनाश (२) पशु (३) संग्रामस्थल।

ने सबसे पहले स्वराज्य की माँग की जिसे डच सरकार भी टाल न सकी। इसके बाद ही १९४२ के जापानी आक्रमण ने इन्डोनेशिया के जीवन पर विशेष प्रभाव डाला। डच जातियाँ भाग गईं और उनके स्थान पर जापानी अधिकार हो गया। इस ऊहापोह में इन्डोनेशिया वासियों को राज्य-कार्य में विशेष महत्व प्राप्त हो गया। १९४५ में अमरीका ने जापान को पछाड़ दिया तो इन्डोनेशिया के भाग्य खुले और १७ अगस्त १९४५ को 'आन्ध नेशनल एसम्बली' ने गणतंत्र इन्डोनेशिया की घोषणा की। डच साम्राज्यवादी यह कड़वा घूँट गवारा न कर सका। अब अन्य एशिया के देशों के हृदय में भी इन साम्राज्यवादियों के प्रति घृणा पैदा हो चुकी थी। भारत ने विशेषकर इन्डोनेशिया के आन्दोलन को सहयोग दिया और संयुक्त राष्ट्र संघ में उसके गणतंत्र राज्य से सम्बन्धित भागों के महत्व को समझाया। परिणामस्वरूप ३० दिसम्बर, १९४९ से इन्डोनेशिया भी हमारे अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी का सदस्य है।

भारत के सहयोग के बाद उर्दू कवियों को इन्डोनेशिया के लोगों से विशेष सहानुभूति हो गई थी। उन्होंने साम्राज्यवादियों के अत्याचार पर कवितायें भी लिखी। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने वहाँ के लोगों को बताया कि मानवता की रक्षा के लिये इस युद्ध में वह भी उनके साथ बराबर सम्मिलित है। गुलाम रब्बानी 'ताबाँ' की कविता 'इन्डोनेशिया' अपने दामन में दो जातियों की वह सन्निकटता लिये हुये है जो लाखों मील दूर रहने पर भी इन्सान को एक रखती है—

एक गिरते हुये साथी ने पुकारा है मुझे
दूर मशरिक के ख़ेयाबानों[1] से
आज आहों की कराहों की सदा आती है
उसका दुश्मन भी वही है जो मेरा दुश्मन है
तीन सदियों का पुराना दुश्मन
जिसके दामन प अभी तक है जवानों का लहू
सरफ़रोशों[2] का शहीदों का लहू
आज उस ख़ून का बदला मुझे ले लेने दो
मेरी तलवार अभी प्यासी है

(१) क्यारियों २ वीरों।

चाट लेने दे उसे मग़रबी कुत्तों का लहू
आज ज़ुलमत[1] की फ़सीलों[2] को नगूँसर[3] कर दे
यूँ मिटा डालें कि हलका-सा निशाँ भी न रहे
एशिया रश्के-गुलिस्ताँ हो जाये!

अन्य कवियों ने भी इन्डोनेशिया की जनक्रान्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट की। वे इसे एशिया के जीवन के लिये एक शुभ प्रमाण समझते थे। उदाहरणार्थ सरदार इलहाम की 'इन्डोनेशिया' और ज़मीर जाफ़री की 'मरदीका' देखी जा सकती है। इन रचनाओं में वहाँ की जनता के जागरण को पूर्व के सीने से नये सूर्य का उदय बताया गया है।

(४) **ईरान**:—दूसरे महायुद्ध के बाद ईरान जर्मनी के प्रभाव से निकल कर एकतावादियों के अधिकार में आ गया। रूस के प्रवेश ने आज़र-बाइजान पर ख़ास असर डाला और कम्युनिस्ट पार्टी कायम हो गई। यह बात ही अमरीका आदि देशों को पसन्द न हुई थी कि ईरान से जाते जाते रूस ने अपना नया सम्बन्ध स्थापित कर लिया। रूस और ईरान में एक नयी सन्धि स्थापित हुई जिसके अनुसार यह निश्चय पाया कि ईरान पचास वर्षों तक रूस को तेल दिया करेगा। इस सम्बन्ध ने अमरीका को बौखला दिया और उसने तुरन्त ईरान से एक और संधि अपनी इच्छानुसार कर ली। ईरान का साम्यवादी दल इससे चिढ़ गया और देश में विद्रोह होने लगा। ईरान का प्रधान मंत्री इस आन्दोलन के ख़िलाफ़ था। किन्तु डा० मुहम्मद मुसद्दक़ के प्रधान मंत्री होते ही वातावरण बदल गया और तेल की कम्पनियों के 'राष्ट्रीय-करण' की घोषणा हो गई। बरतानिया के प्रधान मंत्री चर्चिल को यह बात बहुत खली और युद्ध करने के लिये तैयार हो गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी चीख़-पुकार मचाई लेकिन कोई नतीजा न निकला। अमरीका वालों ने जब अंग्रेज़ों से मैदान साफ़ देखा तो ईरानी सरकार को लालच देकर मिला लिया। परिणामस्वरूप सारे देश में विद्रोह शुरू हो गया। विद्यार्थियों ने विशेष कर भाग लिया और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि बादशाह और उसकी मलका को जान बचाकर भागना पड़ा। उस समय ऐसा अनुमान हुआ कि शायद ईरान में भी गणतंत्र राज्य स्थापित हो जाय। किन्तु अपनी भौगोलिक स्थितिनुसार ईरान का जो शांति एवं युद्ध दोनों दशाओं में अत्यन्त महत्व-

(१) अत्याचार (२) दीवारों (३) सिर झुकाये हुये।

पूर्ण है। इस प्रकार स्वतंत्र हो जाना साम्राज्यवादियों को कैसे सहन हो सकता था। अमरीका ने ख़ज़ाने का मुँह खोल दिया। लोगों से उनका ईमान ख़रीदने के लिये अधिक से अधिक धन दिया जाने लगा। नतीजे में ईरान की सेना ही अमरीका से मिल गई। राष्ट्रीय आन्दोलन कुचल डाला गया। हज़ारों विद्यार्थी तलवार के घाट उतारे गये और बादशाह अपनी मलका सहित वापस आ गया। डा० मुसद्दक़ पर बग़ावत का इलज़ाम रखकर फ़ौजी अदालत में मुक़दमा चलाया गया। जहाँ पर उस बूढ़े देशभक्त को उसके साथियों सहित मृत्यु-दण्ड दिया गया। इस अत्याचार से पूरे संसार में हाहाकार मच गया। इस वेदनामय वृत्तान्त से संसार का प्रत्येक समझदार व्यक्ति प्रभावित होगा। उर्दू का फ़ारसी से जो सम्बन्ध है उसके अनुसार उर्दू वालों को ईरान का संघर्ष अपना मालूम होना आश्चर्य की बात नहीं। विद्यार्थियों के इस प्रकार मारे जाने से संसार में कोलाहल मच गया। उर्दू कवियों ने भी उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की। फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' ने 'ईरानी तोलबा' के शीर्षक से उनको सम्बोधित करते हुये एक सुन्दर कविता कही और उनके उत्साह पर अपना स्नेह दिखाया—

ये कौन सख़ी[1] हैं
जिनके लहू की
अशरफ़ियाँ छन-छन, छन-छन
धरती की पैहम[2] प्यासी
कशकोल[3] में ढलती जाती हैं
कशकोल को भरती जाती हैं
ये कौन जवाँ हैं अर्ज़े-अजम[4]
ये लख-लुट
जिनके जिस्मों की
भरपूर जवानी का कुन्दन
यूँ ख़ाक में रेज़ा-रेज़ा है
यूँ कूँचा-कूँचा बिखरा है
ए अर्ज़े-अजम, ए अर्ज़े-अजम !
क्यों नोच के हँस हँस फेंक दिये

(१) दानी (२) बराबर (३) भीख के कटोरे (४) ईरान की भूमि।

इन आँखों ने अपने नीलम
इन आँखों ने अपने मरजाँ
इन हाथों की बेकल चाँदी
किस काम आई, किस हाथ लगी ?
ए पूछनेवाले परदेसी
ये तिफ्लो-जवाँ[१]
उस नूर के नौरस मोती हैं
उस आग की कच्ची कलियाँ हैं
जिस बैठी नूर और कड़वी आग
से ज़ुल्म की अन्धी रात में फूटा
सुब्हे-बग़ावत का गुलशन
और सुब्ह हुई मन-मन, तन-तन
इन जिस्मों का चाँदी-सोना
इन चेहरों के नीलम, मरजाँ
जगमग-जगमग, रख़्शाँ-रख़्शाँ[२]
जो देखना चाहे परदेसी
पास आये देखे जी भर कर
ये ज़ीस्त की रानी का झूमर
ये अम्न की देवी का कंगन

ईरान वासियों के राजनीतिक विवेक में बड़ा बल था। देश की बदलती हुई स्थिति से आशा होती थी कि अब वे अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होंगे। ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' अपनी कविता 'ईरान' में वहाँ के भविष्य के प्रति बहुत आशाप्रद हैं--

नज़र तो आने लगी ज़िन्दगी के कुछ आसार
खुला निशाने-सहेर[३] ज़ुलमतों[४] की वादी में
सजा है मयकदा[५] ख़य्याम का बतर्ज़े-नव[६]
बहार आई है फिर बोस्ताने[७]-सआदी में
अवाम जाग उठे हैं--सोला न पायेंगी
हज़ार वादओ-पैमाँ[८] की लोरियाँ इनको

(१) बूढ़े और जवान (२) दीप्तमान (३) प्रभात की पताका (४) अन्धकार (५) मधुशाला (६) नई तरह से (७) सादी के उपवन, बोस्ताँ सादी की एक पुस्तक भी है (८) वादा और विश्वासन।

नये शऊर[1] ने गरमा दिये हैं क़ल्बो[2]-जिगर
ख़रीद अब न सकेंगी तिजोरियाँ इनको
समझ चुके हैं वो शातिर फ़िरंगियों की चाल
फ़रेब उनकी सयासत का अब न खायेंगे
भला ये रोसतमो-सोहराब के जिगर-गोशे[3]
ज़लील गीदड़ों की भपकियों में आयेंगे—?
अभी तो एक से पीछा कटा नहीं है मगर
हरीस-नज़रों[4] से तकता है दूसरा सैयाद[5]
हज़ार दावाए-तामीरे[6]-ख़ुल्द के बावस्फ़
चमन में आग लगा देगा ये जहीम-नज़ाद[7]
जहाने-नव[8] से बसद इद्दआये-रब्ते-दिली[9]
सलाम आते हैं, ताज़ा पयाम आते हैं
मगर ये ख़ूब समझते हैं साकिनाने-चमन[10]
कि हर पयाम के परदे में दाम आते हैं
ये तेल तेल नहीं ख़ूने-गर्मे मआदन है
न पीने देंगे लहू अब सफ़ेद जोंकों को
बुझाना चाहें जो तूफ़ान शमए-आज़ादी[11]
तो बढ़ के सीनों प रोकेंगे तुन्द झोंकों को

नू० मीम० राशिद ने ईरान में 'परदेसी' के शीर्षक से तेरह मुक्तक हैं। बौद्धिक रूप में उनके विचार उन लोगों से भिन्न हैं जिनकी रचनायें अभी आप देख चुके हैं परन्तु वे भी ईरान के राजनैतिक ऊहापोह से प्रभावित हैं—

मशरिक़ के इक किनारे से दूसरे तक,
मेरे वतन से तेरे वतन तक,
बस एक ही अनकबूत[12] का जाल है कि जिसमें
हम एशियाई असीर[13] होकर तड़प रहे हैं!
मंग़ोल की सुब्हे-ख़ूंफ़िशाँ[14] से

(१) विवेक (२) हृदय (३) जिगर के टुकड़े (४) ललचाई नज़रों (५) शिकारी (६) स्वर्ग की रचना का दावा (७) नरक-प्रकृति (८) नये संसार (९) हार्दिक सम्बन्ध के दावे (१०) चमन के रहने वाले (११) आज़ादी का दिया (१२) मकड़ी (१३) कैदी (१४) ख़ून उगलने वाली सुबह।

फरंग[1] की शामे-जाँसताँ[2] तक
तड़प रहे हैं
बस एक ही दर्द की दवा में
और अपने आलामे-जाँगुज़ा[3] के
इस इशतराके-गराँबहा[4] ने
हमको इक दूसरे से अबतक
क़रीब होने नहीं दिया है

ईरान के स्वतंत्रता का वृत्तान्त आग और ख़ून से भरा हुआ है। त्याग एवं बलिदान के उत्सर्ग में बहुत से लोगों ने अपने प्राण निछावर कर दिये। हुसैन फ़ातिमी उन्हीं भाग्यवान् महापुरुषों में से एक हैं जिनके लहू की बूँदों से आज ईरान का स्वतंत्रता-आन्दोलन शक्ति ग्रहण करता है। उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये उर्दू कवियों ने बहुत कुछ कहा है। उदाहरणार्थ ताहिर दानयाल 'हुसैन फ़ातिमी' को स्नेह के फूल पेश करते हुये कहते हैं—

आज सोहराबो-रुस्तम की औलाद[5] को
फिर से तलक़ीन[6] की जा रही है कि तुम
रहज़नों[7], डाकुओं की बका के लिये
ख़ंजरे-ज़ुल्म को और सैक़ल[8] करो
माओं का प्यार बच्चों की मासूमियत
नाज़नीनों[9] की उशवागरी[10] लूट लो
क़स्रे शीरीं भी शमशान भूमी बने
ग़ैरते-कोहकन भी न बाक़ी रहे
और गुलिस्ताने-सआदी प यूरिश करें
शेरे-ख़ैयाम का मयकदा[11] लूट ले
और चमन दर चमन वादियाँ रेगज़ारों[12] में तबदील हों

उर्दू कवि स्वतंत्रता के पूर्व भी संसार की राजनीति में दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने पराधीनता में भी प्रतिबन्धों के होते हुये भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार प्रकट किये हैं। स्वतंत्रता के बाद जब ख़याल आज़ाद हुये तो जनसाधारण में भी अन्तर्राष्ट्रीय विवेक पैदा हुआ। इस विवेक के समर्थकों

(१) विदेश (२) जान सताने वाली शाम (३) प्राण सुखा देने वाले दुख (४) मूल्यवान सहयोग (५) संतान (६) दीक्षा (७) ठगों (८) क़लई (९) सुन्दरियों (१०) जादूगरी (११) मधुशाला (१२) रेतमास्थलों।

में उर्दू के बहुत से कवि उल्लेखनीय हैं। उन्होंने समस्त संसार पर होने वाले अत्याचारों को अपने ऊपर समझा। एशिया, विशेषकर विदेशियों के पैरों के तले रौंदा जा रहा था, अतः जब उसमें स्वतंत्रता की भावना जाग्रत हुई तो हमारे कवियों ने उसका स्वागत किया। इस एशियाई आन्दोलन की सहानुभूति में लिखी गई कविताओं की उर्दू में कमी नहीं है। इन रचनाओं का सिंहावलोकन आपको इस अध्याय से भी हो गया होगा। इन देशों के अलावा भी बहुत से देशों के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई है। इस प्रकार की रचनाओं में तुर्की के महान कवि नाज़िम हिकमत पर सरदार जाफरी की 'ज़िन्दाँ बज़िन्दाँ' और फ़ारिग बोख़ारी की 'नाजिम हिकमत', मलाया के विषय पर अमीर जाफरी की 'सलाम मलाया', ईराक की नई सरकार के स्वागत में नाज़िश प्रतापगढ़ी की 'क़ाफ़ला बनता गया', राष्ट्रमण्डल पर फ़ारिग बोख़ारी की 'दौलते-मुशतरक' इत्यादि कवितायें मुख्य हैं। भारत के पड़ोस में ही मलाया; हिन्द-चीन, बरमा इत्यादि पर साम्राज्यवादियों ने जिसपर आधिपत्य जमा रखा था उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हमारे देश में हो रही थी। वहाँ की जनता जिस संकल्प के साथ स्वतंत्रता के लिये संघर्ष कर रही थी उर्दू के आधुनिक युग का कवि उससे अपरिचित नहीं था। वामिक जौनपुरी ने 'चैलेंज' में उनके विरोधियों को चेतावनी देते हुये कहा है कि अब वे मजबूर हो गये हैं, बलवन्त हैं। साम्राज्यवादी शक्तियों के नर पशु उन्हें बहुत दिनों तक अपने अधिकार में नहीं रख सकते —

बलवन्त हैं हम बलवन्त हैं हम
मजबूर नहीं, मजबूर नहीं
ताक़त है हमारे बाज़ू में
हम लड़ने से माज़ूर[1] नहीं

आसाँ नहीं टक्कर लेना हुर्रियत[2] के मेअमारों[3] से
जो जंग करेगा सर होगा हम लोगों की तलवारों से

हम हैं भगत जिस आज़ादी के उस देवी का तू दुश्मन है
जिस रोटी के हकदार हैं हम उस रोटी का तू रहज़न है

हम तोप से भिड़ने वाले हैं, हम आग से भिड़ने वाले हैं
हम नौकरशाही फ़ौजों के सीने प दहकते छाले हैं

(१) असमर्थ (२) स्वतन्त्रता (३) निर्माणकरताओं।

अंग्रेज़ हो तू या अमरीकी या फ्रांस के बीमार अफ़रंगी
डालर की मदद से नामुमकिन छीन्ना अपनी आज़ादी

बलवन्त हैं हम, बलवन्त है हम
मजबूर नहीं—मजबूर नहीं
ताक़त है हमारे बाज़ू में
हम लड़ने से माज़ूर नहीं

एशिया की तरह अफ़्रीका पर भी बहुत अत्याचार हुए हैं। उसका नाम सभ्य देशों की सूची से इस प्रकार काट दिया गया था कि मिस्र जैसी सभ्यता रखने वाला महाद्वीप भी प्रत्येक सम्मान खो बैठा। लोगों को बन्दी बनाया जाता और उन्हें उनकी स्त्रियों समेत मनुष्यता के व्यापारी बाज़ार में बेचा जाता। धनवान उनको नीलाम की बोलियों में दाम लगाकर ख़रीदते और पशुओं की तरह उनसे काम लेते। सभ्यता के नाम की पूजा करने वालों का यह आदर्श कितना विचित्र है! धीरे-धीरे परिस्थितियों ने करवटें बदलना शुरू की। अफ़्रीक़ा में भी जीवन के चिह्न देखे जाने लगे। उन्हें अपने अधिकारों के लिये जान की बाज़ी लगानी पड़ी और इसका सिलसिला आज तक जारी है। उर्दू का आधुनिक कवि अफ़्रीक़ा के जागरण से प्रसन्न है। उसमें उल्लास है। वह जानता है कि अब अफ़्रीकी जनता आत्म-सम्मान को समझ रही है। अब उन्हें अधिक दिनों तक पराधीन नहीं रखा जा सकता। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ एक ललकार देते हुये कहते हैं—'Africa Comeback'

आ जाओ मैंने सुनली तेरे ढोल की तरंग
आ जाओ, मस्त हो गई मेरे लहू की ताल
'आ जाओ एफ़रीक़ा'

आ जाओ, मैंने ढोल से माथा उठा लिया
आ जाओ, मैंने छील दी आँखों से ग़म की छाल
आ जाओ, मैंने दर्द से माथा उठा लिया
आ जाओ, मैंने नोच दिया बेकसी का जाल
'आ जाओ, एफ़रीक़ा'

पंजे में हथकड़ी की कड़ी बन गई है गुर्ज़
गरदन का तौक़ तोड़ के ढाली है मैंने ढाल
'आ जाओ एफ़रीक़ा'

जलते हैं हर कछार में मालों के मृग-नैन
दुश्मन लहू से रात की कालिक हुई है लाल
'आ जाओ एफ़रीका'

धरती धड़क रही है मेरे साथ एफ़रीका
दरया थिरक रहा है तो वन दे रहा है ताल
मैं एफ़रीक़ा हूँ, धार लिया मैंने तेरा रूप
मैं तू हूँ, मेरी चाल है तेरी बबर की चाल
'आ जाओ एफ़रीक़ा'
आओ बबर की चाल
'आ जाओ एफरीक़ा'

(५) मिस्र :—अफ्रीक़ा के जागरण की कथा मिस्र से शुरू होती है। मिस्र देश के निवासी जो पाषाण युग से पूर्व अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिये विख्यात थे, पराधीनता के तिरस्कार से उत्तेजित हो उठे। जनता में राष्ट्रीय विवेक ने जन्म लिया और साम्राज्यवादियों के प्रति घृणा की भावना विकसित होकर छा गई।

मिस्र की पराधीनता का कारण वहाँ के शासकों की आपसी कलह थी। विदेशियों ने उनमें गृह-युद्ध देख कर लाभ उठाया और सर्वप्रथम नेपोलियन ने आक्रमण करके मिस्र को तबाह व बरबाद कर दिया। तुर्कों ने उसका मुक़ाबिला किया और बरतानिया की सहायता से नेपोलियन को वापस लौटने पर विवश कर दिया। नेपोलियन का आक्रमण मिस्र के इतिहास में कई प्रकार से महत्वपूर्ण है। इससे एक लाभ भी हुआ। फ्रांसवासियों ने अपने देश की कला को प्रोत्साहन देने के लिये मिस्र में बहुत सी जगहों पर खोदाई कराई जिसे देख कर मिस्र वालों में अपने देश एवं जाति के प्रति गर्व की भावना प्रोत्साहित हुई। उन्होंने देखा कि प्राचीन काल में वे क्या महत्त्व रखते थे और अब उनकी क्या स्थिति है। फ्रांस मिस्र से पूरा लाभ उठाना चाहता था। उसने स्वेज़-नहर की खोदाई की योजना बनाई और इसके द्वारा एशिया व अफ़रीक़ा पर अधिकार पाने का स्वप्न देखा। मिस्र स्वेज़ की खोदाई के कारण आर्थिक संकटों में भी पड़ा और कई बार हड़तालों के कारण हर-जाना भी देना पड़ा बरतानिया शुरू में इस योजना का विरोधी था परन्तु

नहर की तैयारी के बाद उसने महसूस किया कि पूर्वीय देशों पर राज्य करने के लिये यह नहर बहुत ज़रूरी है। उसने मिस्र के शासकों से साज़-बाज़ करना शुरू किया और अन्त में अपने उद्देश्य में सफल भी हुआ। मिस्री शासकों ने बहुत थोड़े दामों पर स्वेज़ कम्पनी के हिस्से बरतानिया को बेच दिये।

स्वेज़ पर अधिकार पाने के बाद बरतानिया मिस्र के शासन में भी टाँग अड़ाने लगा। मिस्री जनता अब जागरित हो चुकी थी। उन्होंने इसके ख़िलाफ़ जन-आन्दोलन चलाये। साम्राज्यवाद मोरचे बदल-बदल कर लड़ता रहा परन्तु जनता की आवाज़ दबाये न दबी। वे स्वेज़ पर पश्चिम-वासियों का अधिकार अपनी पराधीनता की निशानी समझते थे। अतः वहाँ के प्रिय नेता जनरल नासिर ने जनसरकार की सत्ता सँभालते ही घोषणा कर दी कि स्वेज़ मिस्रियों की खोपड़ी पर तैयार हुई है। वही उसके एक मात्र अधिकारी हैं। स्वेज़ के इस प्रकार राष्ट्रीयकरण पर साम्राज्यवादी बौखला उठा और स्वेज़ की रक्षा के बहाने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। मिस्र अपने दुशमनों से बहादुरी से लड़ा। संसार ने इस युद्ध के लिये बरतानिया और उसके साथियों की निन्दा की और मिस्र वालों से सहानुभूति प्रकट की। अन्त में भारत व रूस आदि देशों के सहयोग से सन्धि हो गई और स्वेज़ मिस्र वालों को प्राप्त हो गई।

उर्दू कवि सदैव से स्वतंत्रता प्रेमी रहे हैं। मिस्र को जागरण का अवसर मिला। स्वेज़ को वे एक प्रतीक मानते थे जिसके आधार पर देश में जन-आन्दोलन प्रोत्साहित हुआ था। स्वेज़ की अमर प्रेरणा उनके हृदय को आत्म सम्मान की भावना से पूर्ण कर देती थी। ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ अपनी कविता 'मिस्र' में कहते हैं—

कितनी सदियों से अबुलहौल प तारी था जमूद[१]
जैसे अहराम के साये में पड़ा सोता था
अहदे-हाज़िर[२] का अबुलहौल फ़िरंगी, ज़रदार[३]।
वादिए-नील में तख़रीब के बिस बोता था

(१) गतिरोध (२) वर्तमान काल (३) विदेशी धनवाले

अब तहफ़्फ़ुज़[1] के तराने हों कि इमदाद के गीत
'कोई जामा हो छुपेगा नहीं क़द का अन्दाज़'
गीत के बोल बदल जाने से क्या होता है
वही इफ़रीत[2] का नग़मा, वही इबलीस का साज़
साफ़ बतलाते हैं ये अहले-जुनूँ[3] के तेवर
सरनगूँ[4] होने को है तौक़ो-सलासल[5] का नेज़ाम[6]
मुनतज़िर नील हैं खोले हुये मौजों का कनार
आज फ़िरऔन फ़िरंगी है, तो मूसा है अवाम

...नाथ 'आज़ाद' मिस्र की जनता के जागरण को साम्राज्यवाद की ...का लक्षण समझते हैं। उनकी कविता 'नहरे-स्वेज़ और उसके बाद' ...शा से ओतप्रोत है कि मिस्र का यह पहला क़दम उन्नति के शिखर ... है। अब दासता के अन्त का समय सामने आ चुका है—

गरचे इसमें शक नहीं ए साहिरे[7]-बरतानिया
फ़ौज, तोपें, टैंक, तैयारे हैं तेरे बेहिसाब
तू कि बहरे-रूम की मौजों से है लिपटा हुआ
ख़त्म अब होने को है तेरी जहाँबानी[8] का ख़्वाब
कारनामा तूने क्या देखा नहीं इस दौर का
'तोड़ दी बन्दों ने आक़ाओं के ख़ैमों की तनाब'
ये तो ए बरतानिया ! है मिस्र का पहला क़दम
हो चुकेगा इसका जब ये जज़्बे-पिनहाँ[9] कामयाब
क्या ख़बर क्या दूसरा अक़दामे-अहले-मिस्र[10] हो
क्या ख़बर किस ख़ाक पर बरसे अज़ाएम[11] का सहाब[12]
दूसरे अक़दाम का धुंधला तसव्वर अलअमाँ !
मिस्र की अपनी मुलूकीयत[13] है महवे-इज़्तराब[14]
क्या ख़बर नक़्शा हो क्या उस वक़्त का, उस दौर का
अज़्म[15] के दरबार में जमहूर[16] जब हो बारयाब[17]

...रक्षा (२) भूत (३) उन्माद वाले (४) झुका हुआ (५) तौक़, बेड़ी ...वस्था (७) जादूगर (८) विश्वराज (९) आन्तरिक भाव (१०) मिस्र ...ी चेष्टा (११) संकल्प (१२) बादल (१३) सम्राटवाद (१४) काँपती हुई ...कल्प (१६) जनता (१७) पहुँचना।

देखता हूँ ख़ाक के ज़र्रों के दामन में नेहाँ[1]
चाँद तारों की तजल्ली[2] बिजलियों की आबता

मिस्र के सूरमाओं को उर्दू कवियों ने बड़ी उदारता से श्रद्धांजलि की है। उन्होंने योद्धाओं के संकल्प को जी खोल कर सराहा है। हैदर उर्दू के आधुनिक कवियों मे अपने उद्गार पूर्ण भावों के लिये महत्व रखते हैं। उन्होंने संयुक्त सांस्कृतिक दल, कानपुर (United Cu Unit, Kanpur) के निवेदन पर 'जमाले मिस्र' के शीर्षक से एक कविता कही और साम्राज्यवाद का भाँडा भलीभाँति फोड़ा है। उस उद्धरण इस प्रकार हैं —

हिटलरी ज़ुल्म का चढ़ता हुआ पारा न रहा
राकफ़ीलर की सख़ावत[3] का सहारा न रहा
यूनियन जेक में जुंबिश का भी यारा न रहा
क्या नसीबा[4] है कि ताक़त प गुज़ारा न रहा

मात या शह से बचे सोच नहीं पाते हैं
ज़लज़ले कस्रे-शहनशाह मे दर आते हैं

गिर गया सर से इलिज़बेथ के चमकता हुआ ताज
बम से लिपटे हुये रोते हैं डलिस जी महराज
सूदख़ोरों के लिये ज़हरे-हलाहल[5] है अनाज
ख़तरए-मर्ग[6] है और क़हबए-मग़रिब[7] का मेजाज़

आज पैरिस की हुकूमत प कज़ा तारी है !!
'आज बीमार प ये रात बहुत भारी है' !!

बांडिग से जो चला रूहे-जवाँ[8] का सैलाब
हो गये कितने ही नापाक इरादे तहे-आब[9]
क्या ही बरजस्ता[10] है कशमीर-पिरिन्सेस का जवाब
हरमेजिस्टी के गले से नहीं उतरेगी शराब

जाम[11] एडन के लरज़ते हुये हाथों से गि
चरचिल इक मरतबा फिर सब की निगाहों से गि

(१) गुप्त (२) प्रकाश (३) दानशीलता (४) भाग्य (५) भरा हुआ (६) मृत्यु-भय (७) पच्छिमी वारांगना (८) जवानो की आत्मा (के नीचे (१०) मोका का (११) प्याला।

क़हरो-ग़ारत के सफ़ीने[१] जो नमूदार हुये
नील की नहर में तूफ़ान भी तैयार हुये
अहले-ईमान बड़े वक़्त प बेदार हुये
डर के नापैद, अन्धेरों में सियहकार[२] हुये

मौजें ललकार के चिंघाड के बल खाती हैं!
मछलियाँ हँस के जहाज़ों प निकल जाती हैं

सारे संसार को तहज़ीब सिखाने के लिये
यानी बेशर्म अदाओं से लुभाने के लिये
हर भगत सिंह को फाँसी प चढाने के लिये
मरतबा ईसए-मरयम[३] का घटाने के लिये

साज़िशें तेज़ हैं मग़रिब के दग़ाबाज़ों की
कुंजियाँ छीन लो तक़दीर के दरवाज़ों की

राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ-साथ उर्दू के आधुनिक कवियों ने मिस्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व को भी अभीष्ट रखा है और अपनी रचनाओं में उनकी प्रेरणा को प्रोत्साहन दिया। उदाहरणार्थ तनवीर अहमद अलवी की 'क़्लोपतरा' देखी जा सकती है—

और वो तर्ज़े-मोहब्बत वो तेरा हुस्ने-फ़रेब[४]
दाम[५] में अपने तू ख़ुद ही क़ैद होकर रह गई
दूसरों की ज़िन्दगी से खेलने के वास्ते
तू बनी सय्याद[६] लेकिन सैद[७] होकर रह गई

तेरे होटों की गुलाबी, तेरे आँखों का ख़ुमार
हाँ वो मय, मीनागुदाजो[८] जिसका हासिल बन गई
एक ज़हरीली मगर मासूम नागिन की तरह
तेरे बोसे[९] की हलावत[१०] ज़हरे-क़ातिल बन गई

(१) नौका (२) पापी (३) ईसा-मसीह (४) सौन्दर्य का भ्रम (५) जाल (६) शिकारी (७) शिकार (८) मदिरा सेवन (९) चुम्बन (१०) मिठास।

६ कांगो :—साम्राज्यवादियों के अत्याचार और अफ़रीक़ा के जागरण का सबसे बड़ा उदाहरण कांगो की घटनाओं में मिलता है। कांगो की नौ लाख वर्ग मील भूमि और चौदह लाख मनुष्यों पर विदेशी अधिकार बेलजियम के सम्राट् लियोपाल्ड के समय से हुआ। सामाजिक हीनता के अतिरिक्त आये दिन के अत्याचारों से परीशान होकर जनता स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़ी। उनके शान्तिमय आन्दोलन में बड़ी शक्ति थी अतः विवश होकर साम्राज्य-वादियों ने स्वतंत्र करने का वचन भी दे दिया। कांगो में आम चुनाव भी हुआ और गणतंत्र के आधार पर प्रधान मंत्री के पदपर श्री पीटर्स लुमुम्बा को चुना गया। १ जुलाई १९६० को स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इतने पर भी बेलजियमी साम्राज्य ने कांगो को छोड़ना अस्वीकार कर दिया। ऐसे समय पर विवश होकर लुमुम्बा ने राष्ट्र-संघ का दरवाज़ा खटखटाया। राष्ट्र-संघ ने अपनी सेना कांगो की जनता की सहायता के लिये भेजी। साम्राज्यवादियों के आधिपत्य के कारण इस सेना ने उल्टे लुमुम्बा को ही कमज़ोर करना शुरू कर दिया। लुमुम्बा से उनके देश के आयात-निर्यात के साधन, रेडियो स्टेशन, और हवाई अड्डे छीन लिये गये। परिणाम स्वरूप देश ने घातक तत्वों को ग्रहण किया तथा लुमुम्बा और उनके साथियों को जेल में डाल दिया गया। उनके सिर मूँड़ डाले गये और असहनीय कष्ट पहुँचाये गये। संसार इस अत्याचार पर चीख़ पड़ा। विभिन्न देशों से माँग होने लगी कि लुमुम्बा और उनके साथियों को छोड़ दिया जाय किन्तु ऐसा न किया गया। शुरू में इस ख़बर को कई प्रकार से छिपाने की कोशिश की गई। साम्राज्यवादियों ने कहा कि लुमुम्बा और उनके साथी आराम से हैं, जेल में उनके साथ उनके सम्मान के अनुसार व्यवहार हो रहा है। आख़िरकार बात खुली और मास्को रेडियो ने घोषणा की कि बेलजियम के अफ़सरों की संरक्षकता मे लुमुम्बा और उनके साथियों को कटंगा पहुँचने के पूर्व ही क़त्तल कर दिया गया था।

इस अत्याचार के समाचार से सारा संसार रो पड़ा। भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने खुलकर उन लोगों की निन्दा की जिन्होंने लुमुम्बा और उनके साथियों की हत्या में सहायता की थी। उर्दू कवि भी इस दुखान्त से प्रभावित हुये। उनके आँखों से भी आँसू निकले जिनके अंश-अंश में घृणा और विद्रोह का आधिपत्य था। उदाहरणार्थ 'साहिर' लुधियानवी की कविता 'ज़ुल्म की क़िसमत' देखी जा सकती है—

ज़ुल्म फिर ज़ुल्म है बढता है तो मिट जाता है
ख़ून फिर ख़ून है टपकेगा तो जम जायेगा

लाख बैठे कोई छुप-छुप के कमींगाहों[1] में
ख़ून जो देता है जल्लादों के मसकन[2] का सोराग़[3]
साज़िशें लाख उढ़ाती रहें ज़ुलमत[4] की निक़ाब[5]
लेके हर बूँद निकलती है हथेली प चिराग़

तुमने जिस ख़ून को मक़तल में दबाना चाहा
आज वो कूचाओ-बाज़ार में आ निकला है
कहीं शोला कहीं नारा, कहीं सिपहर बनकर

ज़ुल्म की बात ही क्या, ज़ुल्म की औकात ही क्या
ज़ुल्म बस ज़ुल्म है आग़ाज़[6] से अंजाम[7] तलक
ख़ून फिर ख़ून है सौ शक्ल बदल सकता है
ऐसी शक्लें कि मिटाओ तो मिटाये न बने
ऐसे नारे[8] कि दबाओ तो दबाये न बने
ऐसे शोले कि बुझाओ तो बुझाये न बने

ज़ुल्म फिर ज़ुल्म है, बढता है तो मिट जाता है
ख़ून फिर ख़ून है टपकेगा तो जम जायेगा

लुमुम्बा और उनके साथियों की हत्या की भारत ने सबसे बढ़कर निन्दा । पूरे देश में इसके विरोध में एक भय और घृणा से मिली-जुली भावना गई थी । साम्राज्यवादियों के नग्न अत्याचारों ने राष्ट्रसंघ की ख्याति भी क्षति पहुँचाई थी । अब लोगों के हृदय में यह विचार आधिपत्य जमाने ा था कि राष्ट्र संघ हमारी रक्षा नहीं कर सकता । यदि हमें जीवित ा है तो इसका प्रबन्ध स्वयं करना होगा । साम्राज्यवाद का भाँडा अब जाना चाहिये । 'मख़दूम' ने अपनी कविता 'चुप न रहो' में इस प्रेरणा आगे बढ़ाया है—

---

(१) घातस्थल (२) निवास स्थान (३) पता (४) अन्धकार (५) परदा प्रारम्भ (७) अन्त (८) ललकारों ।

ख़ैर हो मजलिसे-अक़वाम[1] की सुलतानी की
ख़ैर हो हक़ की, सदाक़त की, जहाँबानी[2] की
और ऊँची हुई सहेरा में उमैदों की सलीब
और एक क़तरए-ख़ूँ चश्मे-सहेर[3] से टपका
जब तलक दहर में क़ातिल का निशाँ बाक़ी है
तुम मिटाते ही चले जाओ निशाँ क़ातिल के
रोज़ हो जश्ने-शहीदाने-वफ़ा,[4] चुप न रहो
बार बार आती है मक़तल[5] से सदा
चुप न रहो
चुप न रहो

नयाज़ हैदर की कविता 'ए जाँनिसारे-अज़मतें-जमहूर ज़िन्दाबाद' में बल है। उनके सामने साम्राज्यवादियों के दूसरे अत्याचार भी हैं। र विचार है कि यदि हम में आत्मविश्वास पैदा हो जाये तो अत्याचारों अन्त अवश्य हो जायेगा। अब तक जो हमारा गला काटते है कल वे आत्महत्या करने पर विवश होंगे—

ज़ंजीर की झनक थी अन्धेरों का शोर था
ऐसे ही जगमगाती है खेतों की रोशनी

सहराए-तीरगी[6] में है जो आज शोलाबा[7]
ख़ूने-शहीद यानी शहीदों की रोशनी
मग़रिब के मुजरिमों का ये जुर्मे-अख़ीर है
वो ख़ुदकुशी करेंगे जो करते हैं क़त्ले-आम
ए-गैरतो- हमीयतो- एहसासे- हुर्रियत[8]
सच है कि नागुज़ीर[9] है क़ातिल से इन्तेक़ाम[10]

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं इस सम्बन्ध में कही गई कवि की उर्दू में कमी नहीं। राजनीतिक विवेक रखने वाले बहुत से कवियों ने सम्बन्ध में भाग लिया है। उनकी रचनाओं में वह आग है जो पराधीनत

(१) संयुक्त संघ (२) विश्वराज (३) सुब्ह की आँख (४) वफ़ा वाले श का समारोह (५) बध-स्थल। (६) अन्धकार के बन (७) अग्निपूर्ण (८) ए ल स्वाभिमान एवं स्वातंत्र्य भाव (९) अटल (१०) बदला।

जला कर राख बना देती है। फ़ुज़ैल जाफ़री की कविता द' इन्हीं अमर भावों का प्रदर्शन करती है—

काँगों, हमनफ़सो[1] किसके लहू से तर हैं
अम्ने-आलम[2] की नदामत[3] से झुकी है गरदन
आसमाँ नौहाकुनाँ[4], नाला-बलब[5] है धरती
चूड़ियाँ तोड़ के रोती है शफ़क़[6] की दुल्हन
ख़ूब आईने-चमनबन्दिए-सरमाया[7] है
फूल को फूल कहें गर तो सज़ा देते हैं
सिर्फ़ इस जुर्म प गुलशन को कहा है अपना
क़ैद कर देते हैं सूली प चढ़ा देते हैं
जिस क़दर ज़ुल्म की मीआद बढ़ायेंगे, हम
ज़ुल्म से बरसरे-पैकार[8] ज़्यादा होंगे
क़त्ल कर सकते हैं वो एक लुमुम्बा को मगर
सैकड़ों और लुमुम्बा अभी पैदा होंगे
क़ल्बे-मज़लूम[9] की आहों का धुवाँ ज़िन्दाबाद
दस्ते-आदम[10] में बग़ावत की अनाँ[11] ज़िन्दाबाद

की आन और स्वतंत्रता पर अपने प्राण निछावर करने वाले लुमुम्बा साथियों पर उर्दू मे ग़ज़लें भी कही गई हैं। उदाहरणार्थ अख़्तर ज़ल के तीन शेर देख लीजिए—

ख़ूँ उछाला रहज़नों ने रहबरी के नाम से
मौत की सौग़ात भेजी ज़िन्दगी के नाम से

इब्ने-आदम[12] ही के हाथों क़त्ले-मर्दे-हुर्रियत[13]
रो रहा है आदमी फिर आदमी के नाम से

आप और इनसानियत? इतने तो हम सादा नहीं
और कितने ख़ूँ करेंगे दोस्ती के नाम से

साथियों (२) विश्वशान्ति (३) लज्जा (४) विलाप करने वाला
लिये (६) लालिमा (७) पूँजीवाद की व्यवस्था का विधान
यस्त (९) उत्पीड़ित हृदय (१०) मनुष्य के हाथ मे (११) लगाम
के पुत्र (१३) स्वतंत्रता वाले व्यक्ति की हत्या।

उर्दू के वर्तमान कवियों के राजनीतिक विवेक के विषय मे लिखने के लिये बहुत विस्तार की आवश्यकता है। यहाँ इस पुस्तक में इसके लिये अधिक पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरणार्थ रूस और अमरीका के विषय में उर्दू के कवियों के विचार देख लीजिये—

(७) रूस और अमरीका :—दूसरे महायुद्ध ने विश्व इतिहास पर अपना भरपूर प्रभाव छोड़ा। इस युद्ध के परिणामस्वरूप संसार की राजनीति मे बड़ा परिवर्तन हुआ। बरतानिया और फ्रान्स अपनी आर्थिक दुर्दशा के कारण मैदान से हटे और उनकी जगह अमरीका और रूस ने सँभाल ली। यद्यपि बरतानिया ने अपने असंख्य उपनिवेशों के कारण शीघ्र ही अपनी स्थिति सँभाल ली परन्तु वे उपनिवेश भी स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाकर उसका विरोध करने लगे। संसार की चौधराई अबकी बार बरतानिया और फ्रान्स के भाग्य में न आई वरन् संसार रूस और अमरीका की ओर आकृष्ट होने लगा।

रूस ने साम्यवाद को अपना सिद्धान्त बनाया। सामन्ती व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में उसने कुछ नई आर्थिक एवम् सामाजिक व्यवस्था की रूप-रेखा प्रस्तुत की। इसने इस बात की घोषणा की कि राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त हो। कोई राजा, प्रजा, स्वामी, दास, सम्पतिवान, पूँजीपति के रूप में न आये! साधारण व्यक्तियों की एक ऐसी सरकार बने जो नवीन जीवन के निर्माण मे मुख्य रूप से लग सके। रूसी विचारधारा का विश्वास भौतिक समस्याओं में निष्ठा के साथ रहा है। आध्यात्मिक अथवा अन्तरिक्ष विचारधारा से इन्हें विरोध है। विश्व के प्रत्येक ऐसे आन्दोलन से इनकी सहानुभूति है जो मानव स्वतंत्रा के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। भारत भी इनके जीवन और विचारधारा से प्रभावित हुआ। उर्दू के बहुत से कवि उन्हीं के प्रकाश में देखने लगे। उन्होंने सोचना शुरू किया कि हमें भी इस आर्थिक ऊहापोह से उसी समय मुक्ति मिल सकती है जबकि हम साम्यवाद को अपना लक्ष्य बनाये। भारत के साम्यवादी दल ने इस विचार धारा को प्रोत्साहन दिया। साहिर लुधियानवी अपनी कविता 'तुलूए-इश्तराकियत' में उस दिन की कल्पना करते हैं जब अत्याचारी राज्य व्यवस्था समाप्त होगी और दुनिया में लोकप्रिय शासन व्यवस्था अधिकार पायेगी

जश्न बपा है कुटियाओं में ऊँचे ऐवाँ[1] काँप रहे हैं
मज़दूरों के बिगड़े तेवर देख के सुलताँ काँप रहे हैं

रौंदी कुचली आवाज़ों के शोर से धरती गूँज उठी है
दुनिया के अन्याय नगर में हक़[2] की पहली गूँज उठी है

जमा हुये हैं चौराहों पर आके भूके और गदागर[3]
एक लपकती आँधी बनकर, एक भभकता शोला होकर

काँधों पर संगीन, कुदालें, होंटों पर बेबाक तराने
दहक़ानें[4] के दल निकले हैं, अपनी बिगड़ी आप बनाने

राजमहल के दरबानों से ये सरकश तूफ़ाँ न रुकेगा
चन्द केराये के तिनकों से सैले-बेपायाँ[5] न रुकेगा

काँप रहे हैं ज़ालिम सुलताँ, टूट गये दिल जब्बारों के
भाग रहे हैं ज़िल्ले-इलाही[6], मुँह उतरे हैं ग़द्दारों के

एक नया सूरज चमका है, एक अनोखी ज़ौबारी[7] है
ख़त्म हुई अफ़राद की शाही, अब मज़दूर की सालारी है

उर्दू कवि साम्यवाद की प्रशंसा तक ही सीमित नहीं हैं। उनकी संख्या रूस के भी गुण गाती है जिसकी बदौलत हमें जीवन की यह स्था प्राप्त हुई है। वे कल्पना करते हैं कि सारी दुनिया में एक दिन लोक-सरकार जन्म लेगी। सबके साथ न्याय होगा और किसानों-मज़दूरों राज्य होगा। जाँनिसार अख़्तर 'रूस को सलाम' कहते हुये कहते हैं—

मैं आज अपने हिमालया की बलन्द चोटी से देखता हूँ
कि दूर मग़रिब की वादियों में जवान सूरज उभर रहा है
हमारा मग़रिब!
वो रूस! वो अर्ज़े-ईसतालिन[8]
कि जिसके दामन को आज बारह समुन्दरों की अज़ीम मौजें
बड़ी अक़ीदत[9] से चूमती हैं
बलन्द यूराल की हवाओं में सुर्ख़ परचम खुला हुआ है।

(१) महल (२) सत्य (३) भिखारी (४) किसानों (५) अपार बाढ़ सम्राट (७) प्रकाश (८) इस्तालिन की ज़मीन (९) आस्था।

वो सुर्ख़ परचम, वो सुर्ख़ तारा
कि जैसे सूरज का दिल किसी ने शफ़क़ के पहलू में जड़ दि

वो थूकस के वसीअ दामन में खेतियाँ लहलहा रही हैं
वो ज़िन के साहिलों प गेहूँ के नर्म ख़ोशे[1] लचक रहे हैं
अलग-अलग खेत हैं न खेतों के बीच नीची हक़ीर मेंडें
कि उनको हरियालियों के उमड़े हुये समुन्दर ने धो दिया है
ज़मीन टुकड़ों में जो बटी थी
वो मिल के फिर एक हो गई है

फ़ज़ा में लहके हुये हैं नग़मे जवान खेतों की ताज़गी के
नये तराने सुना रहे हैं किसान ख़ुशहाल ज़िन्दगी के
हमारे खेतों प है जवानी
उगी हैं धरती की ज़िन्दगानी
ये ईसतालिन की मेहरबानी

ये खेत अपना अनाज अपना
हर एक खलयान आज अपना
सुनहरी फ़सलों प राज अपना
ये कुल ज़मीं अपनी राजधानी
ये ईसतालिन की मेहरबानी

वो सामने 'सुर्ख़ चौक' में इक जुलूस गाता निकल रहा है
कि ज़िन्दगानी का गूँजता बेकराँ[2] समुन्दर उबल रहा है
हज़ार झन्डों प अम्न-आलम के आज नारे लिखे हुये हैं
हर एक नारा फ़ज़ा के सीने में गूँज बन बन के ढल रहा है
हज़ारहा नौजवाँ क़दम से क़दम मिलाये गुज़र रहे हैं
फ़लक का सीना धड़क रहा है, ज़मीन का दिल उछल रहा है

गुज़र रहे हैं परे जमाये
वो रूस के जवान बेटे
दिलेर ख़ाकास सर उठाये

(१) बालियाँ (२) अथाह।

क़दम बढ़ाते
गिरोह अन्दर गिरोह गाते

बलन्द माथों प सुर्ख़ मंज़िल का सुर्ख़ परतौ[1] चमक उठा है
ज़मीं का रुख़सार और भी कुछ दमक उठा है दहक उठा है
उमड़ रहे हैं क़दम फ़ज़ाओं में आज अबरे-बहार बनकर
हवा में शादाब ज़िन्दगी का वसीअ दामन लहक उठा है
हज़ार क़ौमें अज़ीम इनसानियत की वहदत[2] में ढल गई हैं
हज़ार फूलों का हार गुँथ कर लहक उठा है महक उठा है
सलाम ए अर्ज़े-ईसतालिन कि आज तेरी सहर का परतौ है
फ़लक-फ़लक पर उफ़ुक़-उफ़ुक़ पर ज़मीं-ज़मीं पर चमक उठा है
तमाम मशरिक़ भलक उठा है

रूस ने संसार को एक नवीन राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था देने के अलावा और दूसरे क्षेत्रों में भी अपने झंडे गाड़े हैं। विशेष कर विज्ञान, जिसके आधार पर नवीन संसार का निर्माण हो रहा है, आज रूस के लिये क्रियाकेन्द्र बना हुआ है। उन्होंने इस सम्बन्ध में संसार के अन्य देशों की अपेक्षा सबसे बड़ी सफलता भी प्राप्त की है। प्राग् ऐतिहासिक काल से आज तक मनुष्य पृथ्वी तक सीमित था। विज्ञान का भावी प्रयास शायद यह संभव करदे कि भविष्य में वह चन्द्रमा, शुक्र, मंगल, आदि ग्रहों का स्वामी बन जाये। रूस ने अन्तरिक्ष तक अपना दूत भेजकर अपने देश की पताका फ़हरा दी है। उर्दू कवियों ने गगारिन के अन्तरिक्ष से स्वस्थ वापस आने पर अपनी ख़ुशी का इज़हार किया है। वे इसे रूस की सफलता के साथ मानवता की विजय समझते हैं। ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ ने 'नज़्रे-गगारिन' में अन्तरिक्ष यात्री गगारिन को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये संसार के मनुष्यों को संदेश दिया है—

ख़ुली फ़ज़ाओं में उड़ना अभी तो सीखा है
अभी न जाने कहाँ तक ये तेज़पा[3] जाये
ख़ुदा करे तुझे परवाज़े-शौक़[4] रास आये

---

(१) प्रतिबिम्ब (२) एकत्व (३) जल्दी चलने वाला पैर (४) अभिलाषा की उड़ान।

चमन की क़ैद से मिस्ले-सबा[1] गुज़र जाये
ये दौर दौरे-सआदत[2] है आदमी के लिये
कि एक ख़ाकनशीं[3] बामे-अर्श[4] पर जाये
दयारे-शम्सो-क़मर[5] का सफ़र मुबारक हो
जहाँ भी जाये जुलू[6] में तेरी ज़फ़र[7] जाये
ये मोजज़ा[8] भी जुनूँ ने दिखा दिया 'ताबाँ'
जहाँ नज़र भी न पहुँचे वहाँ बशर[9] जाये

'मख़दूम' मोहीउद्दीन भी मनुष्य की जीत से प्रफुल्लित हैं। उन्होंने भी अपनी एक कविता में 'गगारिन' को बधाई दी—

मुबारक तुझे ओ ज़मीं के मुसाफ़िर
ज़मीनो-ज़माँ[10] की हदें तोड़कर
आसमानों प जाना
हवाओं के आगे, ख़लाओं[11] के आगे
महो-कहकशाँ[12] की फ़ज़ाओं के आगे
मुबारक सितारों के चिलमन हटाना
सरे-ज़ुल्फ़े-नाहीद[13] को छू के आना
दिले-इब्ने-आदम[14] की धड़कन सुनाना
मुबारक तुझे ओ ज़मीं के मुसाफ़िर
ज़मीनो-ज़माँ की हदें तोड़कर
आसमानों प जाना

उर्दू के समस्त कवि साम्यवाद को अपना लक्ष्य नहीं मानते। धर्मप्रधान भारत में कवियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो साम्यवाद के अनुरागी रूस इत्यादि देशों का कट्टर विरोधी है। उनके विचारों में साम्यवादियों ने समानता का भ्रम देकर मनुष्यों से उनका जीवन छीन लिया है। उनके राज्य में किसी व्यक्ति को सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की आज़ादी नहीं है। हृदयों में घृणा जन्म लेती है किन्तु उसका प्रकटीकरण संगीनों के बल पर

(१) पुर्वाई की तरह (२) शुभ युग (३) ज़मीन पर रहने वाले (४) आसमान के कोठे (५) चाँद-सूर्य के देश (६) साथ (७) सफलता (८) चमत्कार (९) मनुष्य (१०) पृथ्वी और काल (११) अन्तरिक्ष (१२) चन्द्रमा और आकाशगंगा (१३) शुक्र की देवी के केशों का किनारा (१४) आदम के बेटे के दिल।

रोक दी जाती है। इसी कारण अधिकारियों की आलोचना उनके समय में नहीं होती परन्तु उनका अधिकार समाप्त होते ही उनकी तसवीर गोलियों से छेद दी जाती है। मख़्मूर सईदी कहते हैं—

नये ख़ोदाओं की ख़ूँख़ारियाँ[1] मुआज़-अल्लाह[2]
कि अर्ज़े-शिद्दते-ग़म[3] का जवाब गोली है
गये वो दिन कि फ़ोग़ाँ[4] लब तक आ तो सकती थी
अब एहतेजाजे-सितम[5] का जवाब गोली है

इस सम्बन्ध में रूस के नेता बेरिया के अन्त से भी प्रेरणा मिलती है। शफ़ीक अंजुम ने 'अनजामे बेरिया' में रूस की व्यवस्था की आलोचना की है। उनका विचार है कि रूसी अपने यहाँ के अत्याचारों पर चाहे जितना परदा डाले परन्तु उनका भांडा समय की गति के साथ अवश्य चूर हो जायेगा—

तारीख़ है गवाह कि आमिर[6] की मौत पर
पसमान्दगाने-रूस[7] में होता है इख़्तेलाफ़[8]
तारीख़ है गवाह कि चालाक मुद्दई
हर वक़्त कर ही लेता है साज़िश[9] का इनकेशाफ़[10]
तारीख़ है गवाह कि अवामी-अदालतें[11]
करती नहीं किसी की ग़द्दारियाँ मुआफ़

सुन ले बतौर-दर्स[12] मुरीदाने-मास्को[13]
आवाज़ आ रही है वहीं से ये साफ़-साफ़
तारीख़ का सुबूत है अनजामे-बीरिया
कुत्ते की मौत मरता है चालाक भेड़िया

संसार की दूसरी राजनीतिक विचारधारा की प्रेरणा धर्म एवं पूँजीवाद की सरंक्षणता में आगे बढ़ रही है। ये अपनी प्राचीन व्यवस्था को जटिल बनाना चाहते हैं। यूरोप के अन्य देशों के साथ अमरीका उनका नेतृत्व कर रहा है। राष्ट्र-मडंल पर अमरीका का अधिकार है। उसकी अपनी सरकार भी गणतंत्र के आधार पर बनी है। परन्तु पूँजीवाद उसकी सरकार की आधारशिला

---

(१) रक्त शोषण (२) ईश्वर बचाये (३) दुख की तीव्रता बताना (४) विलाप (५) अत्याचार का विरोध (६) अधिनायक (७) रूस के अवशिष्टों (८) मतभेद (९) षड़यन्त्र (१०) अभिव्यक्ति ११) जन-न्यायालय (१२) शिक्षा के रूप में (१३) मास्को पर आस्था रखने वाले।

है। अमरीका की वर्तमान सरकार में भी वित्त, सेना और विदेशी नीति के विभाग पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों के अधिकार में है। उर्दू के अधिकतर कवि पूँजीवाद के विरुद्ध हैं परन्तु धर्म को सम्मान देने के कारण कुछ लोगों की सहानुभूति इसे प्राप्त हो गई है। अमरीका के वर्तमान राष्ट्रपति जान केनेडी अपेक्षाकृत पूर्व के राष्ट्रपतियों में जनभावों का सम्मान अधिक करते हैं और एक प्रकार से उनके दल से भी सम्बन्ध रखते हैं। अमरीका के जनकवि राबर्ट फ़ास्ट ने २०जनवरी १९६१ को उनके पदग्रहण पर एक कविता में अमरीका के जनभावों को प्रस्तुत करते हुये उनके आगमन को जनता की विजय कहा है। उर्दू में दीनानाथ 'मस्त' ने इसका अनुवाद 'ग़ुलामी से आज़ादी तक' के शीर्षक से किया है—

वतन वाले तो थे लेकिन न था फिर भी वतन अपना
चमन में आशयाँ तो था, न था लेकिन चमन अपना
मेरे असलाफ़ो-आबा[1] थे यहाँ सदियों से जो साकिन[2]
मगर आज़ाद लोगों की तरह जीना न था मुमकिन
मसचूसटिस और वरजीना में हम ही बसते थे
हमारी हुर्रियत[3] के हम प लेकिन बन्द रस्ते थे
भरोसा था न अपने दस्तो-बाज़ू[4] पर, न ताक़त पर
शुजाअत[5] के धनी होकर यक़ीं कब था शुजाअत पर
हुआ एहसास आख़िर हमको भी अपनी ग़ुलामी का
भड़क उट्ठा इकाइक शोला जज़बाते-अवामी[6] का
बग़ावत के बढ़े आसार मैदाँ में उतर आये
दबे बैठे थे जो मज़लूम[7] पस्ती[8] से उभर आये
पड़ा घमसान का वो रन महारिब[9] ने अमाँ[10] माँगी
हमारे सूरमाओं से पनाहे-जिस्मो-जाँ[11] माँगी
'नई दुनियाँ' की आई 'सुब्हे-नव' ज़ुल्मत[12] के दिन बीते
ख़ोदा था साथ मज़लूमों के आख़िर को यही जीते
मिटा दौरे-ग़ुलामी हर तरफ़ इक इनक़लाब आया
सितारों वाले परचम को सलामे-आफ़ताब[13] आया

(१) पितामह (२) निवासी (३) स्वतंत्रता (४) हाथ और भुजा (५) वीरता (६) जनभाव (७) उत्पीड़ित (८) अधमता (९) युद्धों (१०) शान्ति (११) जिस्म और जान की रक्षा (१२) अन्धकार (१३) सूर्य को प्रणाम।

सातवाँ अध्याय

देश की समस्यायें एवं सफलतायें

साहित्य की समस्यायें जीवन की समस्याओं से पृथक् नहीं होतीं। दोनों ही मानवता की उन्नति के लिये क्रियाशील रहती हैं। देवमाला-युग में भी काव्य और उसके कलासौन्दर्य का नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों से प्रसारण किया जाता था। दैनिक जीवन के मूल्यों की रचना में कवियों का इतना बड़ा हाथ होता है कि प्राचीन यूनानियों ने उन्हें देवताओं की श्रेणी में खड़ा कर दिया था—केवल देवता और कवि रचना कर सकते हैं। यह कथन सृष्टि के प्रारम्भ में जितना कि सत्य था उतना ही आज भी अनुभूति सम्पन्न कवि जब अपनी क्रियाशील चेतना द्वारा कल्पना सृष्टि करता है तो उसकी समस्त भावना शक्ति एक अद्वितीय नैसर्गिक क्षमता को छू लेती है।

स्वतंत्रता के बाद जनता को उसकी अपनी कल्पना मूर्त रूप में साकार रूप में प्रकट हो गई थी। उसकी भावना में एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना थी कि जिसमें अमीर व ग़रीब का फ़र्क़, व्यक्ति-स्वातंत्र्य के साथ जीवन के अनेक क्षेत्रों में व्याप्त सुविधाओं में अवसर की समानता, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में विशेष वर्ग का आधिपत्य न हो, ज्ञान व धर्म के स्रोत से सिंचित होने का सबको समान अधिकार हो, सम्प्रदायिकता का अन्त और मानवता का आदर किया जाय।

स्वतंत्रता के पूर्व देश के नागरिकों पर कोई राजनीतिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व न था। वे विदेशी सरकार के अधीन थे इसलिये उनका अपना जीवन न रह गया था। अंग्रेज़ उनके भाग्यविधाता थे और उन्हीं के इच्छानुसार उनको चलाना था। ऐसे जीवन के अत्याचारों से परीशान होकर कुछ लोग बन्धनों को तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। परन्तु स्वतंत्रता के बाद देश का अधिकार मिल जाने पर परिस्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई। अब भारतवासियों को स्वयं अपने भाग्य का निर्णय करना था उनको उस चेष्टा

में देश की, राष्ट्र की एक कल्पना निहित थी जिसके आधार पर वे समूचे देश की मनःस्थिति को जगा रहे थे। वह स्वप्न था स्वराज्य का, स्वशासन और अनुशासन का। दरिद्रता से मुक्ति एवम् आर्थिक स्वतंत्रता का, सम्पन्नता का, आर्थिक दासता से मुक्ति एवम् स्वावलम्बी जीवन का। इसीलिये वे नितान्त उत्सुक होकर स्वराज्य एवम् स्वतंत्रता की उपलब्धि को उत्सुक होकर देख रहे थे। उसके प्रति उनकी भावुक आस्था विह्वल थी। अतः उन्हें उन कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा जो इसके पूर्व उनसे सम्बन्ध न रखती थी। ये कठिनाइयाँ देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के कारण थीं। इस अध्याय में इन्हीं स्थितियों से उपजी हुई भारतीय संवेदना के संक्रमण एवम् संघर्ष की साहित्यिक अभिव्यक्ति पर विचार किया जायगा। इस अध्याय का मुख्य विवेच्य यह है कि उर्दू साहित्य ने कहाँ तक राष्ट्र की वर्तमान स्थितियों का साथ दिया है—

(१) शरणार्थी—भारत के बटवारे का जहाँ यह परिणाम हुआ था कि बहुत से लोग अपनी ही मातृभूमि में विदेशी प्रमाणित कर दिये गये थे वहीं परिणामतः देशवासियों ने एक दूसरे का गला काटने में भी संकोच नहीं किया। हिन्दुस्तान व पाकिस्तान दोनों जगहों के अल्पसंख्यकों को अपनी मातृभूमि से दूसरी जगह आने पर बाध्य कर दिया गया। बहुत से लोग साम्प्रदायिक उपद्रवों से पीड़ित होकर भाग निकले और बहुत से देखा-देखी भी। एक अजीब सी स्थिति थी जिसमें जनता अपने घर, गाँव, मित्रों एवं संबन्धियों से विरक्त हो रही थी। चारों ओर के ऊहापोह की दशा को संतुलित करने में उर्दू कवियों ने बड़ा काम किया। उन्होंने जनता को समझाया कि भगदड़ में भाग निकलना वीरता नहीं है बल्कि देश में रहकर इस स्थिति को समाप्त करना ही मानवता का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। आले अहमद 'सुरूर' ढाका के एक मित्र के जवाब में लिखते हैं—

बंगाल के जादू का मैं क़ायल तो हूँ लेकिन
यू० पी० के हसीनों की अदा और ही कुछ है
वो शमा, वो महफ़िल, वो उजाला है बहुत ख़ूब
पर अपने चिराग़ों की ज़िया[१] और ही कुछ है
ये ऐशो-तरब,[२] जश्नो-जुनूँ[३] तुमको मुबारक

(१) प्रकाश (२) सुख व संगीत (३) उत्सव व उन्माद।

हम हिज्र[1] के मारों का सिला[2] ही और कुछ है
साहिल के सुकूँ से किसे इनकार है लेकिन
तूफ़ान से लड़ने का मज़ा और ही कुछ है

शरणार्थियों की समस्या भारतीय स्वतंत्रता पर एक कलंक सी आयी थी। देश के बटवारे के साथ वह विष जिसे अंग्रेज़ १८वीं शताब्दी से हमारे भीतर पैदा करते आये थे, सहसा उसने एक विस्फोट का रूप ले लिया। एक भयंकर अमानुषिक अत्याचार जनता पर छा गया। उर्दू कवियों ने शरणार्थियों की समस्या पर बहुत सी कवितायें कही जिनमे पं० आनन्द नारायण मुल्ला की 'शरनार्थी' 'अश्क' अमृतसरी की 'ख़ानाबदोश का गीत' आदि कवितायें प्रमुख हैं। ये सब अपने साथियों से उनकी मातृभूमि छूटने पर दुखी हैं। उनका विश्वास है कि अपना वतन फिर भी अपना वतन है। दूसरे देश में शरणार्थी बन कर जीने में किसी प्रकार का गौरव नहीं मिलता वरन् ऐसा करने मे तुच्छता का अनुभव होता है। 'वामिक़' की रचना 'शरनार्थी' इसी दुख से भरी हुई है। अपना देश छूटने पर जो दुख अनुभव किया जा रहा था वह निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

तेरे बैठे द्वार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी
टूट गई तलवार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी

कैसी हालत हो गई अपनी जैसे क़िस्मत सो गई अपनी
सूना सब संसार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी

अमृतसर की शोभा बिगड़ी ख़ाक हुई लाहौर की बस्ती
उजड़ा शालीमार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी

उठने लगे जब शोले घर से जान गवाँ देने के डर से
हो गये हम लाचार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी

कुनबा ही बाक़ी न रहा जब अपना कोई साथी न रहा जब
जीना है दुशवार पुजारी छूट गया घरबार पुजारी

(१) वियोग (२) उपकार।

आस की जिसपर बेल चढ़ी थी बैठ गई दीवार पुजारी	जिसपर मस्ती खेल रही थी छूट गया घरबार पुजारी
सूने होंगे खेत हमारे कौन उनका रखवार पुजारी	भूके मुवैशी होंगे बिचारे छूट गया घरबार पुजारी
इतने हम मजबूर जो ठहरे भीक गले का हार पुजारी	अपने नगर से दूर जो ठहरे छूट गया घरबार पुजारी
मरना जीना साथ में तेरे रहम को भारी मार पुजारी	अपनी दुनिया हाथ मे तेरे छूट गया घरबार पुजारी
अब तो यहाँ दिन-रात लगन है जाले फिर इक बार पुजारी	अपना वतन फिर अपना वतन है छूट गया घरबार पुजारी

(२) भ्रष्टाचार :-- देश उजड़ कर पुनः बस रहा था। देशवासी अपनी परेशानी में पड़े हुये थे। चारों ओर के दुराचार में आत्महीनता भी अपनी हद को पहुँच रही थी। अँग्रेज़ों की नौकरशाही का परिणाम सामने था। साम्राज्यवादी सत्ता में शिक्षित नौकरशाही ने उग्र रूप लिया। अपना राज्य होने का लोगों ने यह अर्थ लेना शुरू किया कि अब वे उचित-अनुचित प्रत्येक कार्य के अधिकारी हैं। परिणामस्वरूप लूटमार के साथ घूसखोरी सामान्य हो गई। छोटे-बड़े सभी प्रकार के अधिकारी रुपयों के झंकार के बिना जनता की पुकार सुनने में असमर्थ हो गये। सरकार ने पूरी चेष्टा से इस दशा पर क़ाबू पाने की कोशिश की। उर्दू कवियों ने इस सम्बन्ध में भी देश की हालत सुधारने में देश की जागरूक शक्तियों का हाथ बँटाया।

'अर्श' मलसियानी 'रिशवत का बाज़ार' देखकर परेशान हैं। जिस प्रकार के उद्‌गार उन्होंने अपनी निम्नलिखित कविता में व्यक्त किये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि देश में फैले हुये भ्रष्टाचार के कारण न्याय का दूर-दूर तक पता नहीं—

पटवारी की ख़ुदराई[1] सारे मुल्क में चलती है
मोटी तोंद मोहस्सिल[2] की बालाई से पलती है
नोट मिठाई की ख़ातिर रेल का बाबू लेता है
बिल्टी लेकर जो आये फ़ी बोरी कुछ देता है

(१) अपनी बात ऊपर रखना (२) वसूल-कर्ता।

भरती और खुदाई के झूटे बिल बन जाते हैं
सोना जान के मिट्टी को नहर के बाबू खाते हैं
ठीके देने वालों की हर सूरत से चाँदी है
इज़्ज़त पर तो ज़ोर नहीं दौलत इनकी बाँदी है
फन फैलाये फिरते हैं, पीले-काले नाग हैं ये
देश की फूटी क़िस्मत हैं, देश के उलटे भाग हैं ये
कोठी वाले साहब की ख़ुदराई का क्या कहना
अच्छे अच्छे नामों की रुसवाई[1] का क्या कहना
लीडर क़िस्म के लोग भी कुछ रिश्वत के मतवाले हैं
जितने उजले कपड़े हैं उतने ही दिल काले हैं
रूखी-सूखी छोड़ के ये सोना चाँदी खाते हैं
झूट से इनके रिशते हैं बदकारी[2] से नाते हैं
धर्म की बातें रहने दो हुस्ने-अमल[3] का ज़िक्र करो
क़ौम की इज़्ज़त लुटती है कुछ इसकी भी फ़िक्र करो
आज़ादी से मतलब क्या झूट और पाप का दफ़्तर था
या फिर मुझसे साफ़ कहो दौरे-ग़ुलामी बेहतर था

घूसख़ोरी के दमन के लिये उर्दू कवियों ने देश की क्रियाशील शक्तियों को मुक्त हृदय एवम् पूरे उत्साह के साथ सहयोग दिया है। उन्होंने 'घूसख़ोरी की निन्दा करते समय उसके प्रत्येक संभव अंग को सामने रखा है। 'जोश' मलीहाबादी ने अपनी कविता 'रिश्वत' में घूसख़ोर के मुख से उसकी सफ़ाई दिलाकर व्यंग्यात्मक रूप मे चित्र का दूसरा अंग निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है—

लोग हमसे रोज़ कहते हैं, ये आदत छोड़िये
ये तिजारत है ख़िलाफ़े-आदमीयत छोड़िये
इससे बदतर लत नहीं है कोई ये लत छोड़िये
रोज़ अख़बारों मे छपता है कि रिश्वत छोड़िये
भूल कर भी जो कोई लेता है रिशवत चोर है
आज क़ौमी पागलों में रात-दिन ये शोर है

(१) बदनामी (२) कुकर्म (३) प्रशन्सनीय कार्य।

इतनी गम्भीरी प भी मर-मर के जीते हैं जनाब
सौ जतन करते हैं तो इक घूँट पीते हैं जनाब

(२) मज़दूर वर्ग :—स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से देश के दलित वर्ग को विशेष प्रोत्साहन मिला है। सरकार भी उनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुये उनको उन्नति के शिखर पर ले जाना चाहती है। किसानों और मजदूरों से आज के उर्दू कवियों का संबंध कोई ढकी-छुपी बात नहीं है। प्रगतिशील वर्ग ने विशेषकर उन्हें अपने क्रिया-क्षेत्र का केन्द्र बनाया है। वे उनमें ग़ज़लें, नज़्में, मुक्तक पढ़ते हैं और राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति भी करते हैं। आज उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया है कि जनता से अलग रहकर, साहित्य को जीवन से आलिंगित किये बिना वे बेकार के शायर होकर रह जायेंगे। अतः वे जनता में घुलमिल कर उनके दुख समझते हैं और उन्हीं के बल पर सरकार को सचेत करते है। 'साहिर' ने उन्हीं भावों से ओत-प्रोत होकर एक बार कहा था—

तुमसे क़ूवत लेकर अब मैं तुमको राह दिखाऊँगा
तुम परचम लहराना साथी मैं बरबत पर गाऊँगा

देश की उन्नति के लिये मज़दूरों की दशा में सुधार की बड़ी आवश्यकता है। वे लोहे की मशीनों से लड़कर उत्पादन करते हैं परन्तु उनको उसका वह प्रतिफल नहीं मिल पाता जिनके वे अधिकारी हैं। उनकी कमाई का बहुत बड़ा भाग मिलमालिकों और पूँजीपतियों की तिजोरी और बैंक की भेंट हो जाता है। उनके घरवाले भूख-प्यास से तड़पते रहते है, बीमार बच्चे बिना दवा के बिलकते हैं और स्त्रियाँ वस्त्र बिना नग्न रहती हैं परन्तु उनको उनकी सेवाओं का बोनस भी नहीं दिया जाता। अगर दिया भी जाता है तो बहुत कम। मनुष्यों के इस वर्ग से सहानुभूति रखने वाले कवियों का उर्दू पर भी आधिपत्य है। वे उनकी कठिनाइयां को भी अपनी कठिनाई समझते हैं। उदाहरण के लिये परवेज़ शाहिदी की कविता 'तेवहार बोनस' देख लीजिये —

हम प क्या गुज़री है, लोहे के दिलों से पूछिये
अपनी फ़ौलादी मशीनों से मिलों से पूछिये

क़ीमते-गौहर[1] न पत्थर के सिलों से पूछिये
माहिरों से पूछिये, क्यों आक़िलों[2] से पूछिये
जाहिलों की बात है, सुमजाहिलों[3] से पूछिये
आप दाना है तो नादानी का बोनस दीजिये

बरतरी देते हैं जो उन कमतरों को देखिये
माओं, बहनों, बीबिओं को शौहरों को देखिये
घर की इज़्ज़त जिनसे है, उन दुख़तरों[4] को देखिये
जिन प आँचल तक नहीं है, उन सरों को देखिये
आइये आख़िर ज़रा उजड़े घरों को देखिये
अब हमारी ख़ानावीरानी[5] का बोनस दीजिये

हाथ फैलाते नहीं हम कुछ गदाई[6] के लिये
ताबके[7] तड़पा करें इक एक पाई के लिये
ये हमारी माँग है जाएज़ कमाई के लिये
रो रहे हैं जिस्मो-जाँ अपनी सफ़ाई के लिये
बढ़ रहे हैं हौसले आगे लड़ाई के लिये
जोश में दरया है तुग़यानी[8] का बोनस दीजिये।

आर्थिक कठिनाइयाँ भारत के मज़दूरों के जीवन का एक अंग हो गई हैं। दिन भर काम करने पर भी उन्हें पेट भरकर भोजन नहीं मिल पाता। मकान, चिकित्सा, कपड़ा और शिक्षा आदि समस्यायें दूसरी ओर से उनको कठिनाइयों के जाल में फँसाये रहती हैं। उर्दू कवि उनकी कठिनाइयों से दुखी होते हैं। और उससे छुटकारा पाने का भी उपाय सोचते हैं। उर्दू के महान काव्य संग्रह से उद्धृत की हुई 'क़ैफ़ी' आज़्मी की कविता 'मकान' में सर्वथा उन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया गया है। मज़दूर के जीवन की नित्य-प्रति की कठिनाइयाँ इसी बात पर प्रकाश डालती हैं। उन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

आज की रात बहुत गर्म हवा चलती है!
आज की रात न फुटपाथ प नींद आयेगी!

---

(१) जवाहर की कीमत (२) बुद्धिमानों (३) बज्र अनपढ़ (४) बेटियों (५) घर वीरानी (६) भीख (७) कबतक (८) बाढ़।

सब उठो ! मैं भी उठूँ, तुम भी उठो, तुम भी उठो
कोई खिड़की इसी दीवार में खुल जायेगी

ये ज़मीं तब भी निगल लेने प आमादा थी !
पाँव जब टूटती शाख़ों से उतारे हमने
इन मकीनों[1] को ख़बर है न मकानों को ख़बर
उन दिनों की जो गुफ़ाओं में गुज़ारे हमने

सिर्फ़ ख़ाका था, जो सच पूछो तो ख़ाका भी न था
जिससे ये क़स्र[2], ये ऐवान[3] उभारे हमने
हाथ ढलते गये साँचों में तो थकते कैसे
नक़्श के बाद नये नक़्श सँवारे हमने

की ये दीवार बलन्द और बलन्द और बलन्द
बामो-दर[4] और ज़रा और निखारे हमने
आँधियाँ तोड़ लिया करती थीं शमओं की लवें
जड़ दिये सक़्फ़[5] मे बिजली के सितारे हमने

बन गये क़स्र तो पहरे प कोई बैठ गया
सो रहे ख़ाक प हम शोरिशे-तामीर[6] लिये
अपनी नस-नस में लिये मेहनते-पैहम[7] की थकन
बन्द आँखों में इसी क़स्र की तसवीर लिये !
दिन पिघलता है उसी तरह सरों पर अब तक
रात आखों में खटकती है सियह तीर लिये

आज की रात बहुत गर्म हवा चलती है !
आज की रात न फुटपाथ प नींद आयेगी !
सब उठो ! मैं भी उठूँ, तुम भी उठो, तुम भी उठो
कोई खिड़की इसी दीवार में खुल जायेगी

३) विद्यार्थी वर्गः—भारत की स्वतंत्रता के पूर्व समाज का यह वर्ग । आन्दोलनों का बहुत बड़ा सहायक था। महात्मा गांधी और जी की विचारधाराओं से विद्यार्थी वर्ग को प्रेरणा और प्रौढ़ता थी। विद्यार्थी वर्ग देश के युवकों पर आधारित था। वे राष्ट्रीय

निवासियों (२) राजभवन (३) सदन (४) कोठा व दरवाज़ा (५) मकान
५ ६ रचना करने की ७ लगातार मेहनत

आन्दोलनों के प्रोत्साहन में विशेष योगदान देते थे। जिससे सम्पूर्ण राष्ट्रीय भावना को बड़ी सहायता मिलती थी। विद्यार्थियों में पैदा होने वाले राजनीतिक विवेक के उन्मूलन के लिये अंग्रेज़ों ने दमन नीति का पालन किया था परन्तु इनको जितना दबाया जाता था उतनी ही गर्मी इनके ख़ून में बढ़ती जाती थी। विद्यार्थियों ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना योगदान केवल ललकारों से नहीं दिया है बल्कि उनमे से बहुत से वीरों ने अपने प्राण भी निछावर कर दिये हैं। उस समय की काँग्रेस ने भी उन्हें सराहा और देश के भविष्य का रक्षक बताया था। स्वतंत्रता के बाद अन्य राजनीतिक दलों ने भी उन्हें अपने कार्य का यंत्र बनाया है अब वे अपने अधिकारों के लिये भारतीय सरकार के विरुद्ध भी हड़तालें करते हैं और मरणव्रत ले लेते हैं। उद्गार में डूबे हुये युवक उचित एवं अनुचित दोनों के लिये लड़ पड़ते हैं। फलस्वरूप राष्ट्रीय सरकार होते हुये भी उसे विवश होकर बलात् उनका दमन करना ही पड़ता है। ऐसा इसलिये भी है कि देश के स्वतंत्रता-संग्राम के समय समूचे राष्ट्र के युवकों के समक्ष एक ही आदर्श था—और वह था स्वतंत्रता का। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक ओर तो वह स्वप्न पूरा हुआ और दूसरी ओर हमारी सरकार ने एक ओर तो देश के युवकों को कोई भी कल्पना, स्वप्न या चिन्तन आधार ऐसा नहीं दिया जिससे उनके नैतिक स्तर के विकास के साथ-साथ एक सामान्य स्वप्न की ओर निष्ठा होती, दूसरी ओर निराश थकी राजनीतिक पार्टियाँ अपने उद्देश्य के लिये इनका जा-बेजा उपयोग करने लगी। इस सम्पूर्ण स्थिति का व्यंग्य यह था कि सारा विद्यार्थी वर्ग अपनी क्रियाशील जीवन-शक्तियों का उपयोग करने के बजाय, उसके दुरुपयोग की ओर झुक गया।

उर्दू के कवियों का बहुत बड़ा वर्ग विद्यार्थियों से सहानुभूति रखता है। उनमें से बहुत से लोग अब भी विद्यार्थी हैं। इसलिये परिस्थितियों का विश्लेषण करते समय अपने वर्ग के लाभ को प्रमुखता देते हैं और सरकार की अवहेलना भी करते हैं। क़ाज़ी अब्दुस्सत्तार ने अपनी कविता 'गोमती की आवाज़' में विद्यार्थी वर्ग के भावों का विश्लेषण किया है, साथ ही उनपर होने वाले अत्याचारों की निन्दा भी की है —

बात पर आते हैं तो क़िस्मत से लड़ जाते हैं वो
चशमए-हैवाँ[1] को भी वरना समझते हैं सुराब[2]

---

(१) एक काल्पनिक स्रोत जहाँ अमृत है (२) धोखा।

गैस, गोली से निहत्थों की लड़ाई कब तलक
चाँद के लश्कर प ग़ालिब आ गई फ़ौजे-सहाब[1]
मौत की वादी में आये तो मगर अन्दाज़ से
जैसे दुल्हन की शबिस्ताँ[2] पर क़दम रक्खे शबाब

नव निहालाने-गुलिस्ताँ[3] पर शबाब आने को है
हाथ में मिशअल[4] लिये रोज़े-हिसाब आने को है

बाग़बाँ से कह रही है जुंबिशे-लौहो-क़लम[5]
कल रसन और दार[6] के बदले चुकाये जायेंगे
गोलियों के भाव पर बिकला तो है अपना लहू
कल इसी बाज़ार के बदले चुकाये जायेंगे
आज हँसते है पहन कर तौक़ भी ज़ंजीर भी
कल इन्हीं आज़ार[7] के बदले चुकाये जायेंगे
हर क़दम पर फूल और मोती के लहरायेंगे गीत
फ़स्ले-आतशबार[8] के बदले चुकाये जायेंगे
सुख भरे इक़रार की महफ़िल में कलियाँ गायेंगी
दुख भरे इनकार के बदले चुकाये जायेंगे

किश्तिए-मजबूर का साहिल भी तूफ़ानों में है
तेरा अफ़साना भी शामिल मेरे अफ़साने में है

नवयुवक कवियों के अलावा प्रौढ़ बुद्धि के कवियों को भी विद्यार्थियों से सहानुभूति है। ये भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति में विद्यार्थी वर्ग को देखकर दुखी होते हैं कि किस संघर्ष के बाद उन्हें डिगरी मिलती है परन्तु शिक्षा प्राप्त करके वे और भी कठिनाइयों में फँस जाते हैं। देश में छाया हुआ बेकारी का दैत्य उनके जीवन की सम्पूर्ण सरसता को हड़प कर जाता है। ऐसी निराशा की स्थिति में उनकी निगाह दूसरे देश की तरफ़ भी उठती हैं और अपने राज्य से उसकी तुलना करने लगते हैं। नयाज़ हैदर ने अपनी एक कविता में बड़े सुन्दर ढंग से इस समस्या पर प्रकाश डाला है—

(१) बादल की फ़ौज (२) रात्र-निवास (३) उपवन के नये पौधे (४) मशाल (५) तख़्ती व क़लम का हिलना (६) फ़ाँसी (७) दुख (८) आग से भरी फ़सल।

कालिजों के ये दरो-बाम[1] नहीं भूलेंगे
उन ग़रीबों को जिन्हें फ़ीस की तौफ़ीक़ नहीं
जो पढ़ाते हैं मगर हँस के नहीं जी सकते
जिनके इरफ़ान[2] को आज़ादीए-तहक़ीक़[3] नहीं

वो जो मकतब[4] से गये आलिमो-फ़ाज़िल बनकर
उनकी अरज़ी को शिफ़ारिश की सआदत[5] न मिली
नाउमेदी ने कहा ज़हर है इफ़लास[6] का हल
वो जो नीलाम सनद ज़हर की क़ीमत न मिली

एक वो देश भी है मुफ़्त है तालीम[7] जहाँ
जिस जगह इल्म का ब्योपार नहीं हो सकता
इल्म दरयाओं के मानिन्द बहा करता है
जिसकी फ़ैयाज़ी[8] से इनकार नहीं हो सकता

मैं उसी देश की अज़मत[9] प बनाता हूँ गीत
और उन गीतों से शमशीर[10] बना लेता हूँ
जिन उजड़ते हुये बाग़ों में हुआ मेरा गुज़र
उन गुलिस्तानों की तक़दीर बना देता हूँ

इल्म[11] दरकार है टैगोर के बेटों के लिये
इल्म इक़बाल के फ़रज़न्दों[12] का हक़ है साथी
छीन लो इल्म को सरमाये[13] के दल्लालों से
आज से अपना यही एक सबक़ है साथी

भारत से अलग हट कर पाकिस्तान की दशा देखिये तो वहाँ की हालत पर भी मानवता रोती प्रतीत होती है। प्रतिबन्धों के अनुचित अतिरेक में साधारण जन इस प्रकार बँध गया है कि न वह अपनी आवाज़ मुँह से निकाल सकता है और न क़लम से। विद्यार्थी वर्ग वहाँ विशेषतया प्रताड़ित स्थिति में है परन्तु उनके खून की गर्मी में कमी नहीं। वे अनुचित व्यवहारों का विरोध बड़े साहस के साथ करते हैं। इसके लिये उन्हें गोली भी सहन करनी पड़ती है, अपना प्रिय प्राण भी निछावर करना पड़ता है किन्तु वे पीछे

(१) कोठे व दरवाज़े (२) ज्ञान (३) शोध की स्वतन्त्रता (४) पाठशाला (५) स्वभाग्य (६) ग़रीबी (७) विद्या (८) दानशीलता (९) महानता (१०) खड्ग (११) विद्या (१२) सुपुत्रों (१३) पूँजीवाद।

नहीं हटते। उर्दू कवि पाकिस्तान सरकार के अत्याचार से दुखी हैं। वे विद्यार्थी-आन्दोलनों से सहानुभूति रखते हैं और उन्हें 'सुब्ह के फूलों का नूर' समझकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हसन शहीर कहते हैं—

हसीन चाँद के माथे प एक लौ की तरह
हयात[1] एक नये अह्द[2] की ज़िया[3] लेकर
कुछ ऐसी एक तमन्ना[4] के गीत गाती है
लहक रहा है मेरे आँसुओं में दिल का दाग़
ख़मोश गीतों में हल्की-सी मुसकुराहट है
वो एक रंग छलकता है आसमानों में
जगा रहा है मेरे दर्द का दिया शायद
इक आइना-सा कुछ आवाज़ में लिये है कोई
लहू में सुब्ह के फूलों का नूर[5] होता है
दिलों में होती है तारों की मुसकुराहट भी

(५) उर्दू :—स्वतंत्रता के साथ बढ़ने वाली साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों ने जहाँ जीवन के बहुत से मूल्य नष्ट कर डाले वहाँ भाषा पर भी विशेष प्रभाव डाला। वे लोग जो काँग्रेस मे रहते हुये भी साम्प्रदायिकता के विष से परिपूर्ण थे और अपने किसी उद्देश्य के कारण उसको प्रकट न करते थे, भाषा के नाम पर फूट बहे। उर्दू को केवल मुसलमानों की ज़बान कहा गया और इसके प्रेमियों को साम्प्रदायिक! भारत का अपना विधान बनाने के पूर्व ही इसे कालेजों, स्कूलों और दफ़्तरों के बाहर कर दिया गया। प्रारम्भिक शिक्षा में उर्दू को कोई स्थान न देते हुये उच्च कक्षाओं का पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया कि विद्यार्थी अंग्रेज़ी और उर्दू में केवल एक भाषा पढ़ सकता। राजकीय कार्यालयों में उसे १८३५ ई० से जो सरकारी भाषा की स्थिति मिली हुई थी, समाप्त कर दी गई। ऐसी स्थिति में जब भारत ने अपना विधान बनाया तो उर्दू को वह सम्मान न मिल सका जिसकी वह अधिकारिणी थी। विधान ने उसे भारत की चौदह भाषाओं में तो ज़रूर मान लिया परन्तु उसके लिये किसी क्षेत्र का निर्धारण नहीं किया गया। उर्दू वालों ने उर्दू के विरोध पर आवाज़ उठाई तो साम्प्रदायिक दलों में खलबली मच गई। चारों ओर से विभिन्न प्रकार की आवाज़ें आने लगीं—उर्दू मुस्लिम लीग का

(१) जीवन (२) प्रतिज्ञा (३) रोशनी (४) अभिलाषा (५) रोशनी।

एक रूप है, उर्दू साम्प्रदायिकता का उदाहरण है, उर्दू में कोई आदर योग्य साहित्य नहीं है, उर्दू भारत के किसी भी भाग में नहीं बोली जाती है और न समझी जाती है, इत्यादि। उर्दू के प्रेमियों के लिये ये आरोप बड़े दुखदायी थे परन्तु उन्होंने अपना संकल्प बनाये रखा और अपना आन्दोलन चलाते रहे। एक वर्ष से कम अवधि में उत्तर प्रदेश के बीस लाख व्यक्तियों ने जिनमें विभिन्न जातियों के लोग थे, एक अपील अपने हस्ताक्षर और पते के साथ, भारत के राष्ट्रपति की सेवा में प्रस्तुत कर दी कि उनकी मातृ-भाषा उर्दू है। जनता के इस निवेदन पर आज तक कोई आदेश नहीं दिया गया है। यद्यपि भारत के लोकप्रिय प्रधान मंत्री बराबर अपने भाषणों में कहते रहते हैं कि कुछ प्रांतों की सरकारों ने उर्दू के साथ उचित व्यवहार नहीं किया है। थोड़े दिनों से इस प्रवंचना में कमी आ गई है। भारत सरकार ने कुछ रुपया उर्दू के लेखकों को भी देना शुरू कर दिया है। आंध्र सरकार ने इसे स्थानीय भाषा मानकर प्रोत्साहन दिया है। उत्तर प्रदेश सरकार ने राजकीय कार्यों में उर्दू के प्रयोग के सम्बन्ध में जाँच भी कराई है। दूसरे प्रान्तों में भी इसी प्रकार इसको प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

पाकिस्तान में भी उर्दू को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है जो भारत में हिन्दी के लिये है। भारत की साहित्य-एकेडमी की तरह वहाँ कोई संस्था भी नहीं है जो उर्दू के लेखकों को प्रोत्साहन दे। पाकिस्तान में उर्दू के प्रसार के लिये भी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है बल्कि उलटे प्रान्तीयता का विष चारों ओर फैल रहा है।

उर्दू के कवियों का भारत व पाक की सरकारों के इस व्यवहार से चिंतित होना स्वाभाविक है। उन्हें बड़ा दुख है कि हमारी ज़बान, जो हमारे स्वतंत्रता-आन्दोलन में राष्ट्र की एक महान सहायिका थी, उसको निराश्रित कर के बहिष्कृत कर दिया गया। सरदार जाफ़री की कविता 'उर्दू' उसके प्रेमियों के भावों का सुन्दर आलेखन करती है—

हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीनो-दिलकश ज़बान उर्दू
ज़बान वो धुल के जिसको गंगा के जल से पाकीज़गी मिली है
अवध की ठंडी हवा के झोंको से जिसके दिल की कली खिली है

जो शेरो-नग़मा के ख़ुल्दज़ारों[1] में आज कोयल-सी कूकती है
इसी ज़बाँ में हमारे बचपन ने माओं से लोरियाँ सुनी हैं
जवान होकर इसी ज़बाँ में कहानियाँ इश्क़ ने कही हैं
इसी ज़बाँ के चमकते हीरों से इल्म की झोलियाँ भरी हैं
इसी जबाँ से वतन के होंटों ने नाराए-इनक़लाब पाया
इसी से अंग्रेज़ हुक्मरानों ने ख़ुदसरी का जवाब पाया
कोई बताओ वो कौन-सा मोड़ है जहाँ हम झिझक गये हैं
वो कौन-सी रज़मगाह[2] है जिसमें अह्ले-उर्दू[3] दुबक गये हैं
वो हम नहीं हैं जो बढ के मैदाँ में आये हों और ठिठक गये हैं
कहा है किसने हम अपने प्यारे वतन में भी बेवतन रहेंगे
ज़बान छिन जायेगी हमारे दहन[4] से हम बेसोख़न रहेंगे
ये कैसी बादे-बहार[5] है जिसमें शाख़े-उर्दू न फल सकेगी
हमें ये हक़ है हम अपनी ख़ाके-वतन से अपना चमन सजायें
हमारी है शाख़े-गुल तो फिर क्यों न इस पर हम आशियाँ बनायें
कहाँ हो मतवालो आओ ! बज़्में-वतन में है इमतेहाँ हमारा
हमारी उर्दू रहेगी बाक़ी अगर है हिन्दोस्ताँ हमारा
चले हैं गंगो-जमन की वादी में हम हवाए-बहार बनकर
हिमालिया से उतर रहे हैं तरानए-आबशार[6] बनकर
रवाँ है हिन्दोस्ताँ की रग-रग में ख़ून की सुर्ख़ धार बनकर

उर्दू के मुख़ालिफ़ों का एक गरोह कहता है कि यह भारत के अल्पसंख्यक मुसलमानों की भाषा है। इसमें भारतीयता नहीं है। मुसलमानों की अरबी-ईरानी संस्कृति इसकी आत्मा में समाविष्ट है। जगन्नाथ 'आज़ाद' इस प्रकार के आक्षेप पर दुख प्रकट करते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि 'सरशार', 'महरूम' 'फ़िराक़' और 'चकबस्त' की ज़बान को मुसलमानों की भाषा कहने का साहस कैसे किया जाता है। वे समझाते हैं कि उर्दू को मिटाने का अर्थ यह है कि हमें अपनी उस संस्कृति से प्यार नहीं है जो हिन्दू-मुसलिम एकता से अस्तित्व में आई है—

'सरशार' का हुस्ने-दास्ताँ है उर्दू
'महरूमो', 'फ़िराक़' का बयाँ है उर्दू

(१) स्वर्ग उपवन (२) रणक्षेत्र (३) उर्दू वाले (४) मुँह (५) बहार की हवा (६) जल प्रपात का संगीत।

उर्दू को मलोच्छ समझते हो तुम
'चकबस्तो', 'सुरूर' की ज़बाँ है उर्दू

ए अहले-वतन[1] ! ये दास्ताँ अपनी है
अपनी है ये रूदादे-फ़ोग़ाँ[2] अपनी है
क्यों इसको मिटा रहे हो दीवानों !
ग़ैरों की नहीं है ये ज़बाँ अपनी है

उर्दू से ये फ़ोक़दाने-मोहब्बत[3] क्यों है
अपनी तहज़ीब से अदावत क्यों है
ये हिन्द का फ़ख्र ग़ालिबो-दाग़ो-अनीस
फिर उनकी ज़बान से ये नफ़रत क्यों है

उर्दू है फ़क़त ज़बाँ कोहसार[4] नहीं
इक मौजे-शमीम[5] है, ये तलवार नहीं
मुश्किल नहीं उर्दू का मिटाना, लेकिन
क्या अपने तमद्दुन[6] से तुम्हें प्यार नहीं

फूलों को न पैरों से लताड़ो, सँभलो
पौदों को न इस तरह उखाड़ो, सँभलो
इक बार जो उजड़ा तो न फिर फूलेगा
यूँ अपना गुलसिताँ न उजाड़ो, सँभलो

उर्दू की मुख़ालफ़त कई प्रकार से की गई। उसकी विषय-सामग्री, शैली और उद्गार में निन्दा के पहलू ढूँढ़ निकाले गये। कुछ लोगों ने इसकी लिपि को अहितकर बताया। मानों स्वतंत्रता के बाद उर्दू हर एक तरह से लांछनीय दीखने लगी। उर्दू वालों ने इस वातावरण को बड़े धीरज से सहन किया। धीरे-धीरे वातावरण बदला। आले अहमद 'सुरूर' उर्दू वालों के संकल्प को 'अज़्मे-कोहकनी' कहते हैं—

ये सोचते थे चमन में बहार आते ही
हमारे फूलों से महकेंगे बामो-दर कितने

(१) देशवासी (२) दुख की कथा (३) प्रेम की कमी (४) पहाड़ (५) खुशबूभरी हवा (६) संस्कृति।

हमारी तानों प झूमेंगे कितने दिल वाले
हमारी क़दमों से जागेंगे रह गुज़र कितने

लहू दिया है हर एक नोके-ख़ार को हमने
ख़िज़ाँ के दौर में पूजा बहार को हमने
जो ज़ोमे-हुस्न[१] में अहले-वफ़ा[२] को भूल गया
सिखाये नाज़ो-अदा उस निगार[३] को हमने

मोवर्रिख़[४] अपने ही ज़र्री वरक को भूल गये
मोअल्लिम[५] आज के कल के सबक़ को भूल गये
जो उसके नाम की माला जपा ही करते थे
हुकूमत आई तो उर्दू के हक़ को भूल गये

ये क़हर कौन सुनेगा कि अपनी महफिल में
हुजूमे-शौक़[६] न हो, लुत्फ़े-दास्ताँ[७] न रहे
दिलों में साग़रे-'सरशार' का फ़ोग़ाँ न रहे
लबों प ग़ालिबो-इक़बाल की ज़बाँ न रहे

उभरने दो अभी मौजों का साज़े-ज़ेर-लबाँ[८]
ये नक़्शे-इशरते-साहिल[९] मिटा ही देता है
बला से रेत में होता है, जज़्ब होने दो
कि क़तरा-क़तरा-लहू गुल खिला ही देता है

उर्दू के शाएरों में कितनों ने ही इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये है। उदाहरण के लिये फ़ज़ा इब्न-फ़ैज़ी की 'ए मेरी ज़बान 'उर्दू', 'शाद' आरिफ़ी की 'ये हमारी जबान है प्यारे', नज़ीर बनारसी की 'मतालबए-उर्दू', शहज़ाद मासूमी की 'उर्दू की कहानी', अर्जुम आज़मी की 'उर्दू' इत्यादि कवितायें देखी जा सकती है।

(६) पंचवर्षीय योजनायें :—भारत के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में पंचवर्षीय योजनाओं को विशेष स्थान प्राप्त है। स्वतंत्रता के साथ ही सरकार ने अध्ययन करके यह अनुमान लगा लिया था कि इतने दिनों की पराधीनता

(१) सुन्दरता का गर्व (२) वफ़ा वालों (३) प्रिय (४) इतिहासकार (५) शिक्षक (६) इच्छाओं के झुरमुट (७) कथा का आनन्द (८) मद्धिम संगीत (९) तट के आनन्द के चिह्न।

भारत को अवनति के इतने गहरे खड्ड में गिरा चुकी है कि बिना संगठित प्रयास के संसार के अन्य देशों के स्तर पर अपने देश का आना असम्भव दीखता है। इसके लिये प्रथम पंचवर्षीय योजना जुलाई १९५१ में मसविदे के रूप में और १९५२ में अपने अन्तिम रूप में प्रकाश में आई। यह योजना भारतीय कृषि को विशेषकर प्रोत्साहन देने के लिये थी। भारत ने अपनी दूसरी पंचवर्षीय योजना १९५७ से प्रारंभ की। इस योजना में प्रथम योजना की त्रुटियों के सुधार के साथ उद्योगात्मक रूप मे देश को प्रगति की ओर ले जाने का प्रयास था। सरकार को इस सम्बन्ध में सफलता भी मिली है और आशा है कि आगामी वर्षों मे हमारे लक्ष्यों की पूर्ति भी अवश्य हो जायेगी।

उर्दू कवियों ने राष्ट्र की प्रगति पर प्रसन्नता प्रकट करने के अलावा उसे प्रोत्साहन भी दिया। जगन्नाथ 'आज़ाद' ने अपनी कविता 'हमारे दस साल' में पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा करते हुये उसे देश की सफलता का प्रमाण कहा है। यहिया आज़मी को भी पंचवर्षीय योजनाओं के साथ 'मुसतक़बिल का हिन्दोस्तान' बहुत आशाप्रद दीखता है—

फूटेंगे चश्में ज़िन्दगानी के मनारे-बर्क़[1] से
पानी के धारे हर तरफ़ दौड़ेंगे तारे-बर्क़ से

इसी प्रकार फ़रीद तनवीर भी भारत की प्रगति से प्रसन्न हैं। उन्हें 'नये प्लान' की छाया में जीवन के नये आदर्शों का निर्माण होता दीखता है—

हमारे दम से भिलाई मे ज़िन्दगानी है
हमारे अज़्म[2] की हीरा नई कहानी है
हमारे ख़ून से नंगल में इक रवानी है
नये प्लान से दुनिया सजा रहे हैं हम
'नई हयात के नक़्शे बना रहे हैं हम'
रविश-रविश प नये फूल हम खिलायेंगे
क़दम-क़दम प नई जन्नतें बनायेंगे
नये उजालों से दुनिया को जगमगायेंगे
अभी तो ग़म के अँधेरे मिटा रहे हैं हम
'नई हयात के नक़्शे बना रहे हैं हम'

---

(१) विद्युत-स्तंभ (२) संकल्प।

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य देश की एक चौथाई ग्रामीण जनता को सामुदायिक विकास योजना (Community Development Projects) के अन्तर्गत लाना था। सर्वोदयी केन्द्रों, सेवाग्राम और इटावा-पाइलट योजना में जो प्रयोग हुये उनके अनुभवों से लाभ उठाते हुये भारत के ग्रामीण जीवन के पुनर्संस्करण की ओर एक नया क़दम उठाया गया। इस महान कार्य के लिये ५५ परियोजनाओं का उद्‌घाटन २ अक्टूबर, १९५२ को गाँधी जयन्ती के अवसर पर हुआ। गाँव की प्रगति में ही देश का कल्याण है! उर्दू कवि भी सरकार की इस शुभ योजना से प्रभावित हुये और उन्होंने अपनी कविताओं में ग्रामीण जनता में फैले हुये उद्‌गार को योजना की सफलता का परिणाम समझा। उन्होंने उन लोगों की निन्दा भी की जो केवल बातें करते हैं और अपने देश को उन्नति के शिखर पर लेजाने के बजाय दूसरे देश का गुणगान करते हैं। गोपी नाथ 'अम्न' अपनी कविता 'कम्योनिटी परोजेक्ट' में उन्हें समझाते है--

देहात में तामीर के जज़्बे को ज़रा देख
आ और ज़रा हिन्दे-हक़ीक़ी[1] की फ़ज़ा देख
ए नारा-ज़न[2], ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न आ देख
ज़रदार[3] हैं, कंगाल है, छोटे हैं, बड़े हैं
सब जज़्बए-तामीर[4] से सरशार[5] खड़े हैं
ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न आ देख
बातों से नहीं हाथों से होता है यहाँ काम
इस दौर में होने का है बातों से कहाँ काम
ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न आ देख
है तेरी ग़रज़ रोज़ नये फ़ितने[6] उठाना
ये चाहते हैं गाँव को गुलज़ार बनाना
ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न आ देख
क्यों ग़ैर-मुमालिक[7] का परस्तार[8] हुआ है
नज़रें तो उठा देख तेरे मुल्क में क्या है
ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न, ए नारा-ज़न आ देख

(१) सच्चे हिन्दुस्तान (२) केवल ललकारने वाला (३) धनवान (४) रचनात्मक उद्‌गार (५) विपूर्ण। (६) उपद्रव (७) अन्य देशों (८) पुजारी।

भाकड़ा नंगल योजना भारत की पंचवर्षीय योजना में एक विशेष महत्त्व रखती है। स्वतंत्रता के पूर्व भी लगभग पचास वर्षों से सतलज नदी पर बाँध बाँधने की योजनायें बनाई जा रही थीं। इस योजना को स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय सरकार द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो गई। पंजाब में यह बाँध ऊपर से पचास मील दूर उस स्थान पर बनाया गया है जहाँ सतलज हिमालय (नैनी देवी) को काटती हुई आगे बहती है। यह योजना अपने पाँच भागों—भाकड़ा बाँध, नंगल बाँध, नगल हाइडल चैनल, नंगल पावर हाऊस और भाकड़ा नहर पर आधारित है। योजना का उद्घाटन जुलाई १९५४ में प्रधान-मंत्री जवाहर लाल नेहरु ने यह कहते हुये किया कि यह भारत का भाग्य है। इसके द्वारा भारत प्रगति की ओर कदम उठायेगा। उर्दू कवियों ने भी भाकड़ा नंगल को देश की प्रगति का प्रतीक मानकर प्रसन्नता प्रकट की। उदाहरण के लिये जगन्नाथ 'आज़ाद' की कविता 'भाकड़ा नंगल' देखी जा सकती है —

'आज़ाद' ! निगाहों में जो है ख़ित्ताए-नंगल[१]
कल था यही ख़ित्ता कहीं सहरा, कहीं जंगल
हिम्मत के तुफ़ैल[२] आज इसी जंगल में है मंगल

मिट्टी की चट्टानें थीं कि पत्थर की चट्टानें
जब उन प तराज़ू हुईं हिम्मत की सनानें
कुछ और ही नक़्शा था ये मानें कि न मानें

फ़ौलाद है या रेत है, पत्थर है कि पानी
साहिल का बुढ़ापा है कि मौजों की जवानी
इन सब की ज़बानों प है फ़रदा[३] की कहानी

ये ख़ाक कि इनसान की हिम्मत की है रूदाद[४]
ये ख़ाक कि इक कैफ़े-मोहब्बत की है रूदाद
साथ इसके यही ख़ाक शहादत की है रूदाद

पैदा हो तेरी ख़ाक में ख़ासीयते-अकसीर[५] !
किरदार तेरा महरे-मुनव्वर[६] की हो तनवीर[७] !
दुनिया में हो इक मायाए-रहमत[८] तेरी तामीर[९] !

(१) नगांज-क्षेत्र (२) बदले (३) कल (४) वृतान्त (५) तुरन्त स्वस्थ करने की विशेषता (६) चमकते हुये सूर्य (७) प्रकाश (८) सुखमय (९) रचना।

(७) काशमीर पर आक्रमण :—अंग्रेज़ी सरकार की कूटनीति और हमारे देश की अतिउदारता के कारण आज काशमीर की समस्या इतनी भयंकर बन गई है। भारत का बँटवारा जिस अँग्रेजी नीति के कारण हुआ, काशमीर की समस्या भी उसी से सम्बन्धित है। इसका उत्तरदायित्व किसी हद तक विभाजन-आधार पर भी है। अंग्रेज़ों ने जाते-जाते ऐसी कूटनीति चली कि किन्हीं कारणों से काशमीर दुविधा में ही पड़ा रहा। पाकिस्तान ऐसे अवसर की खोज में था। उसने काशमीर पर अपना हक़ जताना शुरु कर दिया और इस प्रकार विश्व-वातावरण को खंडित करने की चेष्टा की।

भारत और काशमीर का सम्बन्ध हिमालय की तरह दृढ़ है। भग्नावशेष, लोकगीतों, धार्मिक कथाओं और एतिहासिक घटनाओं से इस सम्बन्ध की अवधि मसीह से ढाई सौ साल पूर्व मालूम होती है। स्वतंत्रता आन्दोलन तक काशमीर और भारत के सम्बन्ध में कोई दो मत न थे किन्तु स्वतंत्रता के बाद अक्तूबर सन् १९४७ ई० में जब पाकिस्तान ने रियासते जम्मू-काशमीर पर आक्रमण कर दिया तो इसकी स्थिति बदल गई। काशमीर मौत के मुँह में जाने से चिल्लाया। नेशनल कान्फ्रेंस के उस समय के नेता शैख़ अबदुल्ला स्वयं दिल्ली आये और भारत सरकार से सहायता चाही। भारत ने उनकी विनती मान ली और उचित सहायता से आक्रामकों के दाँत खट्टे कर दिये। मार्च १९४८ ई० में नेशनल कान्फ्रेंस ने अपने एक कनवेंशन के प्रस्तावानुसार भारत से संहित कर लिया और अब वह भारत का एक अविभाज्य अंग है।

पाकिस्तान अपने आक्रमण द्वारा काशमीर के कुछ भाग पर अधिकार पा गया था। वह भाग आज भी 'आज़ाद काशमीर' के नाम से उसके अधिकार में है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की ढीली नीति के कारण काशमीर का टूटा हुआ भाग उसे वापस नहीं मिल सका है। इस बीच में पाकिस्तान ने कुछ राजनीतिक शक्तियों के सैनिक संगठनों मे सम्मिलित होकर अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को गम्भीर बना दिया है। वह काशमीर की समस्या को जटिल रखने के लिए बराबर इस विषय को उछाला करता है परन्तु भारत सरकार ने निर्णय के साथ तटस्थ उत्तर दे दिया है कि वह किसी भी दबाव से काशमीर के बारे में कोई ऐसा क़दम नहीं उठा सकती जो काशमीर और भारत की जनता के हितों के विरुद्ध हो।

काश्मीर अपनी सुन्दरता एवं मनोहरता के कारण प्रारम्भ से साहित्य का विषय रहा है। उर्दू के बहुत से कवि भी काश्मीर के रहने वाले हैं। उन्हें अपनी मातृभूमि से श्रद्धा है। वे जी खोल कर काश्मीर के गुन बखानते हैं। स्वतंत्रता के बाद से इसे राजनीतिक महत्व भी प्राप्त हो गया है। इसलिये अब जो नज़्में कही जाती हैं, उनमें पाकिस्तान के आक्रमण की भी निन्दा की जाती है। मख़्मूर सईदी 'ए वादिए-कश्मीर' में कहते हैं—

महके हुये रंगीने-चमन देख रहा हूँ
फ़िरदौस-नज़र[1] दश्तो-दमन[2] देख रहा हूँ
हर सम्त बहारों की फबन देख रहा हूँ
नज़रों में समाई है तेरी हुस्न की तसवीर
ए वादिए-कश्मीर

जन्नत की फ़ज़ा भी इसे बदला नहीं सकती
जन्नत में भी रहकर ये सुकूँ पा नहीं सकती
अब और किसी सम्त नज़र जा नहीं सकती
है हुस्न तेरा पाए-नज़र[3] के लिये ज़ंजीर
ए वादिए-कश्मीर

सदियों तेरा शीराज़ा[4] परीशाँ भी रहा है
ये तेरा चमन बर्क़-बदामाँ[5] भी रहा है
ये ख़ुल्दे-बशर[6], दोज़ख़े-इनसाँ[7] भी रहा है
हर फूल जो शोला था तो हर शाख़ थी शमशीर
ए वादिए-कश्मीर

ए वादिए-कश्मीर मुझे फिर वही डर है
इक शोला-ख़ू[8] इफ़रीत[9] की फिर तुझ प नज़र है
फिर तेरे बहारों में वही रक़्से-शरर[10] है
कर ले न कोई देवे-ख़िज़ाँ[11] फिर तेरी तसख़ीर[12]
ए वादिए-कश्मीर

(१) स्वर्ग-दृष्टि (२) जंगल व चमन (३) नज़र के पाँव (४) प्रबन्ध (५) तड़ित पूर्ण (६) मनुष्यों का स्वर्ग (७) मनुष्यों का नरक (८) जलाने वाला (९) असुर (१०) अग्नि नृत्य (११) नाशक दानव (१२) पराजय।

छाई हैं तेरे गिर्द जो ये सुर्ख हवायें
इनमे, ये जहाँ बरसी हैं, बरसी है बलायें
बढकर ये उफ़ुक़ को तेरे धुँधलाने न पाये
हो ख़ाबे-हवस[1] उनका न शरमिन्द ए-तदबीर[2]
ए वादिए-कशमीर

भारत और पाकिस्तान के राजनीतिक मत-भेद में साम्राज्यवादी शक्तियों ा भी हाथ है। उन्होंने काशमीर को इसके लिये अपना यंत्र बना रखा है। ाशमीर पर उनकी ललचाई हुई नज़र उसे युद्ध-मोरचा बनाने के विचार से । उर्दू कवि उनके मनोभाव को अच्छी तरह से समझता है। सरदार ाफ़री 'पयामे-कशमीर' में चेतावनी देते हैं—

सुनादे कोई पयामे-कशमीर सामराजी मुदब्बिरों[3] को
तुम्हारी महफ़िल में राहज़न-पेशा[4], जंग-जू, राहबर बहुत हैं
हमें न ललचाओ ख़ूँ में लुथड़े ज़लील डालर का मुँह दिखाकर
बहुत हैं आँसू हमारे दिल में, हथेलियों में गोहर बहुत हैं
हम अपनी मेहनत से आप अपने चमन की क़िसमत सँवार लेंगे
बहुत है बाज़ू में ज़ोर, जुंबिश में उँगलियों की हुनर बहुत है

क़तील शफ़ाई पाकिस्तान के कवि हैं परन्तु काशमीर के विषय में उनका ी मत इसी प्रकार है। उन्होंने अपनी कविता 'काशमीर' मे आपसी द्वेष में ाशमीर के नष्टीकरण की निन्दा की है—

आग और ख़ून के संगम प खड़ी हूँ कब से
अपने सहमे हुये माहौल का लाशा बन कर
जैसे हालात के बिफरे हुये तूफ़ानों में
रह गई हो मेरी तौक़ीर[5] तमाशा बन कर

मेरे बाग़ात, मेरी डल, मेरे मीठे झरने
ज़ुल्म की गर्म हवाओं से झुलस जायेंगे
मुझको महसूस ये होता है कि मोहलत पाकर
हिर्स के साँप मेरे हुस्न को डस जायेंगे

---

(१) उद्दीपक स्वप्न (२) साकार (३) नीतिज्ञों (४) डाकू पेशा (५) आदर।

मैं हूँ मुख़तार जिसे चाहूँ बनाऊँ अपना
जब कि दुनिया में मसावात का दौर आया है
मेरे जोबन प हिरिसकार[1] निगाहें न रुकीं
मैंने सीने में धड़कता हुआ दिल पाया है

आधुनिक युग में काश्मीर पर कही गई सभी कविताओं में राजनीतिक उद्देश्य नहीं। उसकी सुन्दरता एवं पावनता का बखान भी कविताओं में किया जाता है। इस सम्बन्ध में 'जोश' मलीहाबादी की 'फ़ज़ाए-काश्मीर', साग़र निज़ामी की 'कश्मीर', अर्श मलसियानी की 'निगारों का देस', जगन्नाथ 'आज़ाद' की 'ए वादिए-कश्मीर' यहिया आज़्मी की 'जन्नते-रंग व बू' इत्यादि कवितायें देखी जा सकती हैं।

(८) चीन का आक्रमण :—चीन का भारत पर आक्रमण उसके विश्वासघात, नीचता, अधिनायकत्व और मित्रता के पीछे शत्रुता का घृणात्मक उदाहरण है। चीन ने भारत पर आक्रमण करके विश्वशान्ति को घायल करने की कोशिश की है जिसके लिये उसकी निन्दा संसार के अधिकांश सरकारों ने की है पहली बार साम्यवादी राज्यों ने भी चीन के प्रसारवाद को धिक्कारा है कि वह साम्यवाद के लिये एक लांछन है।

वस्तुतः इस आक्रमण की पृष्ठभूमि में दो प्रकार की विचारधारायें काम कर रही थी। पहली बात तो यह थी कि चीन और रूस में सैद्धांतिक विरोध चल रहा था। क्यूबा में रूस ने अपने हथियारों भरे जहाज़ को आगे बढने से मना कर दिया क्योंकि वह अपने विचार से किसी भी रूप में, संसार की शान्ति को भंग नहीं करना चाहता था। चीन चाहता था कि रूस की इस नीति का खण्डन करे ताकि समस्त संसार के समक्ष उसकी प्रभुता तो जमें ही साथ ही उसे उपनिवेश भी मिल जाय। दूसरा ध्येय चीन का यह था कि भारत पर आक्रमण करके वह एशिया के समस्त छोटी-छोटी राष्ट्रों को आतंकित कर दे। चीन की यह विस्तारवादी नीति ही थी जिसने उसे हिमालय पर आक्रमण करने के लिये विवश किया था।

भारत पर चीन ने आक्रमण करके अपना एक निकट सम्बन्धी मित्र खो दिया है जो परस्पर उसके पक्ष में कार्य कर रहा था। उसने चीन की साम्य-

१ ईर्ष्यात्मक

वादी सरकार का अस्तित्व स्वीकार किया और कोशिश की कि उसे संयुक्त राष्ट्र सघ का सदस्य स्वीकार कर लिया जाय। तिब्बत से बिगाड़ के समय चीन के लाभ को ध्यान में रखते हुये भारत ने संधि कराई। तिब्बत में भारत ने अपने डाक, तार, टेलीफून और रेस्ट हाउस इत्यादि मामूली दाम पर चीन सरकार को देदिये और अपने शान्तिपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर चीन से 'पंचशील' के आदर्शों पर मित्रता बढ़ाने की कोशिश की। चीन भी भारत को मित्रता का भ्रम देता रहा परन्तु उसके मन का खोट जल्द ही ज़ाहिर हो गया। १६५४ ई० में जब प्रधानमंत्री नेहरू चीन गये तो उनका ध्यान ऐसे नक़्शों की ओर आकृष्ट हुआ जिनमें भारत के कुछ भागों को चीन का भाग बताया गया था। उन्होंने चीन के प्रधानमंत्री से शिकायत की तो उन्होंने इसके रोकने का वादा किया। फिर उलटे १७ जुलाई १६५४ को उत्तर-प्रदेश के कुछ भाग पर एतराज़ कर दिया। १६५६ में चीन के प्रधानमंत्री, भारत आये तो उन्होंने कहा है कि उनकी सरकार मैकमोहन लाइन को सीमा मानती है जो १६१३-१४ ई० से सर्वसाधारण की स्वीकृति प्राप्त किये है। मैकमोहन लाइन की संधि पर भारत, चीन और तिब्बत के हस्ताक्षर थे। भारत सरकार ने उनके कथन को पूर्ण मान्यता प्रदान की परन्तु ८ सितम्बर १६५६ के पत्र में वे अपने इस वचन से भी डिग गये और भारत को लिख दिया कि उनकी सरकार सीमा के सम्बन्ध में किसी संधि को नही मानती और भारत के पचास हज़ार वर्ग मील पर अपना दावा कर दिया। भारत ने इस विश्वासघात के बाद भी मित्रभाव और शान्ति से झगड़ों को निपटाना चाहा परन्तु चीन की शत्रुता बढ़ती गई और उसने धीरे-धीरे सैनिक संगठन करके २० अक्टूबर १६६२ को भारत पर अपना निर्लज्ज आक्रमण कर दिया। भारत की सेनायें इस हमले के लिये तैयार न थीं लेकिन उन्होंने वीरता से मुक़ाबिला किया यहाँ तक कि 'युद्ध-विराम' (Cease Fire) का आडम्बर रचा कर चीनियों को भारत की सीमा से भागना पड़ा।

चीन के इस आक्रमण से भारत चौंक उठा। बेशरम दुशमन सिर पर खड़ा था। जनता ने तन, मन, धन से सहयोग दिया। उर्दू कवियों ने भी अपने कर्त्तव्य को अभीष्ट रखते हुये उद्‌गारपूर्ण कविताओं से भारतीय सेना के जवानों को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने जनसाधारण के हृदय में भी अपनी 'ललकार' से पुरुषार्थ की भावना को उद्‌गारित किया और ऐसी प्रभावशील कवितायें लिखीं जो जनता के मन की वाणी बन गईं। 'साहिर' लुध्यानवी कहते हैं—

वतन की आबरू ख़तरे में है होशियार हो जाओ
हमारे इम्तेहाँ का वक़्त है तैयार हो जाओ

हमारी सरहदों पर ख़ून बहता है जवानों का
हुआ जाता है दिल छलनी हिमालय की चटानों का
उठो रुख़ फेर दो दुश्मन की तोपों के दहाने[1] का
वतन की सरहदों पर आहनी दीवार हो जाओ

वो जिनको सादगी में हमने आँखों पर बिठाया था
वो जिनको भाई कहकर हमने सीने से लगाया था
वो जिनकी गरदनों में हार बाहों का पहनाया था
अब उनकी गरदनों के वास्ते तलवार हो जाओ

न हम इस वक़्त हिन्दू हैं, न मुसलिम हैं, न ईसाई
अगर कुछ हैं, तो हैं इस देस, इस धरती के शैदाई[2]
इसी को ज़िन्दगी देंगे इसी से ज़िन्दगी पाई
लहू के रंग से लिक्खा हुआ इकरार हो जाओ

ख़बर रखना कोई ग़द्दार साज़िश कर नहीं पाये
नज़र रखना कोई ज़ालिम तिजोरी भर नहीं पाये
हमारी क़ौम पर तारीख़ तोहमत धर नहीं पाये
वतन दुश्मन दरिन्दों के लिये ललकार हो जाओ

चीन के आक्रमण से देश की रक्षा करने के लिये पूरे भारत में बड़ा जोश फैल गया था। प्रत्येक भारतवासी यथाशक्ति सहयोग देने को तैयार था। कोई अपनी सेवायें अर्पित कर रहा था, कोई अपने धन से दुश्मन का मुकाबिला करने को तैयार था, कोई अपने शरीर के रक़्त से घायलों की सहायत कर रहा था। स्त्रियाँ ऊनी कपड़े और अपने ज़ेवरों से जवानों की सहायत के लिये तैयार थी। भारत के समस्त राजनीतिक दल सरकार को सहयोग दे रहे थे। राही मासूम रज़ा इसे 'विष्णु अवतार' समझते हैं कि चीनियों से लड़ने के लिये विष्णु स्वयं तैयार हैं और पूरा भारत विष्णु की तरह महान है—

(१) मुँह (२) प्रेमी।

जिन राहों से गौतम का पैग़ाम गया था
उन राहों से
ये तोपें बन्दूक़ें लेकर कौन आता है
जिन राहों से जीवन का संगीत गया था
उन राहों से
मरते हुये इनसानों की चीख़ें लेकर कौन आता है
जिन राहों से
हुस्नो-हक़ीक़त[1] की ख़ुशबू भेजी थी हमने
उन राहों से
जलते हुये बारूद की बू की लपटन लेकर कौन आता है
आज हिमालय का दिल कितना दुखता होगा
प्यार की सदियाँ
नीम-बरहना[2]
बाल बिखेरे
नंगे पाँव हर इक घाटी मे घूम रही हैं
हर घाटी से पूछ रही हैं
ये सब क्या है ?!
ये सब क्यों है ?!

खेत उठे
कलपुर्ज़े जागे
लफ़्ज़ों ने अँगडाई ली
हथियार उठाया
गंगो-जमन ने
कावेरी ने
और झेलम ने
हमने आँखें खोलीं
विष्नू ने अपने सोये हुये डमरू को जगाया
विष्नू ने फिर इस कलयुग में

---

(१) सत्य एव सौन्दर्य (२) अर्द्ध-नग्न ।

एक नया औतार लिया
और माशी वर्दी पहन के निकला
लाखों लाख
करोड़ों विष्नू
हिन्दू-मुसलिम
सिख-ईसाई
लाखों लाख
करोड़ों विष्नू
कन्धों पर बन्दूक़ लिये
हर बस्ती से
हर शहर से निकले
हिन्दुस्तानी फ़ौज फ़क़त इक फ़ौज नहीं है
इस कलयुग में
विष्नू ने ये एक नया औतार लिया है

उर्दू कवियों की चीन के विरुद्ध कही गई कवितायें कई प्रकार से विचारणीय हैं और उनके देश-प्रेम का दर्पण हैं। उन्होंने भारत-चीन मित्रता के काल में भी कवितायें लिखीं और प्रेम-स्रोत प्रवाहित करने की कोशिश की, जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किसी प्रकार सविस्तार हो चुका है और अब चीन के पाखंड एवं आडम्बर का भाँडा फूट गया तो भी उनके क़लम चले। हृदय के भावों को काव्य के आधार पर उन्होंने जनता के सामने पेश किये। उनकी ये कवितायें केवल उस काल की नहीं हैं जबकि चीन का आक्रमण देश भर के लिये 'ज्वलन्त विषय' (Burning Topic) बन गया था। उन्होंने उस समय भी चीन के आक्रमण की निन्दा की जब वह अपने प्रारम्भिक स्थिति में था। मख़मूर सईदी ने इस आक्रमण से प्रभावित होकर 'क़ुद्सराहे-बद्रीनाथ' से कहा था—

कौन है कौन वो ए हमसरे-अफ़लाक[1] बता
इस बलन्दी प जो बुनियादे-सितम[2] रक्खेगा
कौन है कौन जो नापाक इरादे लेकर
तेरी पाकीज़ा फ़ज़ाओं में क़दम रक्खेगा

(१) आकाश का समवर्ती (२) अत्याचार की नींव।

कौन है कौन ये ललकार के कहदे उनसे
इस तरफ़ आयें तो साथ अपने कफ़न भी लायें
हिन्द है हिन्द ये तिब्बत नहीं, समझादे उन्हें
कुछ ज़रा सोच के दामाने-हवस[1] फैलायें

तेरी नाक़ाबिले-तसख़ीर[2] बलन्दी की क़सम
आज से तेरे तक़द्दुस[3] के निगहबाँ हम हैं
और इतना तो है मालूम तुझे भी शायद
सरफ़रोशाने-रहे-वादओ-पैमाँ[4] हम है

चीन भारत पर आक्रमण करने के बाद भी भारत को अपनी मित्रता के जाल में फँसाये हुये था। भारत दोनों देशों के मतभेद सम्मानपूर्ण मित्र-भाव से निपटाना चाहता था। उर्दू कवियों का एक वर्ग चीन से किसी प्रकार सहमत न था। मीरज़ा हर गोपाल 'तुफ़्ता' ने 'कामरेड चाऊ' को सम्बोधित करके बहुत पहले कह दिया था—

तेरी ज़बाँ प दावए-सुलहो-मुफ़ाहमत[5]
हम ख़ूब जानते हैं तमसख़ुर[6] से कम नहीं
तू सुर्ख़ सामराज का अरज़ल[7] ग़ुलाम है
हाँ दर-ख़ुरे-यक़ीं[8] तेरे क़ौलो-कसम नहीं

चीन के आक्रमण की निन्दा साम्यवादी और असाम्यवादी दोनों पक्षों ने की है। सभी देशों ने अपना सहयोग भारत के साथ प्रकट किया। कुछ देशों ने आर्थिक एवं सैनिक सहायता भी की परन्तु बड़े ही दुख की बात है कि भारत का सब से अधिक निकट सम्बन्धी देश पाकिस्तान, जिसकी सीमायें राजनीति के अतिरिक्त संस्कृति, भाषा और जीवन के अनेक स्वस्थ मूल्यों में भारत से मिली हुई हैं, उसके समाचार-पत्रों और प्रसारण-केन्द्रों ने चीन के इस आक्रमण को इस प्रकार देखा कि मानों भारत ने ही चीन पर आक्रमण कर दिया है! पाकिस्तानियों का भारत से विरोध उस घृणा के आधार पर है जिसने पाकिस्तान को जन्म दिया। इसलिये हमें उससे ज्यादा शिकायत नहीं परन्तु जब वह इसके बहाने यहाँ के अल्पसंख्यकों के जीवन से खेलता

(१) लोलुपता का दामन (२) पराजय न होने वाली (३) पवित्रता (४) अपने वचन पर प्राण देने वाले (५) सन्धि और शान्ति का दावा (६) व्यंग्य (७) अतिनीच (८) विश्वसनीय।

है और साम्प्रदायिक विषमता उभरता है तो प्रत्येक भारतवासी प्रभावित होता है। निहाल रिज़्वी ने पड़ोसी के घर में आग लगने पर तालियाँ बजाने वाले पाकिस्तान को समझाया है—

जिस तलातुम[1] में घिरा है आजकल हिन्दोस्ताँ
वो अगर फैला तो हर इक की बक़ा[2] ख़तरे में है
क्यों पड़ोसी मुल्क को एहसास ये होता नहीं
चीन के हमले से सारा एशिया ख़तरे में है

ये हक़ीक़त जबकि बिलकुल साफ़ है मुबहम[3] नहीं
एशिया का वो भी इक हिस्सा है तनहा हम नहीं

भारत पर चीन का आक्रमण आज का महत्व पूर्ण विषय है जिस पर उर्दू में न जाने कितनी कवितायें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। नज़्मों के अतिरिक्त ग़ज़ल के शेरों में इस ओर इशारा करना भी आम हो रहा है और इस सम्बन्ध के 'रज़मिया मुशाएरे' भी किये जा रहे हैं। आजकल गुल, चमन, बुलबुल आदि भारत और गुलचीं, सय्याद आदि चीन और ख़िज़ाँ इत्यादि चीनी आक्रमण के प्रतीक हैं। चीन के आक्रमण ने उर्दू-काव्य के प्रत्येक रूप को प्रभावित किया है और प्रत्येक स्थान पर शाएरों ने कुछ देने की कोशिश की है। तजस्सुस एजाज़ी की एक रुबाई सुनिये कितने विश्वास से कहते हैं—

सवादे-चीन[4] से उट्ठी हैं आँधियाँ लेकिन
फ़ज़ाए-अम्न[5] को तारीक कर नहीं सकतीं
हवाए-ज़ुल्म समझले हमारे होते हुये
उरूसे-हिन्द[6] की ज़ुल्फ़ें बिखर नहीं सकतीं

चीन के इस आक्रमण ने भारत को एक लाभ भी पहुँचाया है कि वह राष्ट्रीय-एकता, जिसके लिये स्वप्न देखा जा रहा था, अपने साकार रूप में आँखों के सामने आ गयी। पूरे देश ने इस स्वस्थ भाव को प्रोत्साहित किया कि संकटकालीन स्थिति में हम लोग कोई मतभेद नहीं रखते। इस संग्राम में प्रत्येक भेदभाव समाप्त हो गया। न कोई हिन्दू रहा, न मुसलमान, न सिख

(१) उद्वेग (२) अस्तित्व (३) संदिग्ध (४) चीन देश (५) शान्ति का वातावरण (६) हिन्द की दुल्हन।

न बंगाली न पंजाबी, न उत्तर भारतीय न दक्षिण-भारतवासी; एक आवाज़ हो गया—चीनी हमारे दुश्मन हैं, इन्होंने हमारे देश आक्रमण किया है, हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा भारतमाता को पुनः पराधीन होने के पहले अपने को उसके चरणों कर दें ! इस गौरवपूर्ण भावना को प्रोत्साहित करने में उर्दू कवियों की तरह बड़ा सहयोग दिया और अनेक कवितायें भारतीयों में एकता लिये लिखीं। उदाहरणार्थ जॉनिसार अख़्तर की कविता 'हम एक जा सकती है—

एक है अपनी ज़मीं एक है अपना गगन
एक है अपना जहाँ एक है अपना वतन
अपने सभी सुख एक हैं अपने सभी ग़म एक हैं
आवाज़ दो हम एक हैं

ये वक़्त खोने का नहीं ये वक़्त सोने का नहीं
जागो वतन ख़तरे में है सारा चमन ख़तरे में है
फूलों के चेहरे ज़र्द हैं ज़ुल्फ़ें फ़ज़ा की गर्द हैं
उमड़ा हुआ तूफ़ान है नरग़ो[1] में हिन्दोस्तान है
दुश्मन से नफ़रत फ़र्ज़ है घर की हिफ़ाज़त फ़र्ज़ है
बेदार हो, बेदार हो आमादए- पैकार[2] हो
आवाज़ दो हम एक हैं

ये है हिमालय की ज़मीं ताजो-अजन्ता की ज़मीं
संगम हमारी आन है चित्तौड़ अपनी शान है
गुलमर्ग का महका चमन जमना का तट, गोकुल का बन
गंगा के धारे अपने हैं ये सब हमारे अपने हैं
कह दो कोई दुश्मन नज़र उट्ठे न भूले से इधर
कह दो कि हम बेदार हैं कह दो कि हम तैयार हैं
आवाज़ दो हम एक हैं

उट्ठो जवानाने-वतन बाँधे हुये सर से कफ़न
उट्ठो दकिन की ओर से गंगो-जमन की ओर से
पंजाब के दिल से उठो सतलज के साहिल से उठो

(१) घेरा (२) युद्ध के लिये तैयार।

महराष्टर की ख़ाक से देहली की अर्ज़े-पाक से
बंगाल से, गुजरात से कशमीर के बाग़ात से
नेफ़ा से राजस्थान से कुल खाके-हिंदोस्तान से

आवाज़ दो हम एक हैं
हम एक हैं, हम एक हैं

(९) केरल की साम्यवादी सरकार :—केरल भारत का एक छोटा प्रान्त है परन्तु आबादी में बहुत ही गुंजान। इस प्रान्त को अस्तित्व ग्रहण किये अभी बहुत समय नहीं हुआ है। भाषा के आधार पर नये प्रान्तों की रचना में नवम्बर १९५६ ई० में ट्रावनकोर और कोचीन में थोड़ा-सा परिवर्तन करके केरल-प्रान्त बना। १९५७ के जन-चुनाव में साम्यवादी सरकार स्थापित हुई जिसको पूर्णबहुमत प्राप्त न था। फिर भी उन्होंने बड़े ज़ोर-शोर से अपनी नई सरकार चलाई। भारतवासियों ने बड़ी आशावादी दृष्टि से इसे देखा किन्तु शीघ्र ही राजनीतिक ऊहापोह प्रारम्भ हो गयी। साम्यवादी दल अपने लक्ष पूर्ण करना चाहता था जिसके लिये बहुत-सी परम्पराओं में परिवर्तन की ज़रूरत थी। साधारणजन इससे सहमत न था अतः विरोधी दलों को मौक़ा मिल गया। उन्होंने एजीटेशन करके ऐसी स्थिति उपस्थित करदी कि साम्यवादी दल को सरकार चलाना दूभर हो गया। अराजनीतिक दलों ने भी विरोधियों का साथ दिया। नायर सर्विस सुसाएटी और कैथोलिक ईसाइयों ने विशेषकर इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया और फिर क्या था पूरे प्रान्त में हड़ताल, बाइकाट, मीटिंगों और जलूसों का आधिपत्य हो गया। परिणाम में वहाँ की साम्यवादी सरकार समाप्त हो गई और ३१ जुलाई १९५९ को राष्ट्रपति-शासन की घोषणा हो गई। थोड़े दिनों बाद जनवरी १९६० ई० में पुनः चुनाव हुआ जिसमें विरोधी दलों ने संगठित मोरचा स्थापित करके साम्यवादियों को पराजित कर दिया और कॉंग्रेस की अपनी सरकार अन्य राजनीतिक दलों के सहयोग से स्थापित हो गई।

केरल के राजनीतिक उपद्रव कई प्रकार से जनसाधारण को जाग्रत करते हैं। इनमें भारत के वर्तमान साम्यवादी दल के स्वार्थ के साथ कॉंग्रेस के खोखले आदर्शों का भी भाँडा फूटता है कि वह अपने खोये हुये सम्मान को लौटाने के लिये अपने उद्देश्यों से डिग कर साम्प्रदायिक दलों से भी गठ-जोड़ कर सकती है। यह राजनीतिक विशृंखलता जनता के विश्वास को बुरी तरह

कर रही थी। उनमें भय की भावना प्रोत्साहन पा रही थी और वे न थे कि उनका परिणाम क्या होनेवाला है। 'नज्म' आफ़न्दी हैं—

अब के हंगामों से मौजूदा एलकशन की फ़ज़ा
हो गई मशहूर अपनी दस्त-कारी के लिये
रफ़्ता-रफ़्ता यह भी केरेला में नौबत आ गई
पड़ गये अक़्लों प पत्थर संग-बारी के लिये

याज़ हैदर जन-चुनाव पर होने वाले उपद्रवों की समीक्षा दूसरे रूप में है। उन्हें कॉंग्रेस-चुनाव-चिह्न का उद्देश्य ही पशुता दीखता है, जिसकी में समाजवाद की कल्पना केवल व्यंग्य-चिह्न छोड़ती है—

यही तो हैं वो लोग जो समाजवाद लायेंगे
इन्हीं के चार सींग, आठ पाँव और दुमें हैं दो
क़सम हर एक बैल की, इन्हीं को आदमी कहो
ये चर गये वतन के वोट, इन्हीं को राहबर चुनो
जब इनका राज आयेगा, अवाम[1] घास खायेंगे
यही तो हैं वो लोग जो समाजवाद लायेंगे

समाजवाद, रिशवतों का एतबार क्यों न हो
समाजवाद, ज़ुल्म की नई बहार क्यों न हो
समाजवाद, क़ातिलों का एक़्तेदार[2] क्यों न हो
समाजवाद, मौत के गले का हार[3] क्यों न हो
पहन के हार दुश्मनों से आप जीत जायेंगे
यही तो हैं वो लोग जो समाजवाद लायेंगे

साम्यवाद मानव-जीवन को प्रसन्नता, शान्ति एवं समन्वय प्रदान करने का र रखता है। उर्दू कवियों का बड़ा वर्ग इसी सिद्धान्त को अपना आदर्श ा है। उन्होंने केरल की साम्यवादी सरकार की स्थापना पर प्रसन्नता की। असाम्यवादी कवियों ने भी उनके आगमन में अपनी शुभकाम- भेजीं। 'नेहाल' रिज़वी की 'नवाए-वक़्त' भारत के राजनीतिक जीवन मीक्षा करती है—

(१) जनता (२) प्रभुत्व (३) माला।

पयामे-ज़िन्दगी[1] लिये, अभी नहीं तो फिर सही
नवेदे-सरख़ुशी[2] लिये, अभी नहीं तो फिर सही
सुख और शान्ती लिये, अभी नहीं तो फिर सही
इक इनक़लाब आ चुका, इक इनक़लाब आयेगा

रुख़े हवाए-बरतरी[3] को मोड़ने के वास्ते
ग़लत रविश,[4] ग़लत उसूल तोड़ने के वास्ते
कलाई इब्ने-वक़्त[5] की मरोड़ने के वास्ते
इक इनकलाब आ चुका, इक इनक़लाब आयेगा

उर्दू कवियों का एक वर्ग साम्यवाद का विरोधी भी है। वे साम्यवाद के उस रूप की विशेषकर निन्दा करते हैं जिसमें मनुष्य से उसकी अन्तरात्मा छीन ली जाती है। ज़बान और क़लम पर पहरा बैठा दिया जाता है। इस वर्ग ने केरल में साम्यवादी सरकार के विसर्जन पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और वहाँ की जनता को बधाई दी कि उन्होंने भारत को साम्यवाद के मुँह में जाने से बचा लिया। मख़्मूर सईदी ने केरल-वासियों के संकल्प को सराहते हुये कहा है—

मरहबा[6] अज़्मे-अवामे-केरल[7]
छट गये आख़िरकार आज वो काले बादल
पेशख़ेमा[8] थे जो बरबादी के
बदनुमा दाग़ थे जो मतलए-आज़ादी[9] के
दफ़अतन जिनका भयानक साया
अजनबी देश से आकर इस उफ़ुक़[10] पर छाया
अजनबी देश हवसरानों[11] का
दुशमन आज़ार मनिश अनगिनत इनसानों का
उनके परवर्दा ये काले बादल
अब अगर तोड़ दिया जाता न इनका कस-बल
इनसे वो आग बरसती इक दिन
जिसका होता न किसी तौर बुझाना मुमकिन

(१) जीवन-संदेश (२) मंगल-सूचना (३) उत्तमता की हवा का रुख़ (४) नीति (५) समय का पुत्र, स्वार्थी (६) धन्य (७) केरल की जनता का संकल्प (८) पूर्वाभास (९) स्वतंत्रता का उदयाचल (१०) क्षितिज (११) लोलुपों।

तुमने बरवक्त सफ़आराई की
हैसियत अपनी बनाई न तमाशाई की
वरना और इसके सिवा क्या होता
ख़ुद तुम्हारी ही तबाही का तमाशा होता
मरहबा अज़्मे-अवामे-केरल

(१०) गोवा :—प्राचीन भारत मे गोवा दक्षिण की रियासतों में बीजापुर के राज्य से सम्बन्धित था। १५१० मे जब पुर्तगालियों ने गोवा पर आक्रमण किया तो वहाँ के शासक यूसुफ़ आदिल ख़ाँ ने डट कर मुक़ाबिला किया परन्तु विदेशियों के नये-नये हथियारों के कारण विजय न मिल सकी। पुर्तगालियों ने पराजित जनता से बड़ा कठोर व्यवहार किया और उनकी इतनी हत्या की गई कि वे दब कर रह गये। अपनी मातृभूमि से सम्बन्ध टूटने का उन्हें दुख था परन्तु साम्राज्यवादियों की कठोरता से कोई राजनीतिक आन्दोलन प्रोत्साहित न हो पाता था। स्वतंत्रता के बाद भारत ने पुर्तगाल सरकार से गोवा को वापस लौटाने का अनुरोध किया परन्तु उसने कोई ध्यान न दिया बल्कि भारत के दावों को बेजान सिद्ध करने के लिये बाईस सदस्यों की एक विधान-सभा भी १६५५ ई० में बना दी। इस विधान-सभा में भी आधे सदस्य पुर्तगाल-सरकार के नियुक्त किये हुये थे। हिन्दोस्तान ने इस पर भी हिम्मत न हारी बल्कि आज़ादी की माँग तेज़ कर दी। इस पर पुर्तगाल बौखला उठा और यह देखकर कि भारत को अन्य देशों का भी सहयोग प्राप्त है वह पाकिस्तान से सौदे-बाज़ी करने लगा कि डमन और ड्यू लेकर पाकिस्तान गोवा पर पुर्तगाली शासन की रक्षा करे। परन्तु उनका यह स्वप्न साकार न हो सका, क्योंकि भारत ने १७ व १८ दिसम्बर १६६१ की रात्रि में अपनी सेनायें भेजकर गोवा और दूसरे द्वीपों पर अधिकार प्राप्त कर लिया। गोवा-वासी जो कई सदियों मे पराधीन थे अपनी मातृभूमि की गणतन्त्र सरकार से आलिंगबद्ध हो गये।

उर्दू कवियों ने गोवा की स्वतंत्रता को एक जाति, एक संस्कृति का पराधीनता से मुक्त होना अनुभव किया और उन व्यक्तियों को अपनी शुभ कामनायें भेजीं जिन्होंने देश के सम्मान को अभीष्ट रखते हुये संग्राम में भाग लिया था। नयाज़ हैदर कहते हैं—

वतन की इज़्ज़त के पासबानो[1]
तुम्हें वतन का सलाम पहुँचे
बलन्दो-बरतर फ़ज़ा से आगे
बलन्द हिम्मत का नाम पहुँचे

गोवा की आज़ादी पर उर्दू में बहुत-सी कवितायें कही गई हैं। भारत के कवियों की प्रसन्नता में अभारतीय कवियों ने भी सहयोग दिया। उन्होंने भी गोवा की स्वतंत्रता पर अपनी शुभकामनायें भेजीं। अनवर अहेसन ने, जो पाकिस्तानवासी हैं, गोवा की स्वतंत्रता पर एक सुन्दर एवं प्रभावशाली कविता लिखी है—

आज फिर ज़लज़ले से ज़मीं काँप उठी
एक आतशफ़िशाँ[2] शोला-ज़न[3] हो गया
आग ने सारी आलाइशें[4] चाटलीं
मुन्दमिल[5] एक ज़ख़्मे-कुहन[6] हो गया
दाग़ कुम्हला गया, इक कली हँस पड़ी
मौत की हार पर, ज़िन्दगी हँस पड़ी
और फिर आतशीं-ज़लज़ले[7] आयेंगे
आग में फूल खिलते चले जायेंगे
शाने-जुर्अत[8] निखरती चली जायेगी
दस्ते-मेहनत सँवरता चला जायेगा
और फिर ज़ख़्म भरता चला जायेगा
और फिर ज़ख़्म भरता चला जायेगा !

(११) एवरेस्ट विजय :—२९ मई १९५३ का दिन भारत के इतिहास में एक विशेष महत्व रखता है। इसी दिन भारत का एक सपूत शेरपा तेनसिंह न्यूज़ीलैंड के पर्वतारोही ए० पी० हिलैरी के साथ धरती के सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचा। एवरेस्ट पर विजय पाने की इच्छा बहुत दिनों से लोगों के मन में अँगड़ाई ले रही थी। पिछले बीस वर्षों में एवरेस्ट पर इसके अलावा

(१) रक्षक (२) ज्वालामुखी (३) आग फैलाने वाला (४) गंदगियाँ (५) पूरा हो गया (६) पुराना-ज़ख़्म (७) अग्निपूर्ण भूचाल (८) वीरता की शान

दस असफल कोशिशें हो चुकी थीं। इस सम्बन्ध में अँग्रेज़ों की एक टोली ने सर्वप्रथम १९२१ ई० में कोशिश की थी, फिर उसके बाद जापान, स्वीट्ज़रलैंड और जर्मनी सभी ने चेष्टा की परन्तु असफलता ही रही। कहते हैं कि तीसरी टोली, जो १९२४ ई० में गई थी उसका कोई आदमी एवरेस्ट तक पहुँच गया था परन्तु वापसी में उसके पैर फिसल गये और वह वापस न आ सका। शेरपा तेनसिंह और हिलैरी को आख़िरी बुलंदियाँ पार करने में कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। आक्सीजन के डिब्बे पूरी तरह ज़रूरत को पूरा न करते थे। उतनी ऊँचाई पर साँस लेने से लेकर चलने तक में कठिनाई का अनुभव होता था। तेनसिंह ने ऊपर की दशा का इस प्रकार वर्णन किया है—"उन ऊँचाइयों पर जब आप थूकते हैं तो बर्फ़ बनकर पत्थर पर गिरता है। आप जो साँस बाहर निकालते हैं वह भाप बनकर आप ही की मूँछ से चिपक जाता है। एक मिनट चलने के बाद पाँच मिनट आराम की ज़रूरत होती है।"

उर्दू कवियों ने भारत की इस विजय पर प्रसन्नता प्रकट की। बहुत से लोगों ने भारतमाता के सपूत तेनसिंह को उसकी विजय पर बधाई दी। जगन्नाथ आज़ाद ने इसे 'अज़मते-आदम' कहा और सिकन्दर अली 'वज्द' ने 'शिकस्ते-हिमालय' समझा। 'अर्श' मलसियानी को विश्व में प्रसन्नता की लहर दीख पड़ी। उन्होंने कल्पना की कि 'एवरेस्ट की परियों का कोरस' तेनसिंह और हिलैरी को बधाई दे रहा है—

जिस जगह उड़ नहीं सकता था किसी का परचम
जिस जगह गड़ ही नहीं सकते मलाएक[1] के अलम[2]
जिस जगह जम नहीं सकते किसी नूरी[3] के क़दम
उस जगह आदमे-ख़ाकी[4] का निशाँ आ पहुँचा

आख़िरेकार सरे-कोहे-गराँ[5] आ पहुँचा
इब्ने-आदम[6] को तो देखो कि कहाँ आ पहुँचा

---

(१) ईशपार्षद (२) झण्डा (३) प्रकाश वाले (४) मिट्टी का आदमी (५ भारी पहाड़ के किनारे ६ आदम का सुपुत्र

आसमानों को सुनाता है ज़मीं का पैग़ाम
फ़र्श[१] वाला है मगर आज तो है अर्श-मुकाम[२]
खै़रमक़दम[३] में पढ़े उसके दुरूद और सलाम[४]
आदमी ता-दरे-गुलज़ारे-जिनाँ[५] आ पहुँचा

आख़िरेकार सरे-कोहे-गराँ आ पहुँचा
इब्ने-आदम को तो देखो कि कहाँ आ पहुँचा

(१) ज़मीन (२) आसमान-वासी (३) स्वागत (४) धार्मिक मंत्र (५) बैकुंठ के बाग़ के द्वार तक।

आठवाँ अध्याय

रोमांस एवं प्रेम सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ

मनुष्य के जीवन की रचना दो तत्वों पर हुई है—एक उसकी निजी अनुभूति, निजी कल्पना, निजी विचार और दूसरी उसकी अनुभूतियों, कल्पनाओं, विचारों के टक्कर में आने वाला कटु यथार्थ। कोई इतना भावुक होता है कि अपनी कल्पना, अपना जीवन सब कुछ अपने ही में केन्द्रित पाता है और जीवन के कटु यथार्थ से भाग कर नितान्त स्वप्न लोक में ही पलायन का जीवन बिताता है। वह विद्रोह-भाव से भी आलिंगित होता है परन्तु केवल यही उसका उद्देश्य नहीं होता। यही कारण है कि साहित्य में रोमांस को भी यथार्थ के समान महत्व प्राप्त है। जिस प्रकार जनता के जीवन और परिस्थितियों का सच्चा प्रकटीकरण साहित्य का यथार्थवाद है उसी प्रकार रोमांस सत्य को चिन्तन का रूप प्रदान करता है और इसी आधार पर साहित्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरं की पूर्ति होती है।

रोमांस वास्तव में कल्पना एवं चिन्तन का एक ऐसा सुन्दर, मनोहर एवं समन्वित रूप है जिसके पंचभूत का पता लगाना असम्भव है। रोमांस के एक क्षेत्र में रहते हुये भी विभिन्न व्यक्तित्व पृथकता रखते हैं। कोई प्रकृति का प्रेमी है—इन्द्रधनुष के रंगों की रंगाली में डूबकर क्षितिज के उस पार किसी और दुनिया की तलाश में निकल जाना चाहता है, कोई प्रेमिका को छूते समय अलस पुरवाई और सौरभस्निग्ध पुष्प की कोमल पँखुरियों की स्निग्धता का अनुभव करता है, तो कोई अपनी प्रेमिका को इस प्रकार अपनी बाहों में समेट लेना चाहता है कि दोनों मिलकर एकाकार हो जायँ, कोई प्रेम में केवल तड़पना चाहता है और अपनी वेदना को ही सहज प्रेम का लक्ष्य मान लेता है तो कोई मिलन के बिना प्रेम को अधूरा समझता है। सारांश यह कि प्रत्येक रोमांसवादी एक नयी डगर पर चलकर समाज के व्यापक एवं स्थापित मूल्यों से असन्तुष्टि की भावना ही ग्रहण कर पाता है। प्रायः कवि के सत्य द्वारा जो सृष्टि बनती है वह इसी आधार पर एक नये संसार का प्रारूप होती है। इसी से कोई वर्ड सवर्थ बनता है और अपने

धर्माधार को प्रोत्साहन देता है तो कोई शेली बनकर धर्म की धज्जियाँ उधेड़ देता है। बायरन और कीट्स की रंगा-रंगी तक ही रोमांस सीमित नहीं। इसी से रूसो की विचारधारा की सृष्टि होती है और इसी से शेलीगल का तत्वज्ञान जन्म लेता है।

प्रकीर्णता एवं विभिन्नता रोमांस की प्रमुख विशेषतायें हैं परन्तु रोमांस-वादी एक दूसरे से दूर होते हुये भी आपस में मिल जाते हैं। यदि सामाजिकता को अलग रखते हुये उनका अध्ययन किया जाय तो उनमें बड़ी समानता मिलती है। समय की गति को तोड़ना, तुष्टि के साथ जीवन से आनन्द लेना, चिन्तन और आभास के आधार पर एक नये संसार का निर्माण करना, भौतिक संसार से अलग एक ऐसी स्थिति की कल्पना करना जिसमें कलह एवं वेदना, प्रसन्नता एवं उद्गार, वसन्त ऋतु और प्रेमिका के केशों से लेकर अम्बर की सुगन्ध सभी कुछ हो। ये सारी वस्तुयें ऐसी हैं कि जो अधिकतर रोमांस-वादियों के यहाँ मिलती हैं। व्यक्तिगत अनुभवों की प्रेरणा एवं कल्पना और भाव के मिश्रण से रोमांस का जन्म होता है। परन्तु व्यक्तिगत अनुभवों को रोमांस के कारण के रूप में नहीं पेश किया जा सकता वरन रोमांस व्यक्तिगत अनुभवों का परिणाम है और शायद इसी-लिये रोमांसवादी सृष्टि को दूसरे रूप में देखता है।

उर्दू में वर्तमान रोमांसवादी शाएरी का जन्म विशेष प्रकार के मनो-वैज्ञानिक प्रभाव के कारण हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि में उर्दू के प्रथम काल के रोमांस का भी प्रतिबिम्ब है। जिस प्रकार अँग्रेज़ी काव्य-साहित्य में एक रोमांसवादी युग शेक्सपियर का था और दूसरा वर्ड्सवर्थ और शेली का उसी प्रकार उर्दू शाएरी का प्रथम रोमांसकारी युग 'क़ुतुबशाह' से 'ग़ालिब' तक का था और दूसरा वर्तमान युग है, जिसकीविविध एवं विचित्र परिस्थि-तियों में रोमांस नई करवटें ले रहा है।

भारत की स्वतंत्रता ने जीवन के अनेक अंगों की तरह हमारी रोमांस-वादी शाएरी को भी प्रभावित किया है। कल्पनायें सत्य के रूप में हमारे सामने हैं। राजनीतिक क्षेत्र से अलग हमने दैनिक जीवन के रस को बढ़ाने की चेष्टा की है। विदेशों से प्रेरणा लेकर अपनी परम्पराओं को अभीष्ट रखते हुये प्रेम, स्नेह और श्रद्धा के स्रोत प्रवाहित करने की कोशिश की है। हमारे

कवियों ने बड़ी उदारता से प्रेम के विभिन्न अनुभवों को लिपिबद्ध करके जहाँ अपने बौद्धिक विवेक का प्रमाण दिया है वहाँ साहित्य को भी इस संबंध में प्रकीर्णता एवं विभिन्नता प्रदान की है।

उर्दू की वर्तमान रोमांसवादी शाएरी अपने प्राचीन भण्डार से कुछ-कुछ भिन्न है। आज का कवि आदर्शवाद के भ्रम में फँसकर जीवन में होने वाली घटनाओं से विरक्त नहीं होता बल्कि उसकी दृष्टि उन भावों में भी टकराती है जिसको शायद कोई धर्म-गुरु पाप भी कह दे। आज प्रेम अंतरिक्ष से पैदा होने वाली वस्तु नहीं है बल्कि भौतिक संसार के मनुष्यों के जीवन का परम आवश्यक अंग है। यह प्रेम कामदेव के सुन्दर धनुष से घायल होने पर प्राप्त होता है। जिसमें मिलन भी है और वियोग भी। प्रेमी चाँद की चाँदनी से प्रेरणा लेता है, रातों को जागने में आनन्द पाता है और किसी की कल्पना द्वारा मधुर आशा की पंखुरियों को सुरभित करता है। 'साहिर' लुधियानवी रोमांसवादी कवियों की बिरादरी में एक श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। वे 'इन्तेज़ार' में भी लज़्ज़त पाते हैं—

चाँद मद्धिम है आसमाँ चुप है
नींद की गोद में जहाँ चुप है

दूर वादी में दूधिया बादल
झुक के परबत को प्यार करते हैं
दिल में नाकाम हसरतें लेकर
हम तेरा इन्तेज़ार करते हैं

इन बहारों के साये में आ जा
फिर मोहब्बत जवाँ, रहे न रहे
ज़िन्दगी तेरे ना-मुरादों पर
कल तलक मेहरबाँ, रहे न रहे

रोज़ की तरह आज भी तारे
सुब्ह की गर्द में न खो जायें
आ तेरे ग़म में जागती आँखें
कम से कम एक रात सो जायें

चाँद मद्धिम है आसमाँ चुप है
नींद की गोद में जहाँ चुप है

रोमांस और प्रेम का सम्बन्ध अविभाज्य है बल्कि उर्दू में तो इन्हें एक ही सत्य के दो रूप माना जाता है इसीलिये हमने भी विश्लेषण करते हुये दोनों को बिलकुल अलग नहीं देखा है। दोनों की परम्पराओं को सामने रखते हुये जीवन का आलेखन व नेतृत्व स्पष्ट किया है।

आज का कवि अपनी प्रेमिका से अलग रहने पर अथवा उसके वियोग में उसे बेवफ़ा नहीं कहता। उसे चारों ओर की परिस्थितियों और जीवन में व्याप्त विषयों और जीवित व्यंग्यों का भी अनुमान है इसके लिये वह किसी 'अजनबी' की कल्पना से अपने मन को सन्तोष दे लेता है। वस्तुतः आज के 'तीव्र-जीवन' (Fast Life) में यह अजनबीपने का भाव विशेष संदर्भ में विकसित हुआ है। उस मंज़िल तक पहुँचने के लिये प्रेमी को बड़ा संघर्ष करना होता है किन्तु यदि सफलता मिल गई तो उसका जीवन भी सफल हो जाता है। तेग इलाहाबादी की कविता 'एक ज़ख़्मी तसव्वर' इसी दर्द से परिपूर्ण है—

अब तो जब रात को पिछले का समाँ होता है
अपनी आवाज़ प रोने का गुमाँ होता है
ऐसी सुनसान सड़क! ऐसा घना सन्नाटा
कौन जज़्बात[1] की मौजों में उतर सकता है
लोग कहते हैं कि उजड़ी हुई आबादी से
रात के वक़्त गुज़रते हुये डर लगता है
मक़बरों पर नज़र आते हैं भयानक साये
मोड़ पर दिल के पुरअसरार[2] खँडर पड़ता है
इस अँधेरे में सितारे तो कहाँ मिलते हैं
हाँ! सुलगते हुये अश्कों के निशाँ मिलते हैं

आज लेकिन मेरी आँखों में कोई अश्क नहीं
थर-थराते हुये होंटों का फ़साना भी नहीं
तुझसे छुटने का तसव्वर है भयानक लेकिन
इस तसव्वर में कोई आहे-शबाना[3] भी नहीं
लेकिन इस ज़ीस्त में है ज़ीस्त से बेज़ारी भी
ज़ख़्मे-दिल यूँ तो है ख़ुशरंग[4] मगर कारी[5] है

---

१ भावों २ [illegible] ३) रातों की आह ४ सुवर्ण ५) गहरा।

रोमांस के ताने-बाने कल्पना से तैयार होते हैं। कवि अपनी कल्पना से ऐसी स्थिति की रचना कर लेता है जो भौतिक रूप में उसके सामने नहीं होती। अंग्रेज़ी कवि कीट्स अपनी मूर्त-कल्पना (Concrete Imagery) के लिये प्रसिद्ध है। उर्दू के कवियों ने भी इस संबंध में सफल प्रयोग किये हैं। उदाहरण के लिये जाँनिसार 'अख़्तर' की कविता 'ख़ामोश आवाज़' देखी जा सकती है। सफ़िया पहले उनकी प्रेमिका थी, फिर पत्नी बनी किन्तु मृत्यु ने बहुत जल्द अलग कर दिया। एक साल बाद जनवरी की चाँदनी रात में जब कवि उसकी क़ब्र पर जाता है तो भूतकाल की सुहानी यादें उसे अपने हल्के में घेर लेती हैं और कल्पना के परदे पर सफ़िया की बोलती हुई तसवीर उभरती है—

इतने दिन के बाद कहीं तुम !
आये हो साजन मेरे द्वारे
आज अँधेरे अँगना मोरे
नाच उठे हैं चाँद सितारे
देखो कितनी रात हसीं है
जैसे मेरा प्यार खिला हो
आज तो ऐसी जोत है जैसे
चाँद ज़मीं से आन मिला हो
आओ मैं तुमसे रूठ सी जाऊँ
आओ मुझे तुम हँस के मना लो
मुझमें सचमुच जान नहीं है
आओ मुझे हाथों प उठा लो।
ये न समझना मेरे साजन !
दे न सकी मैं साथ तुम्हारा
ये न समझना मेरे दिल को
आज तुम्हारा दुख है गवारा
ये न समझना मैंने तुमसे
आज किया है कोई बहाना
दुनिया मुझसे रूठ चुकी है
साथी तुम भी रूठ न जाना

स्वच्छन्दतावाद से अवश्य परिचित होगा। आधुनिक युग में कही गयी कविताओं में रोमांसवादी कविताओं की कमी नहीं परन्तु 'क़तील' शफ़ाई की 'साँवली', 'साहिर' लुधियानवी की 'तेरी आवाज़' व 'मताए ग़ैर', 'रविश' सिद्दीक़ी की 'निकहतों के आँचल', जाँनिसार 'अख़्तर' की '२९ दिसम्बर ५२' बाक़र मेंहदी की 'कोई अफ़साना नहीं', डॉ० अख़्तर ओरैनवी की 'चश्मे-ग़ज़ाल', नरेश कुमार 'शाद' की 'एक आम सी लड़की' व 'कशमकश', 'शहाब' जाफ़री की 'शहनाज़ के नाम', सरोश तबातबाई की 'अहदो-पैमाँ', बलराज कोमल की 'ये लोग', जगन्नाथ 'अज़ाद' की 'डल के किनारे एक सुबह', सलाम मछलीशहरी की 'तेरी सलमा—तेरी उज़रा ने कहा', अख़्तर अनसारी की 'मंज़िल के क़रीब' इत्यादि कवितायें इस सम्बन्ध में विशेषकर देखी जा सकती हैं।

प्रेम में बड़ी व्यापकता है। इसके अनेक रूप और प्रसंग हैं। इसमें भाई-बहन, माता व पिता इत्यादि सबकी भावनाओं के लिये स्थान है परन्तु रोमांसवादी शाएरी में केवल उन शृंगारिक भावों का आलेखन होता है, जो एक नायक और नायिका के बीच घटित होती हैं। नारी की कल्पना यों तो उर्दू शाएरी में प्रारंभ से मिलती है लेकिन वर्तमान युग में इसके कई नये आयाम और परिप्रेक्ष्य उभरे हैं। अभी तक उर्दू शाएरी में केवल नायक की ही अनुभूतियाँ व्यक्त होती थीं नायिका का पक्ष नहीं के बराबर था किन्तु इधर नारी-भावनाओं से ओत-प्रोत रचनाओं का भी सृजन हुआ है और प्रतिनिधि नारी-भावना का सफल चित्रण किया गया है। 'क़तील' शफ़ाई की कविता 'हरजाई' इस संबंध में देखी जा सकती है—

खेत से दूर दमकते हुये दोराहे पर
एक सरशार[1] जवाँ मैंने खड़ा पाया था
तमतमाये हुये चेहरे प सुलगती आँखें
जैसे महके हुये गुलज़ार का ख़्वाब आया था

सर प गागर के छलकने से लो तारे टूटे
आसमाँ झाँक रहा था मुझे हैरानी से
टन से कंकर जो पड़ा मेरी हसीं गागर पर
एक नग़मा-सा उलझने लगा पेशानी से

(१) उन्मत्त

टूटती रात गये घर को पलटना मेरा
इक लपकते हुये साये ने डराया था मुझे
"तुम ? अरी तुम ?!' (वही सरशार जवाँ था शायद)
"जी युहीं एक सहेली ने बुलाया था मुझे"

खेत भरपूर जवानी को लुटा बैठे थे
हर दराँती प लसलसुल का जनूँ तारी था
जाने क्या देख रहा था वो मेरे चेहरे पर
इस क़दर याद है उँगली से लहू जारी था

नारीसुलभ भावनाओं में पुरुषों की तरह अनेक प्रकार के होते हैं। वह भी जीवन की ऊबड़ घाटी में भावों की लहरों से उसी खेलती है और उनसे प्रभावित होकर प्रेम के विभिन्न पक्षों का साक्ष करती है। उदाहरणार्थ अहमद नदीम 'क़ासिमी' के कुछ मुक्तक लीजिये—

देख री, तो पनघट पर जाकर मेरा जिक्र न छेड़ा कर
मैं क्या जानूँ कैसे हैं वो, किस कूचे में रहते है
मैंने कब तारीफ़ें की हैं, उनके बाँके नैनों की
'वो अच्छे खुशपोश[१] जवाँ हैं," मेरे भय्या कहते हैं

उफ़ कितना पुरहौल है दरिया, कितनी भयानक मौजें हैं
देखो जी, अब हौले-हौले नाव किनारे ले जाओ
बालों को बिखरा रहने दो, कंघी मैं खुद कर लूँगी
रेला आया, सँभलो-सँभलो मेरा हाथ न सहलाओ

तुम ऐवानों[२] के बासी मैं कुटिया में रहने वाली
अर्श से क्या है फ़र्श को निसबत, फूल कहाँ और धूल कहाँ
शाल ये क्या तुमने भेजी है ? मेरा दिल कैसे माने।
छतनारे नेमू के कहाँ, बन के वे रंग बबूल कहाँ

मैं चक्की के घमर-घमर में जाने क्यों खो जाती हूँ
अक्सर पथरीले पाटों पर सर धर के सो जाती हूँ

१ जिस पर वस्त्र खिल उठे (२) सदनों

मैं तो कब की अपने मन से प्रीत के धब्बे धो बैठी
जाने किसकी याद में ऐसी गुम-सुम-सी हो जाती हूँ
मैं तो उनकी क़ब्र प नित जाऊँगी सखी, नित जाऊँगी
तुझको किसने बताया कब्रस्ताँ में चुड़ैलें रहती हैं
मैं तो जब जाती हूँ वहाँ, यादों की परियाँ लहरा कर
अपने परों के साज़ प मुझ से उनके फ़साने कहती हैं

उर्दू के वर्तमान रोमांसकारी शाएरी में नारी-जाति की भावनायें पेश करने की बड़ी सफल कोशिश की गई। क़तील शफ़ाई की 'ज़र्द-पशेमाँ' नरेश कुमार शाद की 'राखी' इत्यादि कवितायें इस सम्बन्ध में विशेष हैं। कवियों के साथ कुछ कवियित्रियाँ भी इस ज़माने में सामने आई हैं और इससे नारी-जाति का प्राकृतिक भाव भी साहित्य के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व पा सका है। विवाह यों तो मानव-जाति के दोनों वर्गों में समान महत्व रखता है परन्तु नारी के जीवन में विवाह-संस्कार नितान्त नये भाव प्रस्फुटित करता है। एक प्रकार से नवीन जीवन का प्रारम्भ होता है। परिवर्त्तन के भूचाल में उसके अपने माता-पिता, भाई-बहन छूट जाते हैं और उनकी जगह नये-नये सम्बन्धी मिल जाते हैं। ऐसे अवसर पर भावनायें किस प्रकार के प्रभाव छोड़ती हैं इसका अनुमान करना हो तो अमतुर्रशीद की रचना 'कामना के फूल' देख लीजिये—

आज की रात कितनी जवाँ रात है
आज फ़ितरत शगूफ़ों[1] को महकायेगी
दीप से दूसरा दीप जल जायेगा
ज़िन्दगी अपना मक़सूद[2] पा जायेगी

जा रही है जुदाई की बेकैफ़ रुत
कट रहे हैं शबो-रोज़ तनहाई के
रक़्स[3] होने लगा साज़ बजने लगे
गीत बुनने लगे बोल शहनाई के

कोई गबरू तुम्हें साथ ले जायेगा
नौजवानों के बढ़ते हुये ग़ोल में

(१) कलियों (२) उद्देश्य (३) नृत्य।

इक नये घर बसाने चली जाओगी
तुम मोबारक-सलामत के माहौल में
काश ये फूल ज़ेबे-नज़र[1] हो सके
काश गजरे की लड़ियाँ अमर हो सकें

भौतिक संसार में होने वाला प्रेम दैनिक जीवन से विरक्त नहीं होता। संसार एवं समाज का डर भी उसे परीशान करता है। उसमें सामाजिक विवेक होता है परन्तु वह उसके केवल उस रूप को देखता है जिसमें प्रेम की अनुभूति घुटती सी अनुभव होती है, सामाजिक वर्गों की ऊहापोह, दैनिक जीवन के अन्याय एवं द्वेष पर वह अपने विचार प्रकट नहीं करता। उसमें समाज को बदलने का साहस नहीं होता बल्कि वह उससे पलायन का मार्ग ढूँढ़ निकालता है। उसे डर होता है कि यदि समाज को उसके प्रेम का पता चल गया तो वह बदनाम होगा। इब्ने इनशा भी अपने प्रेम को 'यह झूठी बातें हैं' कहकर छिपाने की कोशिश करते हैं परन्तु यह तो वह मृग-कस्तूरी है जो छुपाने पर भी सुगंध देता है—

ये बातें झूठी बातें हैं, ये लोगों ने फैलाई हैं
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई हैं

हैं लाखों रोग ज़माने मे, क्यों इश्क है रुसवा बेचारा
हैं और भी वजहें वहशत की, इनसान को रखती दुखियारा
हाँ बेकल बेकल रहता है, हो पीत में जिसने जी हारा
पर शाम से लेकर सुब्ह तलक यूँ कौन फिरेगा आवारा

ये बातें झूठी बातें हैं, ये लोगों ने फैलाई हैं
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई हैं

ये बात अजीब सुनाते हो, वो दुनिया से बे-आस हुये
इक नाम सुना और ग़श खाया, इक ज़िक्र प आप उदास हुये
वो अक़्ल में अफ़लातून हुये, वो शेर में तुलसी दास हुये
वो तीस बरस को पहुँचे हैं, वो बी. ए., एम.ए. पास हुये

ये बातें झूठी बातें हैं, ये लोगों ने फैलाई हैं
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई हैं

(१) नजर की ज़ीनत

गर इश्क़ किया है तब क्या है, क्यों शाद नहीं आबाद नहीं
ये बात तो तुम भी मानोगे, वो क़ैस नहीं फ़रहाद नहीं
जो जान लिये बिन टल न सके, ये ऐसी भी उफ़ताद[१] नहीं
क्या हिज्र[२] का दारू उनका[३] है? क्या वस्ल[४] के नुस्ख़े याद नहीं

ये बाते झूठी बातें हैं, ये लोगों ने फैलाई है
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई हैं

वो लड़की अच्छी लड़की है, तुम नाम न लो हम जान गये
वो जिसके लाँबे गेसु हैं पहचान गये, पहचान गये
हाँ साथ हमारे इन्शा भी उस घर में थे मेहमान गये
पर उससे तो कुछ बात न की, अंजान रहे, अंजान गये

ये बातें झूठी बातें है, ये लोगों ने फैलाई हैं
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई है

जो हमसे कहो हम करते हैं, क्या इन्शा को समझाना है?
उस लड़की से भी कह लेंगे, जो अब कुछ और ज़माना है
या छोड़े या तकमील[५] करे, ये इश्क है या अफ़साना है
ये क्या गोरखधन्धा है, ये कैसा ताना-बाना है

ये बातें कैसी बातें हैं, जो लोगों ने फैलाई हैं
तुम इन्शा जी का नाम न लो, क्या इन्शा जी सौदाई हैं

एशिया और विशेषकर भारत में सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक परम्पराओं का जाल इस प्रकार फैला हुआ है कि जिसमें दो निश्छल दिलों का मिलन भी वर्जनाओं की सीमा मे पड़कर केवल कलंक बन कर रह जाता है। एशिया से बढ़कर यूरोप पहुँचिये तो वहाँ भी इन विचारों की कमी नहीं। टालस्टाय की अमर रचना Anna Karenina का प्रेम एक अपराध है, एक पातक है जिससे आत्मा दलित होती है अतः जब Anna अपने प्रेमी से मिलती है तो वह प्रसन्नता उसके भाग्य में नही होती जिसकी वह अधिकारनी थी। उर्दू के वर्तमान कवियों ने इस विचारधारा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। उनकी आँखों से समाज मे होने वाला कोई अत्याचार छिपा नही है। वे अपने प्रेम को अमर बनाने के लिये इन अन्यायों के विरुद्ध लड़ना भी

(१) घटना (२) वियोग (३) अप्राप्य (४) मिलन (५) पूर्ति।

जानते हैं और इसके लिये वियोग भी ग्रहण कर सकते है। 'साहिर' लुधियानवी ने अपनी एक कविता 'ख़ूबसूरत मोड' में इस अनोखे वियोग की कसक को बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है, जिसमें एक पक्ष दूसरे से खिंचता हुआ दीखता है—

चलो इक बार फिर से अजनबी बन जायें हम दोनों
न मैं तुमसे कोई उम्मीद रक्खूँ दिलनवाज़ी की
न तुम मेरी तरफ़ देखो ग़लत-अन्दाज़ नज़रों से
न मेरे दिल की धड़कन लड़खड़ाये मेरी बातों में
न ज़ाहिर हो तुम्हारी कशमकश का राज़ नज़रों से

तुम्हें भी कोई उलझन रोकती है पेश क़दमी से
मुझे भी लोग कहते हैं कि ये जलवे पराये हैं
मेरे हमराह[1] भी रुसवाइयाँ हैं मेरे माज़ी[2] की
तुम्हारे साथ भी गुज़री हुई रातों के साये हैं

तअर्रुफ़[3] रोग हो जाये तो उसको भूलना अच्छा
तकल्लुफ़ बोझ बन जाये तो उसको तोड़ना अच्छा
वो अफ़साना जिसे तकमील तक लाना न हो मुमकिन
उसे इक ख़ूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा
चलो इक बार फिर से अजनबी बन जायें हम दोनों

समाज के बन्धन प्रेम के मार्ग मे जिस प्रकार महत्व रखते हैं उसे दृष्टि में रखते हुये उर्दू के कवियों ने बहुत-सी कवितायें कही हैं। उदाहरणार्थ 'क़तील' शफ़ाई की 'एक नज़्म', डा० सलाम संदेलवी की 'दो पंछी', अफ़सर आज़री की 'एक बहेस', अख़तर अन्सारी की 'मआज़रत' इत्यादि कवितायें देखी जा सकती हैं।

उर्दू के नवीन युग में स्वच्छन्दतावाद के आदर्शों में परिवर्तन हुआ है। विदेशों की सभ्यता से निकट होने पर उन्हें अपने नैतिक जीवन में भी परिवर्तन करना पड़ा है। आज तृप्ति वाद (Epicureanism) में उस प्रकार की तुच्छता नहीं समझी जाती जैसा कि पूर्व के कवि समझते थे। आज के कवि का प्रेम आध्यात्मिक, अन्तरिक्षिक अथवा अलौकिक नहीं है, वे एक

१ साथ २ भूतकाल ३) परिचय

सुन्दर शरीर की भी कल्पना करते हैं जिसमें शारीरिक प्रहर्ष (Body's Rapture) को भी एक विशेष स्थान प्राप्त है। 'क़तील' शफ़ाई अपनी रचना 'निगारे-सीमीं' में प्रेमिका के अंग-अंग की प्रशंसा करने के बाद उसे 'शमा' से उपमा देकर कहते हैं—

इक रोज़ पिघल कर किसी आगोश में खोजा
हर रात का जलना तुझे रास आ न सकेगा

सिकन्दर अली 'वज्द' ने भी इस सिलसिले में एक सुन्दर कविता कही है। 'रक़्क़ासा' अपने नृत्य से अधिक अपने शरीर से उन्हें प्रभावित करती है और वह उसका वर्णन बड़े आनन्द से करते हैं—

बदन ज़िन्दगी का छलकता प्याला चमन की बहारों ने फूलों में पाला
अभी खिलने वाली महकती कली है जवानी के साँचे में बिजली ढली है
छेड़ा राग धारे मिले हुस्नो-फ़न के चली नाव संगम प गंगो-जमन के
सजीला बदन, हुस्न में सरबुलन्दी निगाहों में मासूम-सी फ़तहमन्दी

मसर्रत[१] के तूफ़ान में खो गई है
ख़ुद अपनी अदाओं में गुम हो गई है

कमर ताल के साथ बल खा रही है नज़र शौक़ की आग भड़का रही है
अदाए-तबस्सुम[२] ग़ज़ब ढा रही है सरे-तूरे-दिल[३] बर्क़ लहरा रही है
हवा नग़मए-सरमदी[४] गा रही है यहाँ अक़्ल को नींद-सी आ रही है

सरापा हक़ीक़त बनी है फ़साना
निशाने-क़दम चूमता है ज़माना

प्रेमी का स्वर्ग यों तो उसकी प्रेमिका के अंचल में है परन्तु वह इसकी सृष्टि में प्रकृति के सौन्दर्य से भी प्रेरणा लेता है उसे प्रकृति के अंचल में भी शान्ति मिलती है। आज का उर्दू कवि किसी आध्यात्मिक प्रकृति की तलाश नहीं करता, उसका भौतिक स्वर्ग भारत की एक बस्ती है जो हिमालय के अंचल में है। गंगा अपनी पवित्रता, पावनता एवं सुन्दरता के

(१) प्रसन्नता (२) मुस्काने की अदा (३) दिल के तूर के किनारे, तूर एक पहाड़ था जिस पर ईश्वर ने अपना दर्शन दिया था, जो इस भार को न सहन करके भस्म हो गया था (४) सरमद का संगीत।

साथ उसमें लहराती है। वहाँ पनघट है, झूले हैं, दिलचस्प अँधियारियाँ हैं, आम के पेड़ हैं और उन पर कोयल की पुकार है। शाएर-ए-इनक़लाब जोश मलीहाबादी अंग्रेज़ी कवि वर्डसवर्थ (Words Worth) की तरह प्रकृति को एक पवित्र व्यक्ति समझते हैं। अपनी कविता 'झूमती बरसातें' में वे स्वयं भी झूम रहे हैं और दूसरों को भी झूमने का आदेश देते हैं—

किस नाज़ से वो देख घटा बाग़ में लोटी
नव उम्र फ़ज़ा झूम गई खोल के चोटी
बरखा से खरी हो गई जो चीज़ थी खोटी
जुंबिश में उधर सब्ज़ा इधर बीर-बहूटी
हर बाग़ मे, हर राग में, हर राह में, हर सू
ए दौलते-पहलू[1]

शाख़ों में झमाझम है, फ़ज़ाओं में रवानी
बहती हुई चहकार, मचलता हुआ पानी
भौंरें हैं कि उड़ती है कहानी प कहानी
इक ख़ेमा है, और ख़ेमाए-रंगीन जवानी
भीगे हुये पौदों की ये चुभती हुई ख़ुशबू
ए दौलते-पहलू
हाँ, तान उड़ा तान, क़मरपारा-ओ[2] गुलरू[3]
ए दौलते-पहलू

शीशों में ये हरबार छलकती हुई बूँदें
शाख़ों में ये मय-रेज़[4] टपकती हुई बूँदें
ये दूब के रेशों से ढलकती हुई बूँदें
बूँदों के मज़ीरों में ये बजते हुये घुँघरू
ए दौलते-पहलू

हाँ तान उड़ा तान, क़मरपाराओ-गुलरू
ए दौलते-पहलू

---

(१) बग़ल का धन, प्रेमिका (२) चाँद के टुकड़े (३) गुलाब की तरह रूप रखने वाला (४) मधुपूर्ण

घनघोर घटाओं में ये ख़्वाबों के फ़साने
बौछार में, हारों के ये टूटे हुये दाने
पुरवाई की सनसन में ये शाख़ों के तराने
बहते हुये ये सुर, ये बरसते हुये गाने
ये मोर की झंकार पपीहे की ये पीहू
ए दौलते-पहलू
हाँ, तान उड़ा तान, क़मरपाराओ-गुलरू
ए दौलते-पहलू

ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' प्रकृति के इस चित्रण में नारी की भी कल्पना मिल करते हैं। नारी उनकी नज़र में कोई खिलौना नहीं बल्कि एक देवी जिससे प्रकृति का भी शृंगार हो जाता है। उनकी कविता 'एक मुशाहदा' नाहज़ा हो—

भीग चुका है रात का दामन तारे झिलमिल होते हैं
जाग उठी है सुब्ह की देवी दुनिया वाले सोते हैं
पूरब में कुछ हलकी हलकी सौंलाहट सी छाई है
पहली करन नज़रों से नेहाँ[1] मसरूफ़े-ख़ुल्दआराई[2] है
दूर यहाँ से दूर उफ़ुक़[3] पर कच्ची चाँदी गलती है
फ़ितरत की दोशीज़ा रुख़ पर नूर का ग़ाज़ा मलती है
घाट प इक लड़की गंगा से जल भरने को जाती है
उठती जवानी, रूप निराला चलती है और गाती है
गाल दमकते कुन्दन जैसे, आँखों से मय ढलती है
काफ़िर गेसू दोश प बिखरे मस्त अदा से चलती है
कौन है ये संगीत की रानी, किन आँखों का तारा है ?
जिसके ग़म में गाती है वो कौन मुक़द्दर वाला है ?
अंचल सारा गूँज रहा है मीठी मीठी तानों से
झाँक रही है राग की देवी आकाशों ऐवानों से
रस की भरी आवाज़ हवा की लहरों में लहराती है
नग़मों का इक जाल फ़ज़ा में जैसे बुनती जाती है

(१ छिपी २) स्वर्ग को सजाने में व्यस्त ३ क्षितिज

पंचम तानों से सीने में दीपक जलते जाते हैं
शोलों के साँचे में जैसे नग़मे ढलते जाते हैं

गीत के हर-हर बोल से दिल में नशतर टूटा जाता है
हाथ से मेरे होश का दामन 'ताबाँ' छूटा जाता है

वर्तमान रोमांसवादी कविताओं में गीतों को विशेष प्रोत्साहन मिला है। ये गीत विषय-वस्तु के अतिरिक्त अपनी आकृति की दृष्टि से भी महत्व रखते हैं। पहले गीतों का रूप अवधी या ब्रजभाषा का होता था परन्तु आज खड़ी बोली में गीतों की भरमार है। आज गीतों से वही सब काम लिया जा रहा है जो आज़ादी से पहले ग़ज़ल, क़त्आ, रुबाई और नज़्म से लिया जाता था। उर्दू में ये अपने भाषा-रूप में भी मनोहर हैं। इनमें अरबी फ़ारसी या अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों के बजाय ख़ालिस हिन्दुस्तानी शब्दों का प्रयोग होता है, जिससे हिन्दी और उर्दू के भेद की दीवार भी टूटती नज़र आती है। स्वतन्त्रता के बाद से गीतों का एक समुद्र उर्दू में आ गया है जिससे मोती निकालना भी सरल कार्य नहीं है। उदाहरण के लिये कुछ उद्धरण देख लीजिये—

महक वो केसर तन की ! होश उड़ाये
आँखें ! रंग की इक पिचकारी
जैसे दिन से आँख मचोली
खेलती हो अँधियारी !
बँगला देस की सुन्दर बाला
उसके गले में
कोमल कमलों की इक माला

अंग अंग में चहकार
आँखों में इक उलझी बोली
मुख में भरी हुई झंकार

ढला ढला ये रूप
जैसे चाँद की धूप
या जैसे संगीत
कोई 'मसूद' का गीत

खेलती थी कानन कानन में
फूलों के कुछ सुन्दर खेल
केवल कलियों से था मेल
आँख नशीली, बात रसीली
आँखें ! जिनमें लाखों सपने
सागर, लहरें, झीलें—ऊदी घाटें
राधा कृष्ण की आँख मचोली !

०—डॉ० मसूद हुसैन ख़ाँ

मंज़िल कितनी दूर मुसाफ़िर, मंज़िल कितनी दूर...
आते जाते गले मिलेंगे
अपना अपना भेद कहेंगे
अपना अपना रस्ता लेंगे
तारीकी और नूर मुसाफ़िर, मंज़िल कितनी दूर....
कब तक गिन-गिन क़दम उठायें
कब तक तेरी शान बढ़ायें
तुझसे शायद आगे जायें
दौलत और ग़ुरूर मुसाफ़िर, मंज़िल कितनी दूर...
दुख की धूप और सुख का साया
इनसे कोई न बचने पाया
क़ुदरत ने है यही बनाया
रस्ते का दस्तूर मुसाफ़िर, मंज़िल कितनी दूर...
अब तक लाखों ज़ुल्म सहे हैं
अब तक नदियों अश्क बहे हैं
रस्ता रस्ता चौंक रहे हैं
मेहनत और मज़दूर मुसाफ़िर, मंज़िल कितनी दूर...

०—'नज्म' आफ़न्दी

हम हैं मछेरे
मौत की ज़द में डाले हमने जीवन डेरे
हम हैं मछेरे
अपनी दुनिया, अपना मोक़द्दर
अपने बाज़ू की पतवारें

जीवन नैया पार लगेगी
लाख ये मौजों की दीवारें डालें घेरे
हम हैं मछेरे
मौत की ज़द में डाले हमने जीवन डेरे
०—हिमायत अली 'शाएर'

फागुन की ये शाम सोहानी गीत-सुनाती जाये
डूब रहा है सूरज जैसे मेंहदी कोई छोडाये
हौले-हौले पवन गली में फूल बिछाती जाये
महुवा की डाली प बैठा पंछी तान उड़ाये
दूर किसी महवे के नीचे बनसी कोई बजाये
पायल की छुन छुन में गोरी पिया मिलन को जाये
सखियाँ मोहे छेड़ रही हैं, तोहे न कोई बोलाये
मेरे जूड़े की कलियाँ भी बन गईं खिलकर फूल
आये नहीं तुम जाने कैसी हो गई मुझसे भूल
फूल-सा कोमल-कोमल मुखड़ा आँचल में कुँभलाये
०—'निसार 'सहवाई

निस दिन दीप जलाये पगली, पाये घोर अँधेरा
कौन कहे अब इसे हटीली, अन्त यही है तेरा
रैन की गोदी खाली करके चाँद सितारे भागे
अँधियारे में पीछे-पीछे, ज्योती आगे-आगे
होते-होते नैनवा से ओझल हुआ सवेरा
छाया घोर अंधेरा
अन्त यही है तेरा

दूर-दूर तक एक उदासी, सड़ी बसी इक छाया
धरती से आकाश तक उड़कर आशा ने क्या पाया
चारों खूँट चली अँधियारी, चिन्ताओं ने घेरा
छाया घोर अँधेरा
अन्त यही है तेरा

कौन चुने अब टूटे तारे ? जोत कहाँ से आये
कौन गगन पर सेज बिछाये ? फूल तो हैं मुरझाये
कौन है जो इस नगरी में अब आकर करे बसेरा
निस दिन दीप जलाये पगली, पाये घोर अँधेरा
कौन कहे अब इसे हटीला, अन्त यही है तेरा

०—सुलताना क़मर

गीतों के सम्बन्ध में सिनेमा का ज़िक्र ख़ासतौर से आता है और इसमें सन्देह नहीं कि इनकी बदौलत उर्दू के प्रसार का बहुत कुछ काम भी हुआ है। सिनेमा की कहानियाँ (सेन्सर बोर्ड के प्रमाणपत्र पर अधिकतर भाषा के कालम में उर्दू न रखने पर भी) अपने दामन में कुछ उर्दू गाने अवश्य लाती है जो उसके प्रसिद्ध कवियों की रचनायें होती हैं। पहले 'आरज़ू' लखनवी इसके लिये मशहूर थे, फिर जोश ने भी प्रवेश किया। आज के गीतकारों में 'शकील', 'साहिर', 'मजरूह', 'शैलेन्द्र', 'हसरत', प्रदीप और 'नख़शब' आदि प्रमुख हैं। इनमें कुछ श्रेष्ठ वर्ग के कवि भी हैं जिनका साहित्य-संधान उर्दू में प्रमाणित है। इन लोगों को धुन बनाने के लिये श्रेष्ठ वर्ग के संगीतकारों की सहायता उपलब्ध होती है और विषय भी कहानी के कथानक से मिल जाता है, अतः इन्हें इन गीतों में भाषा और कला के प्रदर्शन का अधिक अवसर मिलता है। यद्यपि संगीतकारों और कहानीकारों के हठ पर अकसर इन्हें अपनी कला, भाषा और ज्ञान सब का बलिदान भी देना पड़ता है और ऐसे शब्दों को भी गीतों में पिरोना पड़ता है जिनका कोई अर्थ ही नहीं होता। इससे केवल संगीत के चढ़ाव-उतार की पूर्ति हो जाती है। फिर भी सामूहिक रूप में इन गीतों से उर्दू के काव्य-साहित्य में एक प्रकार की वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिये सिनेमा के भी कुछ गीत देख लीजिये ताकि तुलनात्मक दृष्टिकोण प्राप्त करने में सुविधा हो—

जीवन के सफ़र में राही
मिलते हैं बिछड़ जाने को
और दे जाते हैं यादें
तनहाई में तड़पाने को
रो-रो के इन्हीं राहों में खोना पड़ा इक अपने को
हँस हँस के इन्ही राहों में या 'बेगाने' को

अब साथ न गुज़रेंगे हम, लेकिन ये फ़ज़ा वादों को
दोहराती रहेगी बरसों, भूले हुये अफ़सानों को
तुम अपनी नई दुनिया में, खो जाओ पराये बनकर
जी पाये तो हम जी लेंगे, मरने की सज़ा पाने को

०—'साहिर' लुधयानवी

आज मेरे मन में सखी बाँसुरी बजाये कोई
प्यार भरे गीत सखी बार-बार गाये कोई
बाँसुरी बजाये सखी, सखी, गाये सखी
कोई छबेलवा हो, कोई अलबेलवा

रंग मेरी जवानी का लिये झूमता घर आया है सावन
हो सखी, हो री सखी, आया है सावन, मेरे नैनों में है साजन
इन ऊदी घटाओं में, हवाओं में, सखी नाचे मेरा मन
आँगन मे सावन मन भावन हो जी
दिल के हिंडोले प मोहे झूलना झुलाये कोई
प्यार भरे गीत सखी......

कहता है इशारों में कोई, आ मोहे अम्बवा के तले,
मिल भला वो कौन है बायल
मैं नाम न लूँ लाज लगे, लाज सखी, धड़के मेरा दिल,
हो सखी धड़के मोरा दिल
आँगन मे सावन, मन भावन हो जी
तार प जीवन के मधुर रागनी सुनाये कोई
प्यार भरे गीत सखी......

०—'शकील' बदायूनी

रात की तनहाई में हमने क्या-क्या धोके खाये हैं
अपना ही जब दिल धड़का तो हम समझे वो आये हैं
सूनी राहें ठंडी आहें या फिर ग़म के साये हैं
चाँद सितारे निकले हैं लेकिन मेरे लिये क्या लाये हैं
जब से हुये तुम हम से जुदा, ये हाल है अपनी आखों का
जैसे दो बादल सावन के आपस में टकराये हैं

कब तक रस्ता रोक सकेगी ग़म की अँधेरी दीवारें
देखो हमने दो नैनों में लाखों दीप जलाये हैं

०—क़तील शफ़ाई

चुपके-से मिले प्यासे-प्यासे कुछ हम, कुछ तुम
क्या हो जो घटा खुल के बरसे रुम-झुम, रुम-झुम
झुकती हुई आँखों में हैं बेचैन-से अरमान कई—मद्धम
रुकती हुई साँसों में हैं ख़ामोश तूफ़ान कई—मद्धम
ठंडी हवा का शोर है, या प्यार का संगीत है—मद्धम
चितवन तेरी इक साज़ है, धड़कन मेरी इक गीत है—मद्धम

०—'मजरूह' सुलतानपुरी

खोया-खोया चाँद, खुला आसमान
आँखों में सारी रात जायेगी
तुम को भी कैसे नींद आयेगी
मस्ती भरी, हवा जो चली, खिल-खिल गई, ये दिल की कली
मन की गली में खलबली है कि उनको बुलाओ
तारे चले, नज़ारे चले, संग-संग मेरे वो सारे चले
चारों तरफ़ इशारे चले, किसी के तो हो जाओ
ऐसी ही रात, भीगी-सी रात, हाथ में हाथ, होते वो साथ
कह लेते उनसे, दिल की ये बात, अब तो न सताओ

०—शैलेन्द्र

उर्दू काव्य की प्रेम सम्बन्धी प्रवृत्तियों का वर्णन ग़ज़ल के ज़िक्र के बिना अधूरा रह जायेगा। सच तो यह है कि ग़ज़ल के बिना उर्दू की शाएरी ही अधूरी है। प्रेम और ग़ज़ल में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ग़ज़ल की रचना ही प्रेम के स्रोतों से हुई है। यद्यपि इसमें प्रारम्भ-से ही सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विचार भी लिपिबद्ध किये गये हैं परन्तु सामूहिक रूप में इसे प्रेमियों के हृदय की वाणी बनने का सौभाग्य प्राप्त है। इस शैली की विशेषता यह है कि बड़ी से बड़ी बात को कम से कम शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि समझने वाला समझ भी ले और बात ज़्यादा खुले भी नहीं। इस के लिये कवि विभिन्न प्रतीकों (Symbols) का सहारा लेता है—गुल, बुलबुल, चमन, सय्याद, गुलचीं, वाएज़ और मोहतसिब इत्यादि। आज

इन प्रतीकों से कुछ और काम भी लिया जाता है। वे अपने शाब्दिक अर्थ तक ही सीमित नहीं हैं। बुलबुल से एक पीड़ित, मजबूर व्यक्ति, देश या जाति, सय्याद व गुलचीं से स्वार्थी, शत्रु, वाएज़, मुल्ला और मोहतसिब से कर्महीन नेता इत्यादि अभिप्राय लिये जाते हैं। ग़ज़ल का शेर साधारण रूप में प्रेम-भावों का आलेखन करता है परन्तु कभी-कभी उसका राजनीतिक एवं सामाजिक उद्देश्य भी होता है। आधुनिक ग़ज़लों में कला के साथ विचारों को अधिक महत्व दिया गया है। बढ़िया विषय सामग्री की तलाश में उन्होंने दूसरी भाषाओं का भी अध्ययन किया है और जहाँ भी जवाहर मिले हैं उनसे अपने को सजाने की कोशिश की है। उदाहरण के लिये कुछ नई ग़ज़लें देख लीजिये—

अगर न ज़ोहरा-जबीनों[१] के दरमियाँ गुज़रे
तो फिर ये कैसे कटे, ज़िन्दगी कहाँ गुज़रे
मुझे ये वहम[२] रहा मुद्दतों कि जुरअते-शौक़[३]
कहीं न ख़ातिरे-मासूम[४] प गरां[५] गुज़रे
हर इक मोक़ामे-मोहब्बत बहुत ही दिलकश था
मगर हम अहले-मोहब्बत कशाँ-कशाँ[६] गुज़रे
मेरी नज़र से तेरी जुस्तजू[७] के सदक़े में
ये इक जहाँ ही नहीं सैकड़ों जहाँ गुज़रे
हुजूमे-जलवा[८] में परवाज़े-शौक़,[९] क्या कहना
कि जैसे रूह सितारों के दरमियाँ गुज़रे
बहुत हसीन मनाज़िर भी हुस्ने-फ़ितरत[१०] के
न जाने आज तबीअत प क्यों गरां गुज़रे
बहुत हसीन सही, सोहबतें गुलों की मगर
वो ज़िन्दगी है, जो काटों के दरमियाँ गुज़रे
बहुत अज़ीज़ हैं मुझको उन्हीं की याद 'जिगर'
वो हादसातें-मोहब्बत[११] जो नागहाँ[१२] गुज़रे

०—'जिगर' मुरादाबादी

(१) शुक्र का माथा रखने वाला, अतिसुन्दर (२) भ्रम (३) उल्लास का साहस (४) निश्छल प्रकृति (५) भारी (६) धीरे-धीरे (७) जिज्ञासा (८) दर्शन-समूह (९) की उड़ान (१० प्राकृतिक सौन्दर्य ११) प्रेम घटनायें १२) अकस्मात

शामे-ग़म कुछ उस निगाहे-नाज़ की बातें करो
बेख़ुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो
निक़हते - ज़ुल्फ़े - परीशाँ[1], दास्ताने - शामे - ग़म
सुब्ह होने तक इसी अन्दाज़ की बातें करो
हर रगे-दिल[2] वज्द[3] में आती रहे, दुखती रहे
यूँ ही उसके जा-बो-बेजा नाज़ की बातें करो
जो अदम[4] की जान है, जो है पयामे-ज़िन्दगी
उस सुकूते-राज़[5] उस आवाज़ की बातें करो
नाम भी लेना है जिसका इक जहाने-रंगो बू
दोस्तो उस नव बहारे-नाज़ की बातें करो
कुछ क़फ़स[6] की तीलियों से छन रहा है नूर-सा
कुछ फ़ज़ा कुछ हसरते-परवाज़[7] की बातें करो
०—'फ़िराक़' गोरखपुरी

दर्दे-उलफ़त ख़ूने-तमन्ना तुझमे मिला कर देखेंगे
रंग में डूबा फिर ये फ़साना उनको सुना कर देखेंगे
यूँ नहीं आते ये तो सुनकर आयेंगे आकर देखेंगे
उन से अलग अब उनकी मोहब्बत दिल में बसा कर देखेंगे
लाख हो जज़बज़, तेहा आये, तेवरी चढ़े, क्या होता है
आँख मिला कर देखने वाले आँख बचा कर देखेंगे
सब्र कहाँ तक, जब्र कहाँ तक, तरसी निगाहें उठ ही गईं
सख़्त है बरहम, आग बगूला, फिर भी सुना कर देखेंगे
किस से कहिये और क्या कहिये, सुनने वाला कोई नहीं
कुछ घुट-घुट कर देख लिया, कुछ शोर मचा कर देखेंगे
बात ये कल की है कि 'असर' घर फूँक तमाशा देखा था
अब ये तमाशा भी के चिराग़ भी घर में जलाकर देखेंगे
०—'असर' लखनवी

गले में आप की बाहों का हार बाक़ी है
तो फिर मेरे लिये फ़स्ले-बहार बाक़ी है

(१) बिखरे बालों की ख़ुशबू (२) हृदय-नाड़ी (३) उन्मत्तता (४) अनस्तित्व (५) भेदपूर्ण नीरवता (६) पिंजड़ा (७) उड़ने की अभिलाषा।

वो इस नज़र से सरे-बज़्म[१] देखते हैं मुझे
कि जैसे दिल प मेरा अख़्तियार बाक़ी है
वो जा चुके हैं और आँखों प एतबार नहीं
वो आ चुके हैं मगर इन्तेज़ार बाक़ी है
ग़ुरूरे-हुस्न[२] ने परदे उठा दिये हैं तो क्या
अभी मेरी निगहे-परदादार बाक़ी है
'जमील' आज भी इक घूँट पी नहीं सकते
तेरी नशीली नज़र का ख़ुमार बाक़ी है

०—जमील मज़हरी

तूफ़ान में भी बारिशे-ग़म होने न देंगे
आखों को तेरी याद में नम होने न देंगे
सुल्तानिए-दीनारो-दिरम[३] होने न देंगे
हाँ-हाँ तेरी पायल की क़सम होने न देंगे
ये दर्द तो आरामे-दोआलम[४] से सिवा है
ए दोस्त तेरे दर्द को कम होने न देंगे
उठ जायेंगे जूँ-बादे-सबा[५] बज़्म से तेरी
तुझको भी ख़बर तेरी क़सम होने न देंगे
दिल अश्क है और पैरहने-सुर्ख़[६] है शोला
हम शोलओ-शबनम को बहम[७] होने न देंगे

०—'साग़र' निज़ामी

दर्द बेकैफ़[८], ग़म बेमज़ा हो गया
हो न हो कोई मुझ से ख़फ़ा हो गया
ग़म ने इस तरह गिन-गिन के बदले लिये
मुस्कुराना भी इक हादसा[९] हो गया
ज़िन्दगी का ये आलम है तेरे बग़ैर
शाख़ से फूल गोया[१०] जुदा हो गया
दिल कुछ इस तरह धड़का तेरी याद में
मैं ये समझा तेरा सामना हो गया

---

(१) सभा में (२) सौन्दर्य का अभिमान (३) धन-दौलत का राज्य (४) दोनों जहान के आराम (५) पुर्वाई हवा की तरह (६) लाल वस्त्र (७) एक साथ (८) नीरस (९) दुर्घटना (१०) जैसे।

इश्क़ में जान भी मैंने देदी 'ख़ुमार'
आज हक़ ज़िन्दगी का अदा हो गया
०—'ख़ुमार' बाराबंकवी

कितने अलफ़ाज़[1] की तख़लीक़[2] हुआ करती है
कितनी शीरीं[3] है बज़ाहिर ये तुम्हारी बातें
और जो कोई सुने ख़ून के आँसू रोये
हमको प्यारी है मगर फिर भी तुम्हारी बातें
हम मिलें या न मिलें फिर भी कभी ख़्वाबों में
मुस्कुराती हुई आयेगी हमारी बातें
हाय अब जिन प मसर्रत[4] का गुमाँ होता है
अश्क बन जायेगी इक रोज़ ये प्यारी बातें
जब कोई याद दिलायेगा सरे-शाम तुम्हें
जगमगा उट्ठेंगी तारों मे हमारी बातें
उनको मग़रूर[5] बनाया है बड़ी मुशकिल से
आइना बनके रहें काश हमारी बाते
वो बहुत सोचें, तड़प उट्ठें मगर ए 'बाक़र'
याद आये तो न आयें ये तुम्हारी बातें
०—बाक़र मेहदी

कोई समझे तो कुछ बेजा नहीं ख़ामोशियाँ मेरी
कि अब उनका फ़साना बन गई है दास्ताँ मेरी
इसे सब हुस्न की फ़ितरत कहें, मैं ये समझता हूँ
तेरी नीची निगाहे कह रहीं हैं दास्ताँ मेरी
वो दिल की ख़ाक पर अनजान बनकर मुस्कुराते हैं
मज़ा जब हो कि हर ज़र्रा सुना दे दास्ताँ मेरी
जिधर जाता हूँ, रंगीं महफ़िलें आबाद पाता हूँ
तुम्हारी आरज़ू ने लूट लीं तनहाइयाँ मेरी
मै अपने दिल की धड़कन में कोई आवाज़ सुनता हूँ
ख़ुदा जाने तुम्हारा ज़िक्र है या दास्ताँ मेरी
०—'शाहिद' सिद्दीक़ी

(१) शब्दों (२) रचना (३) मीठी (४) प्रसन्नता (५) अभिमानी।

अपनी जफ़ा प आप पशेमान[1] हो गये
हम इस अदा प आपकी क़ुरबान हो गये
मेरी निगाह से वो कभी ख़ुद को देखने
आईना देख कर ही जो हैरान हो गये
ए दोस्त तेरे हुस्ने-गुरेज़ाँ[2] का शुक्रिया
क्या-क्या निगाहे शौक़ पर एहसान हो गये
वो रास्ते कि जिन से गुज़रना मोहाल था
तुम आगये जो साथ तो आसान हो गये
'मोहसिन' ये रात अपने लिये आख़िरी सही
इस रात से सहर के तो इमकान हो गये

०—मोहसिन ज़ैदी

ग़ज़ल की प्रकृति प्रेम और मोहब्बत के भावों से तैयार हुई है। यद्यपि इसमें प्रारम्भ से ही सांसारिक द्वंद्व को भी स्थान प्राप्त होता रहा है परन्तु सामूहिक रूप में ग़ज़ल का जीवन हुस्न व इश्क़ से परिपूर्ण है। इसका 'मिज़ाज लड़कपन से आशक़ाना' रहा है। उर्दू ग़ज़ल के महान भण्डार में स्वतंत्रता के बाद भी आदर योग्य वृद्धि हुई है। इसका संक्षिप्त संकलन भी एक अलग पुस्तक तैयार कर देने के लिये काफ़ी है। उर्दू के अधिकांश कवि ग़ज़ल ज़रूर कहते हैं उनमें सबका विस्तृत वर्ण कठिन है। आइये विस्तार से बचने के लिये उनकी ग़ज़लों से छाँटे गये कुछ फुटकर शेर देख लीजिये—

हाथ से किसने साग़र पटका मौसम की बेकैफ़ी प
इतना बरसा टूट के बादल डूब चला मयख़ाना[3] भी
अदा बिखरे बालों की अल्हड़पने की
परीशानकुन है परीशाँ नहीं है

०—'आरज़ू' लखनवी

आप क्या पूछते हैं हिज्र में दिल की हालत
आप की याद जो हमदम है तो आराम बहुत है
बे-कहे उन प है रौशन मेरे दिल की ख़्वाहिश
बेज़बानी हुई जाती है ज़बाँ आज की रात

०—'हसरत' मोहानी

(१) लज्जित (२) विमुख सौंदर्य (३) मधुशाला।

जाम शरमाये सुराही को पसीना आगया
आप को भी बात करने का क़रीना आगया
फिर कोई फूल उड़ा है तेरी अँगड़ाई का
साक़िया[1] ! चाँद सितारों को हँसी आई है

०—अब्दुल मजीद 'अदम'

वो हर बार मिलते हैं इस शान से
मिले जिस तरह कोई मुद्दत के बाद
बहुत सादा हक़ीक़त है मोहब्बत
ज़माना रंग भरता जा रहा है

०—'रविश' सिद्दीक़ी

तुम आ रहे हो कि बजती हैं मेरी ज़ंजीरें
न जाने क्या मेरे दीवारो-बाम कहते हैं
है यही बात यूँ भी और यूँ भी
तुम सितम या करम की बात करो

०—फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'

तुम मेरे लिये अब कोई इल्ज़ाम न ढूँढो
चाहा था तुम्हें इक यही इल्ज़ाम बहुत है
इतने क़रीब आके भी क्या जाने किस लिये
कुछ अजनबी से आप हैं, कुछ अजनबी से हम

०—'साहिर' लुधयानवी

न मिट सकेंगी ये तनहाइयाँ मगर ए दोस्त
जो तू भी हो तो तबीअत ज़रा बहेल जायें
जफ़ा के ज़िक्र प तुम क्यों सँभल के बैठ गये
तुम्हारी बात नहीं बात है ज़माने की

०—'मजरूह' सुल्तानपूरी

गुन-गुनाती सी कोई रात भी आजाती है
आप आते हैं तो बरसात भी आजाती है
तू वो झोंका है कि फूलों की महक है जिसमें
तू गुज़र जाये जिधर से वहीं गुलज़ार बने

०—क़तील शफ़ाई

---

(१) मधु पिलाने वाले ।

एक हलका-सा तबस्सुम, एक गहरा सा ख़ुमार
हाय ! वो आँखें कि तारे देखते हों कोई ख़्वाब
तुमको गये हुये तो बहुत देर हो चुकी
अब तक तुझे गले से लगाये हुये हैं हम

०—जाँनिसार 'अख़्तर'

भूले तो जैसे रब्त[1] कोई दरमियाँ न था
इतना बदल भी सकते हो तुम ये गुमाँ न था

०—ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ'

ए जाने-तमन्ना[2] इनमें ज़रा अन्दाज़े-करम[3] शामिल करदे
मैं तेरी निगाहों के सदक़े[4] तकमीले-शिकस्ते-दिल[5] करदे
वो मोक़ाम मैकदा है वो जहाँ-जहाँ रुके हैं
है क़दम-क़दम प गुलशन, वो गुज़र गये जिधर से

०—सिकन्दर अली 'वज्द'

काश कोई सुन सकता मेरे घायल जीवन की फ़रयादें
जो बरसों से गूँज रही हैं इन नैनों के सूनेपन में
रूप है या दीपक की लौ है जिस्म है या महकी फुलवारी

०—नरेश कुमार 'शाद'

हम ऐसे रूठें कि तुमसे न बिन मनाये बने
कभी हमें भी तेरी तरह रूठना आये
और क्या मेरी वफ़ाओं का सिला वो देते
अपना ग़म मुझको दिया है, ये सिला है तो सही

०—कृष्ण मोहन

कोई अपना नहीं है दुनिया में
किससे पूछूँ कि तुम ख़फ़ा क्यों हो
मैं ख़ुद भी सोच रहा हूँ मुझे हुआ क्या है
तुम आगये हो तो क्यों बेक़रारियाँ न गईं

०—'शहाब' जाफ़री

---

(१) सम्बन्ध (२) इच्छाओं की आत्मा, प्रेमिका (३) कृपादृष्टि (४) निछा-वर ५ दिल टूटने की पूर्ति

दिल की धड़कन ने आवाज़ दी है तुम्हें
ग़म से घबरा के मैंने पुकारा नहीं
०—सैयद मुहम्मद 'अंजुम'

नहीं नहीं हमें अब तेरी जुस्तजू भी नहीं
तुझे भी भूल गये हम तेरी ख़ुशी के लिये
०—ज़ोहरा 'निगाह'

मद्धिम-सी हो गई है ग़मे-दिल की रोशनी
शमएँ जला के हम तेरी महफ़िल मे आये हैं
०—ख़ावर नूरी

अजीब चीज़ उमेदे-जवाब होती है
तुम्हें पुकार के चुप हो गया है दीवाना
०—निहाल रिज़्वी

प्रेम सम्बन्धी काव्य के वक्तव्य मे क़तआ और रूबाइयों का ज़िक्र ज़रूरी है। आज के शाएर ग़ज़लों के साथ इस की ओर भी ध्यान दे रहे हैं। सम्भवतः कला की दृष्टि से वे इन्हें मीर अनीस व मिर्ज़ा दबीर इत्यादि के आगे न ले जा सके हों परन्तु विषय वस्तु की विभिन्नता एवं प्रकीर्णता की दृष्टि से उनकी सेवाओं को नकारा नही जा सकता। उन्होंने बहुत-सारे क़ते और रूबाइयाँ जीवन के विभिन्न प्रयोगों पर लिपिबद्ध की हैं। प्रेम के सम्बन्ध में विशेषकर ध्यान दिया गया है। मुशाएरों मे ग़ज़ल या नज़्म के पहले कोई क़तआ या रूबाई पढ़ने का भी आम रिवाज होता जा रहा है जिससे भी प्रोत्साहन मिलता है। कुछ कवियों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है और वे केवल क़तआ व रुबाई कहते हैं। साधारण कवियों ने भी इस ओर ध्यान दिया है और विशिष्टों के सहयोग से बड़ा सुन्दर संकलन तैयार हो गया है। विभिन्न कवियों की कृतियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

लचकीला गात और अवस्था है किशोर
वो चाल कि जैसे मिल के नाचें सौ मोर
कूक उठती हैं कोइलें वो काली ज़ुल्फ़ें
मुँह तकता है चंदरमाँ के धोके में चकोर
०—'फ़िराक़' गोरखपुरी

शरमिन्दा ज़रा चमन को करलूँ आओ
गुलशन से भी कुछ बढ़ के सँवरलूँ आओ
शादाब[1] महकता हुआ ये फूल-सा जिस्म
इकबार तो गोद तुमसे भरलूँ आओ

०—जाँनिसार 'अख़्तर'

सरहदे-होश से गुज़रता हूँ
डूबता हूँ कभी उभरता हूँ
देखकर तेरी मदभरी आँखें
मैं ख़ुद अपनी तलाश करता हूँ

०—नरेश कुमार 'शाद'

आशाओं में कनमनाता है कोई
धीरे-धीरे क़दम बढ़ाता है कोई
आँखों से मेरे गीत छलक जाते हैं
जब रात को बंसुरी बजाता है कोई

०—'तेग़' इलाहाबादी

बिरहा के दिल टटोल, धीरे-धीरे
टाँके दिल के हैं ! खोल धीरे-धीरे
दुखती हुई रग और भी दुख जाती है
ओ पापी पपीहे बोल धीरे-धीरे

०—'शहाब' जाफ़री

(१) हरित ।

नवाँ अध्याय

हास्य एवं व्यंग्य सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ

मानव जीवन में प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता का बड़ा महत्व है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों से लड़ता हुआ, प्रगति की ओर बढ़ता है तो परस्पर संघर्ष में उसकी साँसें भी फूलती हैं। दिल चाहता है कि किसी जगह रुक कर दम ले लिया जाय ताकि फिर नयी शक्ति से आगे बढ़ने का साहस हो सके। ऐसी दशा में हँसना एक घने छायादार वृक्ष का काम देता है। इनसान थोड़ी देर हँसकर अपनी पिछली ऊहापोह से मुक्ति प्राप्त करता है और नवीन साहस से आगे बढ़ता है।

उर्दू में हास्य और व्यंग्य का सिलसिला 'हजो' से शुरू होता है। आधुनिक युग ने इसका संशोधित रूप ग्रहण किया है। आज का कवि जिन व्यक्तियों या समस्याओं को अपने हास्य अथवा व्यंग्य का केन्द्र बनाता है, उनके प्रहसन-पक्ष में छिपे हास्य को सामने कर देता है। हम जब यह नवीन रूप देखते हैं तो चौंक उठते हैं और दूसरे क्षण हँसी फूट निकलती है। कभी-कभी इस हँसी के पीछे रोना भी छिपा रहता है जिसका अनुमान हमें उस समय होता है, जब व्यंग्यकार का अस्त्र अपना कार्य समाप्त कर चुकता है। इस अध्याय में सुगमता के लिये इसे तीन भागों में विभाजित कर लिया गया है—हास्य, व्यंग्य और पैरोडी।

(१) हास्य—केवल हँसने-हँसाने वाली कविताओं का उद्देश्य मानव जीवन में प्रफुल्लता उत्पन्न करना होता है। कवि अपने विनोद पूर्ण विचारों से आनन्द के नये द्वार मुखरित करता है। राबर्ट राप ने हास्य के सम्बन्ध में लिखा है कि इसकी मुस्कान में दया की भावना सम्मिलित होती है। विनोदकार जिस वस्तु का प्रहसन-पक्ष प्रस्तुत करता है, उससे उसे पूर्ण समानुभूति होती है। इसी लिये हास्य से जीवन का निर्माण होता है।

आधुनिक युग में विनोद के लिये कही गयी कवितायें अपनी स्वस्थ

अंगों पर विशेष कर ध्यान दिया है, जो विदेशी समाज से अनुकरण की धुन में ग्रहण किये गये हैं। भारतवासियों का एक वर्ग पश्चिम की प्रत्येक बात नवीनता की धुन में स्वीकार कर लेता है और यह सोचने की फ़िक्र नहीं करता कि कहीं उनके अपने समाज की किसी अच्छी चीज़ को तो क्षति नहीं पहुँच रही है। अन्ध स्वीकरण में आयी हुई सैकड़ों बातों में विज्ञापन द्वारा विवाह-सम्बन्ध भी है। हमारे कवि के सामने इस प्रकार की शादियाँ अपनी असफलता के साथ मौजूद हैं। बिना किसी पूर्व परिचय अथवा सम्पर्क के जीवन भर के लिये सम्बन्ध में पड़ जाने से दोनों पक्षों में जिस प्रकार की अनबन रहती है और भारत की स्थानीय परम्पराओं पर इससे जो चोट पड़ती है वह कवि से छिपी नहीं है। राजा मेंहदी अली ख़ाँ ने अपनी कविता 'ज़रूरते-रिश्ता और तस्वीरें' में लड़के और लड़की के भावों को बताने की सफल कोशिश की है। यूरोपीय समाज ने हमें जिस प्रकार की मनोवृत्ति प्रदान की है, उसमें लड़के और लड़कियाँ विवाह को गम्भीर समस्या का रूप नहीं देतीं। जभी तो लड़की अपनी माता से मँगेतरों के चित्र देखकर कहती है—

मम्मी, इससे नहीं तौबा, करूँगी क़द्र ख़ाक इसकी
मुझे तो लगता है डर इससे, बहुत लम्बी है नाक इसकी
हुई शादी तो पहला काम ? मैं डाइवोर्स माँगूँगी
मैं इसकी नाक पर क्या अपना ओवर कोट टाँगूँगी
नहीं बाबा, नहीं बाबा

नहीं इतना बुरा लेकिन ओवर - एज लगता है
किताबे-आशिक़ी का आख़री ये पेज लगता है
नहीं बाबा नहीं, लगता है ये तो हूबहू डैडी
इसे तो अपना दिल देने को हो जाओगी तुम रेडी
अरी लड़की, अरी लड़की

निगाहें नीची-नीची नाम है एम० ए० लतीफ़ इसका
ख़ोदाया तौबा-तौबा जिस्म है कितना नहीफ़[1] इसका
मेरी नज़रों का पहला तीर भी ये सह नहीं सकता
ये मर जायेगा बेचारा, ये ज़िन्दा रह नहीं सकता
चलो आगे, चलो आगे

(१) क्षीण।

ये शाएर है, ये हर लड़की को आहें भरके तकता है
जब उक्ता जायगा कह देगा मैडम तुझमें 'सकता' है
करेगा शाएरी दिन भर नहीं पैसा कमायेगा
मैं जब माँगूंगी खाना ये मुझे ग़ज़लें सुनायेगा
नहीं बाबा, नहीं बाबा

मम्मी अब बस करो, बस बस, ग़लत हैं सब ये तदबीरें
मोहब्बत में न काम आती हैं तस्वीरें, न तक़दीरें
जो सच पूँछो 'शराबो - इश्क़' सिप करती रही हूँ मैं
वही अच्छा है जिससे 'कोर्ट - शिप' करती रही हूँ मैं

लड़के विवाह के सम्बन्ध में लड़कियों से भी आगे हैं—

पुलिस कप्तान की पोती है ये, इससे नहीं अम्मी
जहाँ डाँटा पुलिस आजायगी फ़ौरन वहीं अम्मी
ज़रा 'फूँ-फूँ' किया तो अपने डेडी से बता देगी
ये ख़ुद बाहर रहेगी और मुझे अन्दर करा देगी
नहीं अम्मी, नहीं अम्मी,

भवें तनती हैं कुत्ता साथ में है तनके बैठी हैं
कलामे - दाग़[1] शायद पढ़के ये बन - ठन के बैठी हैं
कहेगी मेरे कुत्ते के लिये भी पार्टनर लाओ
किसी एलसेशियन कुतिया से आँखे इसकी लड़वाओ
नहीं अम्मी, नहीं अम्मी,

सुना है फ़िल्म में ये हसीना काम करती है
न जाने एक दिन में कितने दिल नीलाम करती है
जो हीरो मिल गया कोई मुझे विलयन बना देगी
ये दो ही चार सीनों में मुझे घर से भगा देगी
नहीं अम्मी, नहीं अम्मी

ग़ज़ाली[2] आँखें, चेहरा फूल, शरमीली नज़र इसकी
हसीं गालों प दो - दो तिल हैं और ग़ायब कमर इसकी

---

(१) दाग़ के काव्य (२) मृग की तरह

मम्मी, ये सरव-क़द[1] लड़की नही मेरे नसीबों में
ये बट जायेगी फ़ौरन शाइरों में और अदीबों में
नहीं अम्मी, नहीं अम्मी

मम्मी अब तो समुन्दर ही में फेंक आओ ये तस्वीरें
नही डालो मेरे क़दमों में तुम शादी की ज़ंजीरें !
अगर इन लडकियों मे एक से शादी करूँगा मैं
यक़ीं है मुझको बाक़ी के लिये आहें भरूँगा मैं
कहो अब तुम ही अम्मी, मैं करूँगा किस तरह शादी
मै डैडी की तरह हरगिज़ क़नाअत[2] का नहीं आदी

प्रगतिशील लेखकों ने सांसारिक कलह और प्रेम-कलह के मिश्र उर्दू-काव्य में नवीन विचार धारा को प्रोत्साहन दिया है। हास्य-सा भी उसके प्रभाव से अलग नहीं। प्रेमवार बर्टनी ने 'आशिक़ की फ़रिया, उसका हास्य-प्रधान रूप प्रस्तुत किया है—

अजनबी शहर में घिसते हुये जूतों की क़सम
मैं कई बार तेरे गाँव से हो आया हूँ
मैं वो मजनूँ हूँ, जो सहरा में नहीं जा सकता
मैं फ़क़त ढूंढता हूँ तुझको गली - कूचों मे
और गाता हूँ मैं फ़िल्मों के पुराने गाने
कोट हाँ कोट तो पहना है कि सरदी न लगे
भूका रहता हूँ मैं हर रोज़ तेरी फ़ुरक़त[3] में
चाँदनी चौक के बाजार में जाकर लेकिन !
मेरी महबूब कहीं मिलता नहीं तेरा सुराग़[4]
तेरी फ़ुरकत में धड़कता है मेरी याद का दिल
चाँदनी चौक के टूटे हुये घन्टे की तरह
फैलते जाते हैं हर सम्त भयानक साये
तू अगर आये तो फिर चाँद निकल सकता है
सोचता हूँ कि किसी रात तेरे आने पर
बैठकर कार में 'पिकनिक' के लिये आयेंगे

(१) सरव की तरह लम्बाई रखने वाली (२ सन्तोष (३ वियोग (४) प

और फिर बैठके जमना के किनारे दोनों
चाँदनी रात में हम मूँगफली खायेंगे

उर्दू की लोक-प्रिय ग़ज़ल ने जीवन के अनेक मूल्यों की तरह विनोदात्मक काव्य पर भी प्रभाव डाला है। प्रारम्भ में ग़ज़ल में ही हास्य सम्बन्धी विचार भी लिपिबद्ध होते थे लेकिन बाद में जब अनुभव हुआ कि तबियत की रवानी जिस प्रकार के विचार लिखाना चाहती है ग़ज़ल की गम्भीरता उन्हें सहन नहीं कर सकती तो ग़ज़ल के बराबर 'हज़ल' अस्तित्व में आयी। जीवन के समस्त मूल्यों तक इसकी भी पहुँच थी। प्रकीर्णता ने राजनीत तक पहुँचाया तो बातों-बातों में राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार प्रकट होने लगे। 'अहमक़' फफोन्दवी विशेषकर इस रण-क्षेत्र के योद्धा हैं—

गर ख़ोदा मेरी दुवाओं में असर दे साक़ी
आबकारी[1] का मिनिस्टिर मुझे कर दे साक़ी
और रिन्दों को कहाँ मुल्क की ख़िदमत के सिवा
रोज़ के मुर्ग़ ये हर रोज़ के रोज़े साक़ी
अपने रुख़ से जब उठेगा कम्यूनिज़्म नेक़ाब
तेरी आँखों से जभी उट्ठेंगे परदे साक़ी
मिल ही जायेगी ग़रीबों को भी आख़िर मे कभी
हैं जिधर साहबे - ज़र[2] पहले उधर दे साक़ी
ख़रबुज़े हिन्द के खायेंगे तो लब चाटेंगे
ये तेरे काबुलो-क़न्धार के सरदे साक़ी

हज़ल कहने वाले कवियों की उर्दू में कमी नहीं। आधुनिक युग में उनकी संख्या सैकड़ों से हज़ारों तक है। ये कवि ग़ज़ल से प्रभावित है और उसी के आधार पर अपने विचार में नूतनता उत्पन्न करते हैं। ग़ज़ल की तरह हज़ल में भी मानव-जीवन, समाज, राजनीति, ईश्वर और धर्म इत्यादि का उल्लेख होता है—

मशरिक़ प भी नज़रें हैं मग़रिब प भी नज़रें हैं
ज़ालिम के तख़य्युल की ख़म्बान अरे तौबा

(१) मद्यविभाग (२) धन वाले।

दुज़दीदा[1] निगाहों ने बदनाम किया उनको
पकड़े गये चोरी में कसान अरे तौबा
उनकी अफ़शाँ भरी चोटी प गुमाँ होता है
कोई टूटा हुआ दुमदार सितारा तो नहीं
हुस्न की ग़लती, मुजरिम इश्क़; मारो घुटना फूटे आँख
बिजली की रोशनी में चले आइये कलीम
लम्बे हैं हाथ में यदे-बैज़ा[2] लिये हुये
०—शौक़ बहराइची

ये क़रदिया हैं सितारों को ज़ौफ़शाँ[3] न कहो
ये उनके सर का दुपट्टा है आसमाँ न कहो
हुआ है तुम प 'फ़्लू' का ये तीसरा हमला
कफ़न मँगाओ, हकीमों से दास्ताँ न कहो
ये मयकदा है निकालो रकम, पियो, खिसको
कहाँ से आये हो क्या हाल है यहाँ न कहो
०—'आफ़ताब' लखनवी

न चाँद है, न सितारे कि अब्र छाया है
ज़रा नज़र ही मिलाओ बड़ा अँधेरा है
ये राह जाती तो है उनके आस्ताने[4] तक
मगर न जाओ न जाओ बड़ा अँधेरा है
सुलग रहा है मगर दिल लपट नही देता
तुम्ही कुछ हाथ बढ़ाओ बड़ा अँधेरा है
०—'क़तील' काशीपुरी

उसको जब से बुख़ार है प्यारे
दिल बहुत बेक़रार है प्यारे
बंध का जिसको मिल गया ठेका
बस उसी की बहार है प्यारे
कल जो घोड़े प चढ़के फिरते थे
उन प घोड़ा सवार है प्यारे
०—'झंझट' मुंगेरी

(१) मूसा के हाथ में प्रकाश देने वाला अण्डे के बराबर सुफ़ेद चिह्न
२ गोरी भरी ३ ४ चौखट।

हास्य-काव्य की रचना मे बडी कलाकारी की आवश्यकता होती है। बात में मखौल का पहलू पैदा करने में कवि को अपने स्तर के नीचे भी आना पड़ता है। जो लोग कला के भार को नहीं सँभाल पाते वे अश्लीलता के खड में गिर पड़ते हैं। वर्तमान कवियों में ए० बी० सेन 'नाशाद' उसी वर्ग से सम्बन्धित हैं। उनका 'कलामे-बेलगाम' वास्तव में बेलगामी की मिसाल है। उनकी कविताएँ साधारणतया रस से ख़ाली हैं और जहाँ उन्होंने उसमें रस भरने की कोशिश की है, अश्लीलता पर उतर आये हैं। उदाहरणार्थ उनकी नज़्म 'सैरे-ईरान' देख लीजिये। अश्लीलता से बचने के लिये इधर-उधर से शेर प्रस्तुत है--

दोशीज़ए-ईरान[1] से ईराँ में मिले हम
बस्ती से बहुत दूर वियाबाँ में मिले हम

बोली कि यहाँ हिन्द से तुम किस लिये आये
क्यों ढूँढते फिरते हो शबिस्तान[2] पराये

शहरों में अनार एक है बीमार बहुत हैं
है जिन्स[3] तो कम और ख़रीदार बहुत हैं

बोतल की झलक देखके दोशीजा हुई मस्त
दौलत की बलन्दी ने किये नाज़ो-अदा पस्त

कहने लगी इस दश्त[4] को आबाद करें हम
अपने दिले-ग़म-दीदा[5] को फिर शाद[6] करें हम

शाएर हो अगर तुम मुझे अशआर सुनाओ
जलती हूँ ग़मे-इश्क़ से कुछ और जलाओ

मैंने ये कहा इश्क़ के है नाम से नफ़रत
औरत की अयाँ होती है हर बात से फ़ितरत

फिर भी मैं तेरे हुस्न से मयनोश[7] रहूँगा
जितना भी पिये जाऊँगा बाहोश रहूँगा

ह्विसकी के लिये आया हूँ मैं नेहरू से डर कर
दिल्ली में वो पीने नहीं देता मुझे दिनभर

---

(१) ईरान की कन्या (२) रात्रिनिवास (३) वस्तु (४) जंगल (५) दुख भरे दिल (६) प्रसन्न (७) शराब पीनेवाला।

परमिट है तेरे पास तो वीराँ में रहूँगा
जब ये न हो तो कैसे मैं ईराँ में रहूँगा

(२) व्यंग्य—हास्य और व्यंग्य के बीच विभाजन-रेखा खींचना आसान काम नहीं है। बहुत से लोग इन दोनों को आपस में इस प्रकार खल्त-मल्त कर देते हैं कि सही तस्वीर का पहचानना असम्भव हो जाता है। व्यंग्य में हास्य के अतिरिक्त भी कुछ चीज़ें होती हैं जो उसे उद्देश्य और वर्णन-शैली द्वारा प्राप्त होती हैं। व्यंग्यकार भौतिक यथार्थ को सामने रख कर उसकी उपयोगिता से व्यंग्य उत्पन्न करता है और उसे अनोखेपन की लय देकर अपनी पृथक् शैली से उद्धृत कर देता है। व्यंग्य अपने दामन में ऐसी नूतनता रखता है कि प्रो० एहतेशाम हुसैन के कथनानुसार व्यंग्यकार भी अपने हृदय में एक प्रकार का 'रुचिकर-दुःख' अथवा 'अनिष्ट-आनन्द' अनुभव करता है। यही वह सीमा है जहाँ व्यंग्य हास्य से पूर्ण रूप में अलग हो जाता है।

व्यंग्य का विषय व्यक्ति, समाज, और प्रकृति से सम्बन्धित होता है, जिसमें सामाजिकता एवं राजनीतिकता को विशेष स्थान प्राप्त है। यहाँ व्यंग्यकार विरोधी तत्वों को पराजित करता है और एक समाज-सुधारक की तरह बुरी बातों से रोकता है। उसकी वाणी में वह शक्ति होती है कि जो भी सुनता है उससे प्रभावित होता है। विरोधी के दिल पर चोट पड़ती है परन्तु वह भी उत्तर में एक मुस्कान छोड़ने पर मजबूर होता है।

स्वतंत्रता के बाद के काव्य में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं के व्यंग्य को बड़ा महत्व प्राप्त है। भारत एक गणतंत्र राज्य है और उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिये अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर सचेष्ट है। इन योजनाओं को सफल बनाने के लिये धन की ज़रूरत है जो अन्य साधनों के अतिरिक्त कर द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। व्यंग्यकार इस कर प्रथा को उचित नहीं समझता। उसका विचार है कि पीड़ित जनता कर के बोझ से दबी जा रही है अतः कर पर व्यंग्य करता है और विनोद के साथ अपनी आवाज़ सरकार तक पहुँचाता है। 'मख़मूर' जालन्धरी 'टैक्सों की भरमार' से परीशान होकर कहते हैं—

लिपिस्टिक, पाउडर और रूज लगाया न करो
लगने वाला है मेरी जाँ लबो-रुख़सार[1] प टैक्स

(१) होंठ व गाल।

बन-सँवर कर सुए-बाज़ार भी जाया न करो
कहीं देना न पड़े रेशमी शलवार प टैक्स

रोज़ ख़त लिख के मुझे प्यार जताया न करो
है ख़बर गर्म कि लगने को है अब प्यार प टैक्स

गोद भरने की दुआ आज से माँगा न करो
कहीं लग जाये न इक नन्हें से 'इज़हार' प टैक्स

ग़ुस्लख़ाने में नहाते हुये गाया न करो
वरना लग जायेगा गाये हुये अशआर प टैक्स

अपनी अम्माँ से ये कह दो कि वो खाँसा न करे
थूकते थूकते लग जायेगा दीवार प टैक्स

जल्द मैके से चली आओ, सुना है मैंने
तै हुआ है कि लगे हिज्र[1] के आज़ार[2] प टैक्स

साहित्य के अन्य कलाकारों की तरह विनोदकार भी जन-जीवन की टीका-टिप्पणी करते हैं। स्वस्थ और अस्वस्थ तत्वों का परिचय कराने के अतिरिक्त वे समाज एवं सरकार के कृत्यों पर भी दृष्टि डालते हैं। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं से आँकड़ों की चाहे जो उन्नति हुई हो परन्तु साधारण जन आज भी भूख, बेरोज़गारी और मँहगाई से उसी प्रकार पीड़ित हैं। टैक्सों के बढ़ते हुये तूफ़ान में उनकी कमर और भी टूट जाती है। परिणाम-स्वरूप जनता में इन राजकीय योजानाओं से सहानुभूति कम हो गयी है। उर्दू कवि भी इसी प्रकार सोचता है। 'वाही' अज़ीमाबादी कहते हैं—

मैं हर तरह से ख़ुर्मो-असूदा[3] हाल था
जिस वक़्त इब्तेदा हुई 'पहले प्लान' की
आपानी तर्ज़े-काश्त को होता गया फ़रोग़[5]
क़िसमत भी साथ साथ बढ़ी जौ की धान की
जब 'दूसरा प्लान' चला ज़ोरो-शोर से
हर शय फ़रोख़्त हो गयी अपने मकान की
अब 'तीसरे प्लान' का नक़्शा भी बन चुका
अब के न तन की ख़ैर है न अपनी जान की

(१) वियोग (२) बीमारी (३) प्रसन्न और सम्पन्न (४) कृषि पद्धति (५) उन्नति।

सदरी के कारख़ाने में 'चौथे प्लान' तक
तैयार होगी खाद मेरे उस्तख़ान[1] की

इसी तरह उत्तर प्रदेश के कुछ नगरों में म्यूनिसिपल बोर्ड के कारपोरेशन हो जाने पर क़ाग़ज़ी तौर पर चाहे जो उन्नति हो गयी हो, परन्तु वास्तविक जीवन में जन-साधारण को किसी प्रकार की विशेष सुविधा नहीं मिली है। इसका अन्दाज़ा करना हो तो अहमद जमाल पाशा का एक क़िता सुनिये--

म्यूनिसिपल बोर्ड से अब कारपोरेशन बना लेकिन
वो लापरवाहीए भंगी जो पहले थी सो अब भी है
अभी तक लोग कूड़ा फेंकते हैं, राहगीरों पर
'वही रफ़तार बेढंगी जो पहली थी सो अब भी है'

'फ़िराक़' गोरखपुरी उर्दू के महान कवि है। उनकी साहित्यिक साधना ने उर्दू-काव्य को नवीन एवं बहुमूल्य विचारधारा प्रदान की है। उनका राजनीतिक विवेक भी सार्वजनीन है। गम्भीर वातावरण में विचार प्रकट करने के अलावा उन्होंने व्यंग्यात्मक रूप में भी राजनीतिक समस्याओं पर अपना मत दिया है—

इलज़ामे-मदाख़लत[2] अभी जारी है
हर साल नई बात हर इक तैयारी है
चोर उलटे कोतवाल को डाँटे
क्या कीजिये, सब समय की बलिहारी है

*

ता-थैया सिखा के छोड़ेंगे तुम्हें
ये अँगुलियों प नचा के छोड़ेंगे तुम्हें
है अंकिल साम आज दुनिया के चचा
इस बार चचा बनाके छोड़ेंगे तुम्हें

*

उनका है रूस से पुराना परदा
करते हैं ये चीन से भी पूरा परदा
घूँघट है बराय-नाम 'लोहिया जी' का
करते हैं वो अमेरिका से काना परदा

(१) हड्डी (२) हस्तक्षेप का आक्षेप।

यारो ठेंगा दिखा के छोड़ेंगे तुम्हें
घर ही में धता बता के छोड़ेंगे तुम्हे
हक़ करके ख्वाने-नेअ़ामते-पाकिस्तान[1]
लेमू व नमक चटा के छोड़ेंगे तुम्हें

राजनीतिक समस्याओं पर आधुनिक व्यंग्यकारों ने बड़ा सुन्दर संकलन प्रस्तुत किया है। उन्होंने सरकार पर टीका-टिप्पणी के साथ उसकी मशीनरी पर भी ध्यान रखा है। दफ़्तरों में काम करने वाले बाबू और अफ़सर विशेषकर उनके ध्यान के केन्द्र बने हैं। सैयद मुहम्मद जाफ़री अपनी कविता 'क्लर्क' में कहते हैं—

ख़ालिक[2] ने जब अज़ल[3] में बनाया क्लर्क को
लौहो-क़लम[4] का जलवा दिखाया क्लर्क को
कुर्सी प फिर उठाया-बिठाया क्लर्क को
अफ़सर के साथ पिन से लगाया क्लर्क को
मिट्टी गधे की डालके उसकी सरिश्त[5] में
दाख़िल मशक़्क़तों को किया सरनविश्त[6] में
जन्नत को गरचे नाज़ था अपने मकीन[7] पर
था उनकी ज़िन्दगी का सहारा स्टीन पर
टी० ए० वसूल करने को उतरा ज़मीन पर
लफ़्ज़े-क्लर्क लिक्खा था लौहे-जबीन[8] पर
इबलीस रास्ते में मिला कुछ सिखा दिया
उतरा फ़लक से थर्ड में इण्टर लिखा दिया

साधारण रूप में इस कविता का उद्देश्य विनोद दीख पड़ता है परन्तु ध्यान देने पर इसके पीछे भारतीय क्लर्क के जीवन की बेचारगी और दुर्दशा का पूर्ण चित्र सामने आ जाता है। वेतन कम है परन्तु समाज के अन्य लोगों के बराबर रहना है। इसके लिये उचित-अनुचित दोनों तरह से प्रयत्न करने हैं। घर से अलग दफ़्तर में भी उसे शान्ति नहीं। काम की अधिकता के अलावा अफ़सरों की नौकरशाही दूसरी तरफ़ है। बेचारा दुनिया

(१) पाकिस्तान के शुद्ध भोजन का उपयोग करके (२) विधाता (३) सृष्टि दिवस (४) तख़्ती व क़लम (५) प्रकृति (६) भाग्य (७) वासी (८) माथे की तख़्ती।

में रहकर नरक का उपभोग करता है। मिर्ज़ा अस्मत देहल्वी ने अपनी रचना 'नौकरी का कांस्टीट्यूशन' में उसके जीवन की समीक्षा की है और व्यंग्यात्मक रूप में समाज व सरकार के अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई है—

करता हूँ नसीहत तुम्हें ए यार हमेशा
तनख़्वाह से बस रक्खो सरोकार हमेशा
भीगी हुई बिल्ली की तरह सिमटे रहो तुम
हर बात पर कहते रहो सरकार हमेशा
दो गालियाँ दिल में भी मगर मुँह से न बोलो
सुनते रहो हुक्काम की धितकार हमेशा
हर काम में इंगलिश को मुक़द्दम रखो लेकिन
हिन्दी का भी करते रहो परचार हमेशा
दफ़्तर में कभी अहले-ग़रज़[1] से न मिलो तुम
करते रहो होटल में ये व्यापार हमेशा
तोहफा कोई देदे तो उसे चुपके से ले लो
हाँ नक़दी से करते रहो इनकार हमेशा
हुक्काम को हर तरह से देते रहो तोहफे
ढूँढ़ा करो हर क़िस्म के त्योहार हमेशा
जो कोई भी 'अस्मत' की नसीहत प चलेगा
ख़ुद भी रहे ख़ुश, ख़ुश रहे सरकार हमेशा

सामाजिक व्यंग्य में व्यक्ति को विषय बनाना अच्छा नहीं है। इसके पहलू में ईर्ष्या, क्रोध एवं अत्याचार की भावना सम्मिलित हो जाती है। सामाजिक समस्याओं और रीतियों पर जो व्यंग्य किया जाता है उसका क्षेत्र भी व्यापक होता है और अश्लीलता भी नहीं आने पाती। धार्मिक-महात्माओं के मज़ार पर प्रत्येक वर्ष 'उर्स' के बहाने जिस प्रकार मानवता का गला घोंटा जाता है उस पर एक सफल व्यंग्य 'बदनाम' ख़ैलापुरी ने 'बम्बई का संदल' में प्रस्तुत किया है। कवि समाज की कुरीतियों से दुखी है और संशोधन चाहता है। वह जानता है कि हलवा-माण्डा के पुजारी उसकी बात न मानेंगे अतः दूसरी तरह से इस अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है—

१

मज़ारे-मुक़द्दस[1] प मेला लगेगा
नफ़ीरी बजेगी, नक़ारा बजेगा
मुहल्ले में हर क़िस्म हुल्लड़ मचेगा
कि दंगल चलेंगे, अखाड़ा चलेगा
चलो आज बाबा का संदल उठेगा

पियेंगे चुल्लू ख़ूब झक्कड़ चलेगा
चिलम के लिये एक लक्कड़ चलेगा
लगाये जो नारा वो फक्कड़ चलेगा
वहाँ आज खच्चड़ का कुल्लहड़ चलेगा
चलो आज बाबा का संदल उठेगा

खनक चूड़ियों की दुकानों प रेला
ग़ज़ब है कि बाबा ढकेलम-ढकेला
उड़ायेंगे पाकिट गुरू और चेला
उचक्कों का फिर एक अड्डा बनेगा
चलो आज बाबा का संदल उठेगा

तबलची से कहियो ज़रा दम लगाये
कहो बाई जी से वो इक पान खाये
नये तर्ज़ की कोई ठुमरी सुनाये
ये फ़रमान[2] जारी मुजाविर करेगा
चलो आज बाबा का संदल उठेगा

इमरती भी होगी बताशा भी होगा
मजीरे भी और ढोल ताशा भी होगा
जो नाचेंगे ज़नख़े तमाशा भी होगा
यहीं से तमद्दुन[3] का लाशा उठेगा
चलो आज बाबा का संदल उठेगा

व्यंग्य हल्के-फुल्के विनोद की तरह उद्देश्यहीन नहीं होता है। वह आनन्द प्रदान करने के अलावा भी कुछ देने की कोशिश करता है। आधुनिक काल में सामाजिक एवं राजनीतिक ऊहापोह के साथ-साथ देश की आर्थिक दुर्दशा, बेरोज़गारी, ब्रह्मचर्य, रूढ़िवाद, उन्नतिशीलता, पूँजीवाद, स्वराज्य,

(१) पवित्र मज़ार (२) आदेश (३) संस्कृति।

साहित्य-इतिहासकारों के कथनानुसार पैरोडी की शुरूआत होमर के समय में हुयी। ह्यूनाकस ने उसकी एक कविता की पैरोडी तैयार की थी। धीरे-धीरे इसका रिवाज यूरोप के देशों मे हुआ और वहीं से ये चीज़ हमें मिली। आधुनिक युग में पैरोडी को विशेष प्रोत्साहन मिला है और हज़ारों रचनायें एकत्रित हो गई हैं।

पैरोडी बिना किसी मूल साहित्यिक रचना के अस्तित्व में नहीं आ सकती। इसका उद्देश्य केवल मख़ौल भी नहीं होता। पैरोडी के द्वारा कवि की रचना की ओर पुनः ध्यान आकृष्ट करना भी होता है। अपनी सुविधा के लिये पैरोडी को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—शब्दों में परिवर्तन से, शैली के प्रहसन पक्ष से और विचारधारा के स्वांग से। यद्यपि अभी उर्दू मे पैरोडी उस स्थान पर नहीं पहुँच सकी है कि उसकी कृतियाँ संसार के महान साहित्य की तुलना में रखी जा सकें, परन्तु राख में छिपी हुई चिनगारी को देख कर कहा जा सकता है कि भविष्य में उर्दू में भी विश्व के अन्य महान भाषाओं के समतुल्य साहित्य पैदा हो जायेगा।

पैरोडी प्रसिद्ध रचनाओं के आधार पर तैयार की जाती है। इसलिये उसका जीवन काल भी मूल रचना के साथ सम्बन्धित होता है। यदि मूल रचना समय की रुचि से अलग हो गयी है तो उसकी पैरोडी कभी सफल नहीं हो सकती। मिर्ज़ा 'ग़ालिब' उर्दू के महान कवि हैं। उनकी रचनाओं में ऐसी विचारधारा का प्रतिबिम्ब मिलता है जो उन्हें अमर रखेगा। आधुनिक युग में उनकी रचनाओं की अकसर पैरोडी तैयार की गई है। उदाहरणार्थ ज़ुबैर कुरैशी की पैरोडी 'ग़ालिब' की एक मशहूर ग़ज़ल के साथ देखिये—

नुक्ताचीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने

इश्क चाहा जो लड़ाना तो लड़ाये न बने
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने

मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ए जज़्बए दिल
उस प बन जाये कुछ ऐसी कि बिन आये न बने

कोई ठुमरी, कोई धुरपत, कोई टोडी का ख़्याल
बात जब है उन्हें खिड़की में बिन आये न बने

इस नज़ाकत का बुरा हो, वो भले हैं भी तो क्या
पास आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने
मुझको ले डूबी ये ईमान पसन्दी मेरी
पास आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने
कह सके कौन कि ये जलवागरी किसकी है
परदा छोड़ा है वो उसने कि उठाये न बने
कह सके कौन ये नरगिस है, सुरैया कि निगार
परदा गहरा है ये इतना कि बताये न बने
इश्क़ पर ज़ोर नहीं है ये वो आतिश 'ग़ालिब'
कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे
इश्क वो ताजमहल, लालक़िला है प्यारे
जो मिटाये न मिटे और बनाये न बने

महमूदा सुलताना ने उनकी एक दूसरी ग़ज़ल सामने रखते हुये उसकी शैली की पैरोडी की है—

इब्ने-लीडर[1] हुआ करे कोई
वोट का हक अदा करे कोई
वो तो रहते हैं लाल बँगले में
झोपड़ी में सड़ा करे कोई
पाँच कम सौ, क्लर्क की तनख़्वाह
ले न रिशवत तो क्या करे कोई
सेफ़्टी ऐक्ट का ज़माना है
न कहो गर बुरा करे कोई
ए हवलदार ! कुछ रक़म लेकर
छोड़ दे गर ख़ता करे कोई
टूटी झुग्गी में बैठकर 'नजमा'
नौज ! कब तक हया करे कोई

उर्दू के अत्यन्त प्रसिद्ध एवं दार्शनिक कवि डाक्टर इक़्बाल हैं। उनको अपने जीवन में भी सम्मान मिला और आज भी बहुत कुछ साहित्य उनके बारे में प्रतिवर्ष इकट्ठा हो जाता है। उनकी रचना 'शिकवा' उर्दू की प्रसिद्ध

१ लीडर का पुत्र

ाओं मे है। सैयद मुहम्मद जाफ़री ने खाने में गोश्त न मिलने पर
न का मरसिया' कहकर 'इकबाल', के 'शिकवा' की पैरोडी तैयार की है–

गोश्तख़ोरी के लिये हिन्द मे मशहूर है हम
जब से हड़ताल है क़स्सावों की मजबूर हैं हम
चार हफ़्ते हुये क़लिये से भी महजूर[1] हैं हम
'नाला आता है अगर लब प तू माज़ूर[2] हैं हम,
'ए ख़ुदा शिकवाए-अरबाबे[3] वफ़ा भी सुन ले'
ख़ूगरे-गोश्त[4] से थोडा-सा गिला भी सुनले
आगया ऐन ज़ेयाफ़त[5] में अगर ज़िक्रे-बटेर
उठ गये मेज़ से होने भी नहीं पाये थे सेर
घास खाकर कभी जाते हैं नयस्ताँ[6] मे भी शेर
तू ही बतला तेरे बन्दो में है कौन ऐसा दिलेर
थी जो हमसाये की मुर्ग़ी वो चुराई हमने
नाम पर तेरे छुरी उस प चलाई हमने
हो गयी क़ोरमे और क़लिये से खाली दुनिया
रह गई मुर्ग़-पुलाव की ख़याली दुनिया
गोश्त रुख़सत हुआ दालों ने सँभाली दुनिया
आजकल घास की करती है जुगाली दुनिया
तअ़ने-अग़यार[7] है, रुसवाई व नादारी[8] है
क्या तेरी दिल्ली में रहने का एवज़ ख़्वारी[9] है

पैरोडी में विनोद का पहलू अवश्य होता है परन्तु विनोद ही इसके लिये कुछ नहीं है। आधुनिक युग मे इससे महत् कार्य लिये गये हैं। सामाजिक न की ऊहापोह और व्यक्तियों के स्वार्थ की टीका-टिप्पणी में इससे सहा- ली गई है। इस प्रकार पैरोडीकारों ने समाज-सुधारक का भी कर्तव्य किया है। क्रान्ति एवं यौवन भावों के महान कवि 'जोश' मलीहाबादी पना 'निजी प्रोग्राम' बहुत पहले पेश कर दिया था। 'वाही' अज़ीमा- ी ने उनकी कविता की पैरोडी करते हुये समाज के अन्य प्रतिष्ठितों—

(१) शरमिन्दा (२) मजबूर (३) वफ़ा करने वालों की शिकायत (४) गोश्त आदी (५) मेहमान्दारी (६) कछार (७) दूसरों के ताने (८) ग़रीबी निरादर।

डाक्टर, प्लीडर, लीडर, प्रोफ़ेसर, आलोचक और दार्शनिक का बनाया है और व्यंग्य के साथ उनके जीवन के तद्विषयक पहलू डाला है 'प्लीडर' के लिये कहते हैं—

और आप प्लीडर को अगर ढूढ़ना चाहें
हर रात विरीफ़ों के मलबे में मिलेगा
और सुब्ह को मुर्ग़िये-वकालत का वो मुर्ग़ा
अन्डे की तमन्ना लिये दरबे में मिलेगा
और दिन को कचहरी में वो इजलास से पहले
पाकड़ तले सख़्तारों के अड्डे में मिलेगा
और उनकी ख़ुशामद से जो मिल जायगी फ़ुरसत
कंजूस मुअक्किलों से तक़ाज़े में मिलेगा
मिल जायगी जब फ़ीस तो पेशवाज़ पहनकर
इजलास प हुक्काम के मुजरे में मिलेगा
नुक़्ता कोई छोड़ेगा जब वो अपनी ज़बाँ से
इक तीर-सा मनतिक़[१] के कलेजे में मिलेगा
और शाम को आते ही कचहरी से वो झटपट
थाली लिये घुसता हुआ चौके में मिलेगा

इसी तरह 'लीडर' का कार्य-क्रम यह बताता है—

लीडर को अगर आप कभी ढूढ़ना चाहें
वो पिछले पहर हुजरये-दिलबर[२] में मिलेगा
और सुब्ह को वो बन्दए-अग़राज़ो-मकासिद[३]
सर ख़म[४] किये दरबारे-मिनिस्टर में मिलेगा
और दिन को वो जनता की चरागाह का भैंसा
चरता हुआ परमिट किसी दफ़्तर में मिलेगा
जब बहस छिड़ी होगी तो वो मिम्बरे-एवाँ[५]
इस दर में मिलेगा कभी उस दर में मिलेगा
और शाम को अहबाब[६] के पैसों की बदौलत
होटल में कहीं या कहीं पिक्चर में मिलेगा

(१) तर्कशास्त्र (२) प्रेमिका की कोठरी (३) अपने मतलब व (४) झुकाये (५) सभा का सदस्य (६) मित्रों।

और रात को हाथों में लिये भात की थाली
बीवी से झगड़ता हुआ वो घर में मिलेगा

आधुनिक युग की पैरोडियों का राजनीतिक उद्देश्य भी होता है। मजीद लाहौरी ने 'न्यूयार्क जाने वाले (मेरा सलाम ले जा)' में हफ़ीज़ जालन्धरी की पैरोडी भी की है और अपने राजनीतिक विवेक का भी प्रमाण दिया है। ये डालर के परदे में पूँजीवाद के रहस्य को विश्व पर प्रकट करते हैं—

'डालर' के आसमाँ पर सोने के आसताँ पर
पहुँचा तेरा ग़ुबारा
'यूनो' में हाज़िरी का तुझको हुआ इशारा
ए बख़्तियार[1] बन्दे
ए कामगार[2] बन्दे

ऐनक से देखता जा मुँह से मगर न कहना
ये गोलीमार मेरा है 'सूरदास' तेरा
मैली सी इक रज़ाई टूटी-सी चारपाई
ले जा सके तो भाई ये फ़ैज़-आम[3] लेजा
मेरा सलाम लेजा
हर चीज़ खो चुका हूँ 'रिफ़्यूजी' हो चुका हूँ
ये ज़िन्दगी है मेरी

है अज़्म दस्त-बस्ता गो दूर का है रस्ता
और जाम भी शिकस्ता लेकिन ये जाम लेजा
मेरा सलाम लेजा
'ह्विस्की' पिला के दिल को राकेट बनाके दिल को

न्यूयार्क जाने वाले
इसमें तुझे बिठाले

और 'जंगे-कोरिया' की मंज़िल प ले के जाऊँ

मिट्टी के शेर अच्छा
होती है देर अच्छा

(१) भाग्यवाले (२) सफल (३) जन कल्याण।

जा हर तरह सलामत लेजा मेरी 'बसीरत'[1]
लेजा मेरी 'बसीरत' मेरा सलाम लेजा
मेरा सलाम लेजा

सरदारी जाफ़री आधुनिक कवियों में अपने राजनीतिक विवेक के लिये प्रतिष्ठित हैं। सरकार उनके विचारों से सहमत नहीं है। वे उसका विरोध करते हुये जेल भी हो आये हैं। वहीं उन्होंने 'पत्थर की दीवार' की रचना की थी। 'मख़मूर' जालन्धरी ने 'गुड़ का मीनार' में उसकी पैरोडी पेश की है—

'पत्थर की दीवार'	'गुड़ की मीनार'
क्या कहूँ भयानयक है	क्या बताऊँ हँडिया है
या हँसी है ये मंज़र	या कोई कढ़ाई है
ख़्वाब है कि बेदारी	दाल है कि तरकारी
कुछ पता नहीं चलता	सूझता नहीं कुछ भी
फूल भी हैं साये भी	मग़ज़ की हैं पाये भी
ख़ाक भी है पानी भी	प्याज़ भी है हलदी भी
आदमी भी मेहनत भी	ख़ादिमा[3] के हाथों में
गीत भी हैं आँसू भी	लहसुन और आलू भी
फिर भी एक ख़ामोशी	फिर भी इक तज़ुबज़ुब है
रूहो-दिल की तनहाई	गोल-गोल हँडिया में
इक तवील[2] सन्नाटा	एक हश्र बरपा है
जैसे साँप लहराय	जैसे देव मुस्काये
माहो-साल आते हैं	चन्द उबाल आते हैं
और दिन निकलते हैं	पाके जिन की बू बिल से
जैसे दिल की बस्ती से	चिवटियाँ निकलती हैं
अजनबी गुज़र आये	जैसे मैली गूदड़ में
	कुछ जुवें टहलती हैं

स्वतंत्रता के कुछ पूर्व के काल में मजाज़ की कविता 'आवारा' ने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। यह कविता एक युवक की बौद्धिक विशृंखलता का वृत्तान्त प्रस्तुत करती है, जिसे जीवन के संघर्षों ने आधा पागल बना दिया है। आधुनिक युग में व्यंग्यकारों ने इससे समाजिक एवं राजनीतिक प्रेरणा

(१) देखने की शक्ति (२) लम्बा (३) दासी

की है। 'रश्मी' बरनी ने उसकी पैरोडी 'बेकार' के रूप में प्रस्तुत
—

दरबदर की ख़ाक छानूँ जूते चिटख़ाता फिरूँ
नौकरी की जुस्तुजू में ठोकरें खाता फिरूँ
लोग बिरयानी मुतनजन खायें मैं भूका फिरूँ
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ, ए वहशते दिल क्या करूँ

बिक गया सामान घर का उड़ गये चँदिया के बाल
बट रही है जूतियों में मेरी ख़ुद्दारी की दाल
इक तरफ़ बीवी के ताने, इक तरफ़ बच्चे निढाल
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ

दिल ये कहता है कि कपड़े फाड़ वीराने में चल
फोड़कर सर अपना सरकारी शफ़ाख़ाने में चल
ये नहीं मुमकिन तो जेबें काटकर थाने में चल
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ

ग़ुस्सा बीवी का भड़क उट्ठा है आख़िर क्या करूँ
गोद का बच्चा बिलक उट्ठा है आख़िर क्या करूँ
मुफ़लिसी का ग़म चमक उट्ठा है आख़िर क्या करूँ
ऐ ग़में दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ

आधुनिक युग के पैरोडीकारों में कन्हैयालाल कपूर का स्थान सर्व-
है। उन्होंने कला और सामग्री दोनों रूपों से पैरोडी की महान उन्नति
की है। उन्होंने भी 'मजाज़' की 'आवारा' की पैरोडी तैयार की है।
न्द मजाज़ की कविता के साथ आप भी देख लीजिये ताकि पूर्ण आनन्द
सके—

लेके इक चंगेज़ के हाथों से ख़न्जर तोड़ दूँ
ताज प उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ 'मजाज़'
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़ के तोड़ दूँ
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ ए वहशते दिल क्या करूँ

जी में आता है कि उठकर आज साग़र तोड़ दूँ
मारकर पत्थर प ख़ंजर अपना ख़ंजर तोड़ दूँ

अपना सर फोड़ूँ न फोड़ूँ, ग़ैर का सर फोड़ दूँ
वाए हसरत क्या करूँ, उफ़ हाय हसरत क्या करूँ 'कपूर'

चढ़के इस इन्दर सभा का साज़ो-सामाँ फूँक दूँ
इसका गुलशन फूँक दूँ, उसका शबिस्ताँ[1] फूँक दूँ 'मजाज़'
तख़्ते सुलताँ क्या, मैं सारा क़स्रे-सुलताँ[2] फूँक दूँ
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ

जी में आता है कि उठकर आशियाँ को फूँक दूँ
फूँक दूँ ये चाँद तारे आसमाँ को फूँक दूँ 'कपूर'
फूँक दूँ किश्ती को अपनी, बादबाँ को फूँक दूँ
मेहरबाँ को फूँक दूँ ना मेहरबाँ को फूँक दूँ
वाए हसरत क्या करूँ, उफ़ हाय हसरत क्या करूँ

उर्दू की आधुनिक हास्य एवं व्यंग्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों के विषय में इतना सब कुछ लिखने के बाद भी अनुमान होता है कि अभी कम लिखा गया है। बहुत सी बातें छूटी जा रही हैं। वास्तव में अकबर इलाहाबादी के बाद से वर्तमान युग तक पहुँचने में इस कला इतनी उन्नति प्राप्त कर ली है कि एक लेख में सब बातें पेश करना आसान नहीं है। हमने विस्तार से बचने के लिये प्रतिष्ठित कवियों के यहाँ से उद्धरण ले लिये हैं ताकि उर्दू काव्य की इस विधा का एकपरिचय मिल सके।

---

१) रात्रिनिवास (२)

दसवाँ अध्याय

स्वस्थ मूल्यों की आकाशगंगा

आधुनिक युग की प्रकीर्णता एवं विभिन्नता बहुत कुछ उसकी परिस्थितियों पर भी आधारित है। स्वतंत्रता के बाद देश के इतिहास का चक्र, तेज़ी से आगे बढ़ा और परिणामस्वरूप समाज का बदलता हुआ रूप हमने अपनी आँखों से देखा है। उर्दू-साहित्य अपने समाज से विलग नहीं है, वह भी चाक पर बनती हुई मिट्टी की तरह उसी के साथ-साथ चक्कर काट रहा है। उसके साहित्यकार पूर्णतः सजग हैं, वे समय की पुकार का साथ देकर स्वस्थ मूल्यों को अपना रहे हैं। सम्भवतः इसी कारण अनेकानेक, एवं विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियाँ आधुनिक साहित्य में सामने आई हैं। इससे पूर्ववर्ती साहित्य में इतनी स्पष्ट, प्रखर तथा विभिन्न प्रवृत्तियाँ अप्राप्य हैं। इन प्रवृत्तियों पर एक विहंगम दृष्टि हमने पिछले पृष्ठों में डालने की चेष्टा की है परन्तु बात यहीं पर समाप्त नहीं होती। इनके अतिरिक्त भी अनेकानेक स्वस्थ प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं जिनके सविस्तार वर्णन के लिये इस पुस्तक में पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का ही परिचय कराया जा सकता है। आज के कवि और साहित्यिक की तरह आज के आलोचक के सामने भी जीवन के अनेक बिखरे हुए मूल्य हैं। उनमें यह चुनाव करना सरल नहीं कि वह किनको ले और किनको छोड़ दे।

उर्दू के आधुनिक काव्य-साहित्य का अध्ययन करते समय इस सत्य को भी सामने रखना चाहिये कि साहित्यिक इतिहास में विभिन्न युगों का विभाजन इस प्रकार नहीं किया जा सकता जैसे कि मूल-इतिहास में होता है। साहित्यिक प्रवृत्तियाँ अत्यन्त रूप में अलग नहीं होतीं, एक युग से दूसरे का सम्बन्ध होता है। इसमें क्रान्तिकारी-तत्त्व जन्म लेते हैं परन्तु वे जीवन को इकबारगी परिवर्तित नहीं कर सकते। उनका प्रभाव धीरे-धीरे साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों को जन्म देता है स्वतंत्रता के बाद का साहित्य अपने पहले

(१) चिन्तन-प्रधान विचारधारा—काव्य के ताने-बाने विचार से तैयार होते हैं और उन्हें अपने भावों के आधार पर कवि हमारे सामने रखता है। प्रौढ़-बुद्धि इस से जीवन के रहस्य खोलती है, जिससे नवीन आदर्शों के निर्माण में सहायता मिलती है। 'इक़बाल' से पहले उर्दू में कोई कवि अपने तत्त्व-ज्ञान के साथ सामने नहीं आया। 'ग़ालिब' के यहाँ एक प्रकार की तर्कात्मक विचारधारा मिलती है परन्तु उससे कोई विशेष सिद्धान्त नहीं प्रति-पादित किया जा सकता। सम्भवतः ग़ज़ल में इससे अधिक कहने की सुविधा भी नहीं थी। 'जोश' मलीहाबादी ने 'इक़बाल' से प्रेरणा लेकर इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक युग अपनी मनोवैज्ञानिक विचारधारा के लिए महत्त्वपूर्ण हो गया है। उनका आदर्श मानवजाति को शान्ति एवं सुख की प्रेरणा प्रदान करना है और इस सम्बन्ध में जो भी मार्ग-बाधक बने उसको हटाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। धर्म की आड़ में प्रोत्साहन पाने वाले अंधविश्वास से उन्हें विशेष दुख है—

हैफ़[1] दौरे-बन्दगी[2] में किसको समझाऊँ कि है
सिर्फ़ रूहे-आदमीअत[3] ही इलाहिल-आलमी[4]
हैफ़ औहामो-अक़ाएद[5] के सियह बाज़ार में
आज तक नूरे-हक़ाएक़[6] की कोई क़ीमत नहीं
अक़्ल की तौहीन है अर्शे-बरीं[7] का एहतराम
आ कि अब डालें बिनाए-सितवते-फ़र्शे-मोबीं[8]
दीन के क़दमों प क़रनों[9] तक ये दुनिया झुकचुकी
आ कि अब दुनिया के क़दमों प झुका दें फ़र्क़े-दीं[10]

'फ़िराक़' गोरखपुरी भारत के पुनरुत्थान (Renascence) के एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि हैं। उनके योगदान से उर्दू-काव्य की चिन्तन-प्रधान विचारधारा को बड़ी सहायता मिली है। उनकी विचारधारा में बड़ी गहराई और व्यापकता है। उन्होंने एक जगह सच्ची शाएरी का उद्देश्य समझाया है—

यही मक़सदे-हयात[11] इश्क़ का है ज़िन्दगी ज़िन्दगी को पहचाने

ज़िन्दगी को पहचानने का ही लक्ष्य सच्ची शाएरी का लक्ष्य है। 'फ़िराक़' ने

(१) अफ़सोस (२) ख़ुशामद का युग (३) मानवता की आत्मा (४) भगवान (५) अन्धविश्वास एवं धर्म विश्वास (६) सत्य का प्रकाश (७) आकाश (८) पृथ्वी के वैभव की नींव (९) युगों (१०) धर्म का सिर (११) जीवन का उद्देश्य

रहस्य को अपने सीने में भरकर मानव-जीवन को उसका उत्तर-
मझाने की सफल चेष्टा की है—

ए मानिए-कायनाते[1] मुझ में आजा
ए राज़े-सिफ़ातो-ज़ात[2] मुझ में आजा
सोता संसार झिलमिलाते तारे
अब भीग चली रात मुझमें आजा

हर ऐब से माना कि जुदा हो जाये
क्या है अगर इनसान ख़ोदा हो जाये
शाएर का तो बस काम ये है, हर दिल में
कुछ दर्दे-हयात और सिवा हो जाये

सहरा[3] में ज़मा-मकाँ[4] के खो जाती हैं
सदियों बेदार रहके सो जाती हैं
अकसर सोचा किया हूँ ख़िलवत[5] में 'फ़िराक़'
तहज़ीबें[6] क्यों ग़ुरूब[7] हो जाती हैं

पाते जाना है और न खोते जाना
हँसते जाना है और न रोते जाना
अव्वल और आख़िरी पयामे-तहज़ीब[8]
इनसान को इनसान है होते जाना

मनमोह ले सौ रंग मे रहती दुनिया
ये वहमे-हसीं,[9] ये ख़ूबसूरत धोका
इस दुखभरी दुनिया का मगर असली रूप
जब आँख खुली 'फ़िराक़' देखा न गया

त का कवि जीवन के मूल्यों को आँकना चाहता है। यह सब क्यों है
? है ? इसका सवाल इनसान के दिमाग़ को बहुत दिनों से परीशान
है। न जाने कितने तत्त्ववेत्ताओं का जीवन इस रहस्य को जानने में
गया। अल्लामा जमील 'मज़हरी' ने उनमें से कुछ के विचारों को
में पिरोकर प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। उन्होंने कल्पना की है कि

वश्व का अर्थ (२) व्यक्ति-विशेषता का रहस्य (३) मैदान (४) समय
(५) एकान्त (६) संस्कृतियाँ (७) अस्त (८) सभ्यता का सूचक
र भ्रम।

एक विवाद में शोपन्हार, ज़रतुश्त, एपीक्योरस, देवजान्स, नीतशे, कार्ल मार्क्स और महात्मा गाँधी भाग लेते हैं और अपने-अपने तौर पर जीवन के रहस्य खोलते हैं।

एपीक्योरस कहता है—

अश्कों के ये तुख़्म[1] दिल में बोते क्या हो
आँखों का ग़ोबार उनसे धोते क्या हो
फूलों की तरह बनाओ ज़ख़्मों को हँसी
शबनम[2] की तरह चमन में रोते क्या हो

देवजान्स उत्तर देता है—

मत पूछ मिज़ाजे-किबरियाई[3] ए दोस्त
मातमख़ाना[4] है ये ख़ोदाई[5] ए दोस्त
रोना बेशक बड़ी हिमाक़त है यहाँ
हँसना भी मगर है बेहयाई ए दोस्त

कार्ल मार्क्स इस विचारधारा को व्यापक बनाता है—

साँचे नई तहज़ीब के ढाले हमने
सिखला दिये बेकसी को नाले हमने
पत्थर से भरे ज़ख़्मों को तोड़ा लेकिन
मयख़ाने[6] से भर दिये पयाले हमने

आधुनिक युग का कवि अपने वातावरण से विरक्त नहीं है। उनके समक्ष समाज एवं व्यवस्था के आधार हैं जिन्हें वे अपनी चिन्तन-प्रधान विचारों द्वारा प्रतिपादित कर रहे हैं। पुराने समाज की मृत्यु और नये समाज के जन्म में एक महान एवं स्वतंत्र मनुष्य का उभरना, वे पूर्णरूप से अनुभव कर रहे हैं। वह संसार के समस्त मनुष्यों को अपना भाई समझता है और प्रत्येक देश को अपनी मातृभूमि समझकर आदर करता है। दानवी शक्तियाँ इसके उत्थान को रोक देना चाहती हैं परन्तु सदियों में तपकर इसका शरीर लोहे का हो गया है। उर्दू के सर्वश्रेष्ठ आलोचक प्रो० एहतेशाम हुसैन आधुनिक युग के सफल कवियों में भी हैं। उन्होंने एक जगह इस नवीन मनुष्य का स्वागत करते हुये उसके महान् संकल्प को 'अज़्मे-कोहकनी' कहा

---

(१) बीज (२) ओस (३) ईश्वरात्मक प्रकृति (४) वेदना-गृह (५) संसार (६) मधुशाला।

है। उनका संदेश है कि संसार के समस्त मनुष्यों को उसे अपना योगदान प्रदान करना चाहिये—

जो बन्द रह गये सीनों में आज गीत वो गायें
धड़क उठे दिले अर्ज़ो-समाँ[1] वो धूम मचायें
जुनूँ[2] का तेशाए-नव[3] लेके दोश[4] पर, निकलें
हर एक वादिओ-सहरा[5] में जूए-शीर[6] बहायें
खुद अपने शौक से इज़्ने-ख़राम[7] लेके बढ़ें
बढ़ें तो रफ़अते-अर्शे-बरीं[8] को भी शरमायें
सतीज़ा-कारीए-अहेले-हवस[9] से बचने को
वफ़ा-परस्तों से मिलकर हेसार-अम्न[10] बनायें
दिखा के हाल[11] के रुख़ में जमाले-मुसतक़बिल[12]
वतन की अज़मते-रफ़ता[13] की आबरू बन जायें
ज़मीं से इश्क है इनसाँ से प्यार करते हैं
मताए-शौक़[14] इन्हीं पर निसार करते हैं

नवीन विचारधारा में चिन्तन प्रधान रचनाओं का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसी कारण काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रयोग हुआ है। सत्य तो यह है कि स्वतंत्रता के बाद की अधिकांश कवितायें चिन्तन-प्रधान विचारधारा से परिपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में नरेश कुमार 'शाद' की 'मेरा मौज़ूए-सुख़न' तथा 'जज़्बए-इश्क़', फ़ज़्ा इब्ने फ़ैज़ी की 'इश्क', जगन्नाथ आज़ाद की 'मेरा मौज़ूए-सुख़न', 'शाद' आरिफ़ी की 'गेहूँ ने कहा' तथा 'जब्र व क़द्र', क़तील शफ़ाई की 'इरतेक़ा', मोईन अहेसन 'जज़्बी' की 'मेरी शायरी और नक़्क़ाद' एवं सरदार जाफ़री की 'वहेमे-ख़याल' आदि कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

(२) कला का महत्त्व—काव्य-रचना में कला को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है। आलोचकों का एक वर्ग कला के प्रदर्शन के बिना काव्य-शैली को ही अपूर्ण समझता है। उर्दू में कला को सदैव एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। विशेषकर लखनऊ स्कूल में काव्य की कला को निखारने की विवेकपूर्ण

(१) ज़मीन-आसमान (२) उन्माद (३) नवीन अस्त्र (४) कंधे (५) जंगल व चमन (६) दूध की नहर (७) चलने की इजाज़त (८) आकाश की बुलन्दी (९) लोलुपों की प्रतिद्वन्दिता (१०) शान्ति की दीवार (११) वर्तमान (१२) भविष्य का सौन्दर्य (१३) प्राचीन महानता (१४) इच्छा का धन।

चेष्टा की गई। शब्दों के प्रयोग पर विचार किया गया है और बहुत से ऐसे शब्द जो उर्दू की प्रकृति से मेल न खाते थे या उनसे अच्छे शब्द पहले से मौजूद थे या श्रुति में बुरे लगते थे, उन्हें 'अप्रचलित' कर दिया गया। शाइर बनने के पहले किसी उस्ताद की शागिर्दी में आना ज़रूरी समझा जाता था। मुशाइरों में काव्य की भाषा और कला पर विशेषकर टीका-टिप्पणी की जाती थी। परिणामस्वरूप ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि लोग प्रारम्भिक दस-पन्द्रह वर्ष तक जितना लिखते थे उसे फाड़ डालते थे ताकि वे पहले कला में निपुण हो जायें फिर एक सफल कवि बनकर संसार के सामने आयें।

आधुनिक युग के बारे में यह आम शिकायत है कि उसने कला के महत्व को ठुकरा दिया है। कवि कला में निपुण होने की कोशिश से अधिक शीघ्र से शीघ्र प्रसिद्ध हो जाना चाहते हैं। परिणामस्वरूप कला की दृष्टि से वे उसके आगे नहीं जा सके हैं जहाँ 'इक़बाल' ने उन्हें लाकर खड़ा कर दिया था। यह इलज़ाम बिलकुल खोखले नहीं हैं परन्तु इस निर्णय में भावुकता भी है। कला के प्राचीन सिद्धान्तों से आज के कवि का विरोध केवल अज्ञान के कारण ही नहीं है वरन् इसके पीछे दो विभिन्न विचारधाराओं का अस्तित्व है। इस विभिन्नता को प्रेमचन्द ने "प्रेम के आदर्श का परिवर्तित होना" कहा है। आज का उर्दू-कवि जीवन की वेदना पर केवल शोक प्रकट करके नहीं रह जाता। उसके भौतिक उपाय की तलाश में उसे अपने राष्ट्र से बाहर भी जाना पड़ता है जहाँ उसे भारत के स्थानीय प्रतीकों, बिम्बों एवं लोकोक्तियों से अलग भी हटकर सोचना पड़ता है। 'राही' मासूम रज़ा ने एक जगह प्राचीन विचारधारा वालों को सम्बोधित करके कहा है—

तुम्हारी बुलबुल है पर-शिकस्ता[1] ये रौनक़े-गुलसिताँ[2] बनेगी?
ये दूसरी शाख़ तक पहुँचने से पहले ही थक के गिर पड़ेगी
ये लड़खड़ाती चिराग़ की लौ उरूजे-महफ़िल[3] का साथ देगी?
ये हाँपती-काँपती अलामत[4] बताओ कितने क़दम चलेगी?

उठाये फिरते हो अपने लाशे तो इसमें मेरा क़ुसूर क्या है?
तुम्हारी आँखें हैं सर के पीछे तो इसमें मेरा क़ुसूर क्या है

(१) पर टूटी (२) उपवन की शोभा (३) सभा के उत्थान (४) प्रतीक।

तुम्हें शिकायत है मेरे फ़न से कि इसमें हुस्न ही नहीं है
गुदाज़[1] बाहें कहीं नहीं हैं किसान की खुरदुरी जबीं[2] है
जला हुआ एक आशियाँ है, फटी हुई एक आसतीं है
न मय, न मीना, न हुस्ने-साक़ी जो है तो इक बज़्मे-आसतीं[3] है

तुम्हारे अलफ़ाज़ की तिजोरी से ये ख़ज़ाना निकल चुका है
तुम्हारे ज़हनों के हुस्न-जामिद[4] का ज़र्द सोना पिघल चुका है

समेट लो एतराज़ अपने तुम्हारा ज़हन आज सो चुका है
हम उस जहाँ को बना रहे हैं तुम्हारा फ़न जिसको रो चुका है
लहू के क़तरे दिये हैं हमने, क़लम ये मोती पिरो चुका है
ग़लत हुआ है मगर ये तारीख़ जानती है कि हो चुका है

ये नर्म काग़ज़ भी [5]महबसों में सलाख़ों का बार उठा चुका है
तहफ़्फ़ुज़े-हुस्न[6] के लिये ये क़लम भी तलवार हो चुका है

विषय को श्रेष्ठ बनाने की कोशिश में काव्य की तुकान्त समस्या पर भी विचार किया गया है। स्वतंत्रता के पूर्व भी इस सम्बन्ध में सफलता मिली थी अतः आधुनिक युग में इसकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। उर्दू के आधुनिक कवियों में प्रायः सभी ने मुक्त-छन्द की प्रेरणा को आगे बढ़ाने की कोशिश की है। तुकान्त की झंकार कम होने पर काव्य के गुंजार पर दृष्टि रखी गई है। उदाहरणार्थ महमूद अयाज़ की 'एक तसवीर' देख लीजिये—

चाँदनी सत्हे-समुन्दर प रवाँ
रेग प आसूदा[7] है
साहिले-बहर के सन्नाटे में
दूर उफ़तादा[8] ज़ंजीरों में असीर[9]
बैन करती हुई मौजों की सदा आती है
एक जानी हुई, भूली हुई, खोई हुई आवाज़ की लहर
साहिले-बहर से टकराती है
एक देखे हुये, भूले हुये, खोये हुये, चेहरे की शबीह[10]
सीनए-बहर प सोये हुये महताब में ढल जाती है

---

(१) मृदुल (२) माथा (३) अग्नि सभा (४) अचल-सौन्दर्य (५) कारावास (६) सौन्दर्य की रक्षा (७) परिपूर्ण (८) पड़े हुये (९) कैदी (१०) चित्र।

सीमगूँ[1] लहरों प सोये हुये महताब का ज़र्री[2] पैकर
चन्द बिखरी हुई मौजों में बिखर जाता है
तुम भी देखो तो न पहचान सकोगी उसको
अब ये तसवीर मेरे ख़ून से आलूदा है
चाँदनी सत्हे-समुन्दर प रवाँ
रेग प आसूदा है

उर्दू-काव्य में प्रारम्भ से उपमाओं और व्यंजनाओं को एक विशेष स्थान प्राप्त रहा है। इनसे काव्य का विषय रोचक बनता है और विस्तार चाहने वाली बात संक्षेप में वर्णन की जा सकती है। कला की दृष्टि से उपमाओं और व्यंजनाओं का बहुत महत्त्व है। नई उपमायें और व्यंजनायें तलाश करना और उन्हें रोचकता से शैली में उद्धृत करना उर्दू-कवियों में सदैव से प्रशंसनीय रहा है। आधुनिक युग मे भी इस ओर ध्यान दिया गया है और बड़ी सुन्दर एवं रोचक उपमायें और व्यंजनायें लिपिबद्ध की गई हैं। उदाहरण के लिये 'फ़िराक़' गोरखपुरी के काव्य से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

दिलों को तेरे तबस्सुम[3] की याद यूँ आई
कि जैसे फैलता जाता हो शाम का साया
करवटें ले उफ़ुक़ प जैसे सुब्ह
कोई दोशीज़ा[4] रसमसाती थी
तेरे ख़याल की रँगीनियों का क्या कहना
फ़ज़ा में जैसे गुलाबी-सी कोई छलकाये
बाग़े-जन्नत प घटा जैसे बरस के खुल जाये
सोंधी-सोंधी तेरी ख़ुशबूए-बदन क्या कहना
तारों के क़ुलूब[5] जैसे धड़कें रात आपकी अदा अदा को देखा

ग़ज़ल के अतिरिक्त अन्य काव्य-रूपों में भी उपमाओं और व्यंजनाओं का प्रयोग किया जाता है। 'मुक्त-छन्द' में भी इसके प्रयोग हुये हैं। आधुनिक कवियों ने अपने को प्राचीन कोष तक ही सीमित नहीं रखा है। उन्होंने विषय की आवश्यकता को अभीष्ट रखते हुये अपने वातावरण से

(१) रजत (२) स्वर्ण (३) मुस्काम (४) कुँवारी (५) हृदय।

नई बिम्ब-योजनायें भी ढूँढ निकाली हैं जिनसे कविता के बल और व्यापकता में वृद्धि हुई है। सरदार जाफ़री के यहाँ से उदाहरण देखिये —

पहरादारों की निगाहों से टपकता है लहू
राइफ़ल करती है फ़ौलाद के होंटों से कलाम
गोलियाँ करती हैं सीसे की ज़बाँ से बातें

×

रोटियाँ चकलों की क़हबायें हैं
जिनको सरमाये के दल्लालों ने
नफ़ाख़ोरी के झरोकों में सजा रक्खा है

×

शाम की आँख मे बारूद के काजल की लकीर

×

चावलों की सूरत प मुफ़लिसी बरसती है

आधुनिक युग के कवियों ने काव्य-कला पर विचार करके बहुत-सी आवश्यक बातों की ओर ध्यान दिया है। नये शब्दों के चुनाव और प्रचलित शब्दों के प्रयोग पर भी विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक बहुत बड़ा काम किया है। उर्दू-काव्य की बीच की पीढ़ियों मे फ़ारसी-अरबी और उर्दू शब्दों को फ़ारसी-अरबी व्याकरण के आधारों पर प्रयोग करना अनुचित समझते थे। जैसे—दिन ब दिन, ज़ेबे-बदन, लबे-नहर इत्यादि। इसे वे अपने तौर पर 'गंगा-जमनी तरकीब' कहते थे। आधुनिक युग में इनके प्रयोग में कोई आपत्ति नही समझी जाती। इसी प्रकार बहुत से तुकों को भी प्रचलित किया गया है जो इससे पहले निषिद्ध थे। 'जोश' मलीहाबादी ने 'सुराही' और 'जमाही' के, अहमदनदीम क़ासिमी ने 'जलाल' और 'जमाल' के तथा एहसान दानिश ने 'किशवरे-ख़ास' और 'अदाए-ख़ास' के तुक लिपिबद्ध किये हैं जो अपने उच्चारण एवं वर्तनी में विभिन्नता के कारण वर्जित थे। भाषा को सरल एवं रोचक बनाने के लिये भी कोशिशें की जा रही हैं और काव्य का आदर्श सरदार जाफ़री के शब्दों में यों है कि—

जो सब की समझ में आ न सके बेकार हैं वो सब शेरो-ग़ज़ल
जनता की ज़बाँ में कहना है, जनता को सुनाना है साथी

(३) प्रयोगवाद :—मानव अनुभूतियों की वे सीमायें जो अभेद्य, निरपेक्ष या अन्वेषणोतर स्वीकार करके छोड़ दी गई थीं, प्रयोगवाद के अन्तरगत 'व्यक्ति-सत्य' और 'व्यापक-सत्य' के स्तर पर व्यक्त की जाती हैं। प्रयोगवाद का उद्देश्य समस्त परम्पराओं का विरोध अथवा खण्डन करना नहीं है बल्कि सत्य तो यह कि रूढ़ियों की तीव्र अक्षमता से ही प्रयोग के नवीन अंकुर विकसित होते हैं। 'ख़ूब से ख़ूबतर' की तलाश में इनसान ठोकरें भी खाता है और यही प्रयोगवाद की त्रुटि बनती हैं।

उर्दू की परम्परायें भारतीय और अभारतीय भावों के मिश्रण से तैयार हुई हैं अतएव नये मूल्यों की जिज्ञासा इसकी प्रकृति का अभिन्न अंग रही है। प्रारम्भिक युग से आज तक तलाश की मंज़िल इसी तरह बढ़ती जाती है। बीसवी सदी के शुरू में यह इच्छा और भी बढ़ी। फ़ारसी और अरबी के आधार पर काव्य रचना से ऊब कर अज़मत उल्ला ख़ाँ ने हिन्दी पिंगल के आधार पर 'सुरीले-बोल' तैयार किये। साथ ही 'हफ़ीज़' जालन्धरी, इन्द्रजीत शर्मा, 'विक़ार' अमबालवी और 'साग़र' निज़ामी ने छन्दों के क्रम में परिवर्तन किया किन्तु उनके ये प्रयोग गीतों तक ही सीमित थे। प्रयोग का तीसरा क़दम तुकों का छोड़ना था। इस परीक्षण में बहुत से कवि सम्मिलित हुये जिनमें 'राशिद', 'ख़लिद' और 'तासीर' प्रसिद्ध हुये। यह प्रयोग बहुत ज़्यादा सफल न हुआ तो इनमें से कुछ लोगों ने 'मात्राओं की संख्या' की भी उपेक्षा की और काव्य को 'मुक्त-छन्द' की ओर ले जाना चाहा। इस सिल-सिले में कुछ लोग तो 'गद्य-काव्य' (Prose Poetry) की ओर मुड़ गये और काव्य की समस्त परम्पराओं को तोड़ कर गद्य में काव्य-शैली का अभिव्यक्त करने लगे किन्तु दूसरा वर्ग 'मात्राओं की संख्या' में परिवर्तन करने पर भी उसके संगीत को क्षति पहुँचाने पर तैयार न हुआ। उन्होंने प्रतीकात्मक शैली से अपने काव्य को सजाया और इसे ही मनुष्य का सहज स्वभाव माना। उर्दू-काव्य के प्रतीकवाद का वर्णन इसी अध्याय में दूसरी जगह किसी प्रकार विस्तार से किया गया है यहाँ केवल प्रयोगवाद के 'व्यक्ति-सत्य' और 'व्यापक सत्य' की अभिवेचना आधुनिक युग के आधार पर करनी है।

आधुनिक युग के प्रयोगों में प्रतीकात्मक शैली को बहुत महत्त्व प्राप्त है। कवि इसके द्वारा सदियों की मर्यादा को स्पंदित करने की चेष्टा करता है। उसे बौद्धिक स्तर पर स्वीकार करते हुये, माध्यम की उपयोगिता पर विशेष

ध्यान देता है। अतः प्रयोगवाद की केवल शिल्प-चमत्कार मानकर उपेक्षा नहीं की जा सकती। जीवन के रहस्यों से इसका गहरा सम्बन्ध है और अनुभूतियों के स्तर पर क्षण और समूचे जीवन को अभिव्यक्त करता है। प्रतीकात्मक शैली एक कुशल माध्यम की तरह उसकी सहायक बनती है। मीरा जी की रचना 'मुझे घर याद आता है' उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती है—

सिमटकर किस लिये नुक़ता नहीं बनती ज़मीं ? कहदो !
ये फैला आसमाँ उस वक़्त क्यों दिल को लुभाता था ?
हर इक सम्त अब अनोखे लोग हैं और उनकी बातें हैं
कोई दिल से फिसल जाती, कोई सीने में चुभ जाती
इन्हीं बातों की लहरों प बहा जाता है ये बजरा
जिसे साहिल नहीं मिलता

मैं जिसके सामने आऊँ मुझे लाज़िम है हलकी मुस्कुराहट मे
कहें ये होंट "तुमको जानता हूँ", दिल कहे "कब जानता हूँ"
इन्हीं लहरों प बहता हूँ मुझे साहिल नहीं मिलता

सिमट कर किस लिये नुक़ता नहीं बनती ज़मीं ? कहदो !
वो कैसी मुस्कुराहट थी, बहन की मुस्कुराहट थी, मेरा भाई भी हँसता था
वो हँसता था, बहन हँसती थी, अपने दिल में कहती थी
ये कैसी बात भाई ने कही, देखो वो अब्बा और अम्माँ को हँसी आई
मगर यूँ वक़्त बहता है, तमाशा बन गया साहिल

सिमट कर किस लिये नुकता नहीं बनती ज़मीं ? कहदो !
ये कैसा फेर है, तक़दीर का ये फेर तो शायद नहीं, लेकिन
ये फैला आस्माँ उस वक़्त क्यों दिल को लुभाता था ?

हयाते-मोख़्तसर सब की बही जाती है और मैं भी
हर इक को देखता हूँ, मुस्कुराता है कि हँसता है
कोई हँसता नज़र आये, कोई रोता नज़र आये
मैं सब को देखता हूँ देख कर ख़ामोश रहता हूँ
मुझे साहिल नहीं मिलता

प्रयोगवाद अनुभूति की बौद्धिक परन्तु व्यक्तिगत पृष्ठभूमि को प्रधानता देता है। वह देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों का आलेखन भी करता है परन्तु प्रतीकों में निहित अनुभूतियाँ इतनी व्यक्तिगत होती हैं कि साधारणतः उसकी विशिष्ट पृष्ठभूमि जाने बिना कविता का उद्देश्य ही समझा नहीं जा सका। नूँ० मीम० राशिद की कविता 'मर्गे-इसराफ़ील' इन्हीं रहस्यों से परिपूर्ण है—

मर्गे-इसराफ़ील[1] से,
इस जहाँ में बन्द आवाज़ों का रिज़्क़[2]
अब मोग़न्नी[3] किस तरह गायेगा और गायेगा क्या
सुनने वालों के दिलों के तार चुप
अब कोई रक़्क़ास[4] क्या थिरकेगा, लहरायेगा क्या
बज़्म के फ़र्शों-दरो-दीवार चुप

मर्गे-इसराफ़ील से
शहरो सहरा हर आहट थम गई
आशिक़ों के लब की सारी मुस्कुराहट थम गई

सामाजिक पृष्ठभूमि के बिना कोई भी प्रयोग उपयोगी नहीं हो सकता। स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब भी आधुनिक प्रयोगवाद में मिलता है। देश में फैले हुये लूट-खसोट, ऊहापोह और दुर्दशा से घबरा कर कुछ लोग अपनी बौद्धिक शान्ति के लिये ख्वाबों की दुनिया की बात सोचने लगे। अपने सीनों के घाव को छिपाने के लिये उन्होंने जीवन से ही पलायन का मार्ग ढूँढ़ निकाला। फिर जब देश की राजनीतिक स्थिति सँभली तो उन्होंने भी जीवन के विषय पर सोचना शुरू किया किन्तु अब रोमांच उनके जीवन का अंग बन चुका था। उदाहरणार्थ डॉ० वज़ीर आग़ा की रचना 'मुलाक़ात' देख लीजिये—

पवन चली
और शब की कुँवारी बास के आँसू बिखर गये
नर्म मुलायम आँचल पर शबनम के मोती बिखर गये
सब्ज़ गुफ़ा में गुम-सुम बैठे

---

(१) इसराफ़ील की मृत्यु (२) जीविका (३) गायक (४) नर्तक।

फूल ऐसे नाज़ुक पंछी के
पंख सोनहरी डोल गये !

पवन चली
कुछ हौले हौले, ख़ुद से लजाती
हर खटके पर रुक-सी जाती
नंगे पाँव, शब की कुँवारी—घास प चलती
पेड़ के नीचे आन रुकी !

पेड़ के नीचे
तनहाई के घोर घुपा में तुम बैठे थे
थकी थकी पलकों से तुम्हारी ओस के मोती चिमटे थे
पवन रुकी—सब बिखर गये !!

आधुनिक युग ने 'व्यक्ति-सत्य' की अभिव्यंजना पर भी कवितायें लिखी गई हैं। कवि अपने व्यक्तित्व मे डूब कर अनुभूतियों के जवाहर निकालता है और 'व्यापक-सत्य' के स्तर पर समाज के सामने प्रस्तुत करता है। प्रकटतः यह जीवन से निरपेक्ष दीखता है परन्तु जीवन उसे आलिंगनबद्ध किये रहता है। उदाहरणार्थ अहमद हमेश की रचना 'शाम' देख लीजिये—

दिन की चमकती धूप में मेरे दर्द का भेद न ढूँढ़ो
मेरे दुख तो अनदेखे हैं
देखो इस दीवार के पीछे
बर्सों की नफ़रत से घायल
थकी थकी पज़मुर्दा यादें
पत्तियाँ बनकर बिखर गई हैं
दूर आकाश के उस कोने मे
इक मैली चादर में लिपटी
शाम खड़ी है
और चलें इस शाम की चादर में छुप जायें
शाम—जो हम दुखियों की माँ है

उर्दू के आधुनिक युग का प्रयोग सामाजिक यथार्थ से विभिन्न नहीं है। उसकी प्रेरणाओं से उसे विषय सामग्री प्राप्त होती है परन्तु प्रतीकों के आधिक्य में व्यक्तिगत अनुभूति उलझ भी जाती है और उसका समझना

साधारण व्यक्ति के लिये आसान नही रह जाता। यहाँ से काव्य मे संदिग्धता जन्म लेती है और कवि अलौकिक बातें वर्णन करने में असमर्थ दीखता है। उदाहरण के लिये बलराज कोमल की कविता 'अगले बरस की बात' देखी जा सकती है—

> उस बरस रंगों की रुत आई तो मेरे दोनों बच्चे देर से बीमार थे
> सब्ज़ओ-गुल[1] का हुजूम[2]
> चमचमाती धूप में उड़ते हुये भौंरों के साथ
> मेरे आँगन में बहुत दिन मुनतज़िर उनका रहा
> और फिर—
> जाने क्यों रनजूर[3] होकर चल दिया !
>
> एक दिन
> तुम बहुत ग़मगीन थीं
> आसमाँ की नीलगूँ वसअत[4] को तुमने भीगी आँखों से युँहीं देखा
> न जाने किस जहाँ में खो गईं
> अश्क जो टपके, तुम्हारे मैले आँचल में गिरे
> मैं तुम्हारे पास था
> मैंने जब से तुम्हारी उलझी ज़ुल्फ़ें चूम कर अगले बरस की बात की
> कपकपा उट्ठे तुम्हारे ख़ुश्क होंट
> और उन पर एक लमहे के लिये
> नीमजाँ-सी मुस्कुराहट जम गई

प्रयोगवाद का उर्दू-काव्य पर प्रभाव अध्ययन करते हुये इस सत्य को भी अभीष्ट रखना चाहिये कि यहाँ केवल 'प्रयोग के लिये प्रयोग' करना उचित नही समझा गया है। ऐसे विचार या विषय जिनको पूर्ण सफलता से प्रचलित शैली में उद्धृत किया जा सकता है, कभी भी प्रयोग के अन्तर्गत नहीं लाये जाते हैं। केवल ऐसी बातें जिनको बयान करने की क्षमता उपलब्ध नहीं है, उन्हीं के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

(४) प्रतीकवाद—मानव का सत्य प्रतीकात्मक अभिव्यंजना से भी स्पष्ट होता है। कवि अपने प्रतीकों द्वारा जीवन के अस्तित्व, स्थिरता, परिवर्तन-

(१) हरियाली व फूल २) मजमा ३ दुखी ४) विशालता

शीलता आदि की अभिव्यक्ति करता है। प्रतीकवाद (Symbolism) केवल कल्पना की उड़ान नहीं है, वरन् मानसिक क्रियाओं में इसे एक क्रिया का स्थान प्राप्त है जिसमें कवि अपने विचार तथा भाव का प्रतिनिधित्व करता है।

उर्दू में अनेक प्रतीकों को मूलाधार बनाकर काव्य रचना प्रारम्भ से होती रही है लेकिन उनकी यह स्थिति अधिकतर सैन-संकेतों की थी। प्रतीकों का सफल उपयोग नवीन युग में हुआ है। इस सम्बन्ध में विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की उन कविताओं से भी प्रेरणा मिली है जो मूलतः पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाओं में प्राचीन मसीही सन्तों के छायाभास (Phantasmata) तथा योरोप के काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के प्रभाव पर रची हुई कवितायें 'बंगाली-छायावाद' का आधार कही जा सकती हैं। प्रतीकवाद काव्य के अन्य क्षेत्रों की तरह रहस्यवाद और छायावाद दोनों से सम्बन्ध रखता है। रहस्यवाद में उसका व्यंजनात्मक रूप स्पष्ट होता है और छायावाद में लाक्षणिक। नवीन युग की कविताओं में विशेषकर डा० इक़बाल की 'मसजिदे-करतबा' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

आधुनिक युग में उर्दू-कवियों ने प्रतीकवाद के प्रति अधिक रुचि प्रकट की है। उसके मार्ग-निर्माण में उन्होंने अन्य भाषाओं से सहायता ली है। साथ ही उर्दू काव्य की आत्मा, कला तथा परम्पराओं पर भी ध्यान रखते हुये उसे अनुकरण से बचाये रखा है। फ्रान्स का प्रतीकवादी आन्दोलन भारत के प्रतीकवादी साहित्य मे विशेष महत्त्व रखता है, परन्तु उर्दू कवियों ने उसका कम ही प्रभाव ग्रहण किया है। फ्रांस का यह आन्दोलन जीवन के सत्य से पलायन की ओर ले जाता है। इसी प्रकार प्रणय-वासना के उद्‌गार का आध्यात्मिक रूप कभी भी उर्दू में एक प्रवृत्ति का रूप न पा सका। उर्दू के आधुनिक कवि फ्रायड के बजाय मार्क्स के सिद्धान्त को अपना मूलाधार बनाते हैं।

उर्दू के कवियों ने प्रतीकवाद द्वारा जीवन के अनेक सत्यों को व्यंजित करने की सफल चेष्टा की है। उदाहरणार्थ भारतीय जीवन में जुगनू एक विशेष स्थान रखता है। बूढ़ी मातायें इसे एक प्रतीक बनाती हैं और बच्चों को बहलाने के लिए उन्हें बताती हैं कि जुगनू भटकती हुई आत्माओं को राह दिखाते हैं। इस प्रकार की कहानियों में अन्धविश्वास से अधिक प्रेम, स्नेह

और श्रद्धा की भावनायें सामने आती हैं। 'फ़िराक़' ने के प्रतीक से बीस वर्ष के युवक के जीवन की अनेक मनोभावना बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट की है और विशेषकर माता का उसके जन्म के समय ही देहान्त हो गया हो-

मेरी हयात ने देखी हैं बीस बरसातें
मेरे जनम ही के दिन मर गई थी माँ मेरी
वो माँ कि शक्ल भी, जिस माँ की मैं न देख सका
जो आँख भर के मुझे देख भी सकी न, वो माँ
मैं वो पिसर[1] हूँ जो समझा नहीं कि माँ क्या है
मुझे खेलाइयों और दाइयों ने पाला था
वो मुझसे कहती थी जब घिर के आती थी बरसात
जब आसमान मे हरसू[2] घटायें छाती थीं
बवक़्ते-शाम जब उड़ते थे हर तरफ़ जुगनू
दिये दिखाते हैं ये भूली भटकी रूहों को
मज़ा भी आता था मुझको कुछ उनकी बातों में
मैं उनकी बातों में रह-रह के खो भी जाता था
पर उसके साथ ही दिल में कसक-सी होती थी
कभी कभी ये कसक हूक बन के उठती थी
यतीम[3] दिल को मेरे ये ख़याल होता था
ये शाम मुझको बना देती काश इक जुगनू
तो माँ की भटकती हुई रूह को दिखाता राह
कहाँ कहाँ वो बेचारी भटक रही होगी
ये सोचकर मेरी हालत अजीब हो जाती
पलक की ओट में जुगनू चमकने लगते थे
कभी कभी तो मेरी हिचकियाँ-सी बँध जाती
कि माँ के पास किसी तरह मैं पहुँच जाऊँ
और उसको राह दिखाता हुआ मैं घर लाऊँ

ये सोंच-सोंच के आँखें मेरी भर आती थीं
तो जा के सूने बिछौने प लेट रहता था

(१) पुत्र (२) हर तरफ़ (३) पितृहीन

किसी से घर में न राज़ अपने दिल के कहता था
हर इक से दूर अकेला उदास रहता था
गुज़र रहे थे महो-साल[1] और मौसम पर
इसी तरह कई बरसातें आईं और गईं
मैं रफ़्ता-रफ़्ता पहुँचने लगा बसिन्ने-शऊर[2]
तो जुगनुओं की हक़ीक़त समझ में आने लगी
अब इन खेलाइयों और दाइयों की बातों पर
मेरा यक़ीं न रहा मुझ प हो गया ज़ाहिर
कि भटकी रूहों को जुगनू नहीं दिखाते चिराग़
वो मनगढ़ंत-सी कहानी थी, इक फ़साना था
वो बे-पढ़ीलिखी कुछ औरतों की थी बकवास

वो झूठ ही सही, कितना हसीन झूठ था वो
जो मुझ से छीन लिया उम्र के तक़ाज़े ने
मैं क्या बताऊँ वो कितनी हसीन दुनिया थी
जो बढ़ती उम्र के हाथों ने मुझ से छीन लिया

प्रतीकवादी जीवन से विरक्त नहीं होता। भौतिक संसार के मूल्यों से उसका सम्बन्ध होता है। सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी उसके प्रतीकों का महत्त्व है। आधुनिक युग में विशेषकर इस ओर ध्यान दिया गया है। अतः आज कवि इस सम्बन्ध में अपने पूर्वजों से आगे सोचता है। सरदार जाफ़री अपनी रचना 'तुम्हारी आँखें' में किसी के नैनों में वह सब बातें देख लेते हैं जो वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के ऊहापोह को स्पष्ट करती हैं। इन आँखों में वह ज्योति है जो जनक्रान्ति की अग्नि भी बन सकती है—

तुम्हारी आँखें
हसीन, शफ़्फ़ाफ़[3], मुस्कुराती, जवान आँखें
लरज़ती पल्कों की चिलमनों में
शहाबी[4] चेहरे प अबरूओं[5] की कमाँ के नीचे

(१) महीना और साल (२) चेतनात्मक-आयु (३) स्वच्छ (४) उल्कात्मक (५) भृकुटी।

तुम्हारी आँखें
वो जिनकी नज़रों के ठंडे साये में मेरी उलफ़त
मेरी मोहब्बत, मेरी जवानी की रात परवान चढ़ रही थी
तुम्हारी आँखें
अँधेरी रातों में जो सितारों की रोशनी से फ़िज़ाए-ज़िन्दाँ से

मैं लिख रहा हूँ
तुम्हारी आँखें सुफ़ेद काग़ज़ प अपनी पल्कों से चल रही हैं
मैं पढ़ रहा हूँ
तुम्हारी आँखें हर इक सतर की भवों के नीचे लरज़ रही हैं
मै सो रहा हूँ
तुम्हारी आँखें, तुम्हारी पल्कें कहानियाँ-सी सुना रही है
मैं दोस्तों और साथियों में घिरा हुआ हूँ
गुलाब ज़िन्दाँ[1] की क्यारियों में खिले हुये हैं
तुम्हारी आँखें मेरी मसर्रत के फूल बन कर महक रही हैं

मुझे गिरफ़्तार करके जब जेल ला रहे थे पुलीस वाले!
तुम अपने बिस्तर से, अपने दिल की तरह
अधूरे ख़्वाबों को ले के बेदार हो गई थीं
तुम्हारी पलकों से नींद अब भी टपक रही थी
मगर निगाहों में नफ़रतों के अज़ीम शोले भड़क उठे थे

मेरी मोहब्बत ने अपनी जन्नत का हुस्न देखा
तुम्हारी उन शोलाबार[2] आँखों प मेरी नज़रों के प्यार बरस
मेरी उमीदों, मेरी तमन्नाओं ने सदा दी
ये नफ़रतों की हसीन मिशअल[3] जलाये रखना
कि ये मुहब्बत के दिल शोला है जिसकी रंगीन रोशनी से
हमारे मकसद[4] के रास्ते जगमगा रहे हैं

तुम्हारी आँखें जो मेरे सीने में तैरती हैं
कँवल की कलियाँ जो मेरे दिल में खिली हुई हैं
उन्हीं से दो और आँखें बेदार हो गई हैं

(१) (२) अग्निमय (३) दिया (४) उद्देश्य

हमारी आँखों से आज शोले बरस रहे हैं
मगर वो कल का हसीन दिन देखो कितना नज़दीक आ रहा है
हमारी आँखों से जब बहारें छलक पड़ेंगी

नू० मीम० राशिद ने 'आवाज' को एक प्रतीक मानकर मानव जीवन का एक दूसरा पहलू पेश किया है। वो दिल्ली की कल्पना एक आवाज़ के साथ करते हैं और उसी से समाज एवं व्यवस्था के रहस्य स्पष्ट करते हैं—

—ये दिल्ली है
अपने ग़रीबुल-वतन[1] भाइयों के लिये
हार ग़ज़लों के लाई हैं उनकी बहन
और गीतों के गजरे बनाकर
"छमा-छम, छमा-छम दुल्हनिया चली रे"
"ये दुनिया है तूफ़ान मेल"
"ए मदीने के अरबी जवाँ"
"तेरी ज़ुल्फ़ें हमें डस गईं नाग बनकर—"
मगर इस सदा से बड़ा नाग मुमकिन है
जो ले गया एक पल में
जहाँ से ये आवाज़ आई
उसी सरज़मीं में
समुन्दर के साहिल प लाखों घरों में
दिये टमटमाने लगे
और एक दूसरे से
बहुत धीमी सरगोशियों[2] में
ये कहने लगे,
लो सुनो अब सहेर होने वाली है लेकिन
मुसाफ़िर की अब तक ख़बर भी नहीं है

प्रतीक सृजन में मार्मिक एवं अमार्मिक दोनों तरह के प्रतीकों का प्रयोग किया जा सकता है। उर्दू के आधुनिक काव्य में दोनों प्रकार के उदाहरण उपलब्ध हैं। 'मख़दूम' मोहीउद्दीन ने 'नींद' को प्रतीक बनाकर कहा है—

(१) प्रवासी (२) गुप्त-वार्ता

ये किसी की रंगीनी सिमट कर दिल में आती है
मेरी बेकैफ़ तनहाई को यूँ रंगीं बनाती है

ये किस की जुंबिशे-मिज़गाँ[1] ज़बाने-दिल को छूती है
ये किस की सरसराहट गुनगुनाती है

मेरी आँखों में किसकी शोख़िये-लब[2] का तसव्वर[3] है
कि जिस के कैफ़[4] से आँखों में मेरी नींद आती है

सुकूँ के, शान्ती के हर क़दम पर फूल बरसाती
असीरे-काकुले-शबगूँ[5] बनाकर मुसकराती है

मेरी आँखों में खुल जाती है वो कैफ़े-नज़र बनकर
मुझे क़ौसोक़ज़ह[6] की छाँव में पहरों सुलाती है

सहेर तक वो मुझे चिपटाये रखती है कलेजे से
दबे पाँव किरन ख़ुरशीद[7] की आकर जगाती है

ख़लीलुर्रहमान आज़मी ने किसी की 'याद' को अपना प्रतीक बनाया है। उनकी कविता भी जीवन के सत्य सामने लाती है और पलायन से घृणा को जन्म देती है—

अब भी दरवाज़ा खुलता है
रास्ता मेरा तक रहा है कोई
मेरे घर के उदास मंज़र पर
कोई ग़म अब भी मुस्कुराती है
मेरी माँ के सुफ़ेद आँचल को
ठन्डी ठन्डी हवायें रोती हैं
फ़ासला और कितनी तनहाई
आज कटती नहीं ये रातें
आसमाँ मुझ प तन्ज़[8] करता है
चाँद तारों में होती हैं बातें
ए वतन तेरे मुर्ग़ज़ारों[9] में
मेरे बचपन के ख़्वाब रक़्साँ[10] है

(१) भृकुटी-स्पदन (२) अधरधृष्टता (३) कल्पना (४) आनन्द (५) रात्रिमय केशों का बंदी (६) इन्द्रधनुष (७) सूर्य (८) व्यंग्य (९) उपवन (१०)

मुझसे छुटकर भी वादियाँ तेरी
क्या उसी तरह से ग़ज़लख्वाँ हैं

आधुनिक युग में उर्दू के कवियों ने प्रतीकवाद पर विशेष रूप से अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इस प्रतीकवादी माध्यम से बहुत-सी सफल रचनायें, उर्दू काव्य-साहित्य में रची गई हैं। इस शैली के मुख्य कवियों में विशेषकर फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' की 'ये रोशनियों के शहर' और 'हम जो तारीक राहों में मारे गये' नरेश कुमार 'शाद' की 'माँ', इब्ने इन्शा की 'सराय' नू० मीम० राशिद की 'साया' शाद आरफ़ी की 'दसहरा असनान' अख़्तरूल ईमान की 'एक लड़का' इत्यादि कवितायें देखने योग्य हैं।

(५) राष्ट्रीय समन्वय :—उर्दू का अस्तित्व जिन आवश्यकताओं से हुआ था उसमें एकता एवं समन्वय की भावनाओं का प्रभुत्व होना ज़रूरी था। उसके प्रारम्भिक विकास के समय सूफ़ी कवियों ने राम और रहीम के अन्तर को कम करके मानव बुद्धि को ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया था जहाँ संसार के समस्त व्यक्तियों को समान समझा जाता था। परिणाम-स्वरूप सतरहवीं सदी आते-आते एक ऐसी सभ्यता जन्म लेने लगी जो न तो पूरी तरह हिन्दुआनी थी और न इस्लामी। हिन्दू और इस्ला मी एक दूसरे का दिल से सम्मान करते थे। उनके त्योहारों को अपना त्योहार समझते थे और महात्माओं को श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। उर्दू में इस प्रवृत्ति को ढूँढने में ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत नहीं है। उसके किसी बड़े कवि का काव्य-संग्रह ले लीजिये अपने-आप इस प्रकार अनेक उदाहरण मिल जायेंगे। विशेष कर मुहम्मद कुली कुतुबशाह, 'फ़ाएज़', 'मीर', 'नज़ीर', 'इक़बाल', 'सफ़ी', इत्यादि कवियों के नाम इस सम्बन्ध में लिये जा सकते हैं।

आधुनिक कवियों ने भी राष्ट्रीय समन्वय की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है। 'साग़र' निज़ामी, 'नशूर' वाहदी, ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ', 'शमीम' करहानी इत्यादि कवियों ने विभिन्न भारतीय त्योहारों पर कवितायें कहकर अपने साथियों से निकटता प्रकट की है। यह कविताएँ प्रेम, श्रद्धा एवं स्नेह से परिपूर्ण हैं। और ऐसी प्रेरणा को प्रवाहित करती हैं जिसमें देश का कल्याण हो। इनमें सामाजिक यथार्थ का भी उल्लेख होता है। उदाहरणार्थ डा० सलाम संदेल्वी की कविता 'होली' देख लीजिये—

होली आई, होली आई, रंग गुलाबी साथ में लाई
बच्चे, बूढ़े, जवान, औरत, मर्द सभी पर लाली छाई
पूरी पक्की, गोझिया निकली, बने समोसे चढी कढ़ाई
ढोल बजाते, होली गाते, लोग फिर रहे हैं गाँव में
लेकर अपनी अपनी टोली
आई होली, आई होली

बरस रहा है गुलाल सब पर, चारों ओर चली पिचकारी
खेल रहे हैं रंग आपस में, प्यार से दोनों नर और नारी
लालों लाल है कुरते धोती, जूते, टोपी, जमपर, सारी
सुख, आनन्द, स्नेह को लेकर प्रेम की देवी के पाँवों में
आँख है अपनी जग ने खोली
आई होली, आई होली

लेकिन हम हैं वीर सिपाही, हम क्या जानें रंग उड़ाना
भारत माता दुखयारी है अपना धर्म है उसको बचाना
काम हमारा बिगुल बजाना, तोप चलाना, बम बरसाना
विष्ट की सेना से हिलमिलकर, आज कटारों की छाओं में
खेलेंगे हम ख़ून की होली
आई होली, आई होली

उर्दू के कवि राष्ट्रीय समन्वय के सम्बन्ध में किसी विशेष धर्म अथवा जाति के लिये ही उदारता प्रकट नहीं करते। संसार की समस्त जातियाँ उनकी दृष्टि मे एक हैं। वे युसुह मसीह, महात्मा बुद्ध, हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा, हज़रत अली, इमाम हुसैन, भगवान रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महावीर, गुरुनानक सभी के पवित्र व्यक्तित्व को मानव जाति के लिये एक वंदना मानते हैं। उनकी सत्य कल्पना उनमें भेदभाव नहीं कर सकती। उन्होंने सबको समान श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने की कोशिश की है। उदाहरणार्थ प्रसाद 'मुनव्वर' लखनवी अपनी कविता 'महात्मा बुद्ध की याद में' कहते हैं—

ख़्वाब माया ने जो देखा था वो सच्चा निकला
दर्दमन्दों की दुआओं का नतीजा निकला

आदमीयत के फ़लक पर वो सितारा निकला
सामने जिसके रुख़े-महेर[1] भी फीका निकला
देवता जिसकी सलामी के लिये रुकते हैं
जिसके सिजदे को फ़रिश्तों के भी सर झुकते हैं
राज की ठाठ को जो एक मुसीबत समझा
ताज के, तख़्त के एजाज़[2] को लानत[3] समझा
ज़ुल्म को, जौर[4] को जो वज्हे-अज़ीयत[5] समझा
जिसने समझा तो बस इक राज़े-मोहब्बत समझा
सलतनत से था न कुछ काम हुकूमत से था
मुतमइन दिल था तो इक दर्द की दौलत से था
मुँह ज़रो-माल[6] के अम्बार से मोड़ा जिसने
दोस्तदारों को, अज़ीज़ों को भी छोड़ा जिसने
ज़नो फ़रज़न्द[7] के रिश्ते को भी तोड़ा जिसने
सिलसिला ज़ीस्त का निर्वान से जोड़ा जिसने
चोट खा-खा के नई तरहे-अमल[8] डाली है
जिसने इनसान की फ़ितरत ही बदल डाली है

उर्दू कवियों का राष्ट्रीय समन्वय से प्रेम राजनीति की ऊबड़ घाटियों को भी तोड़ता है। पाकिस्तान अभी कल तक भारत का एक अटूट अंग था। वहाँ के निवासियों और हममें लगभग सभी जीवन-मूल्य समान हैं। उर्दू के बहुत से कवि पाकिस्तान के रहने वाले हैं। बहुत से ऐसे हैं जो किसी राजनीतिक कठिनाई से अपनी मातृभूमि छोड़कर भारत में आ बसे हैं। उनका पाकिस्तान से हार्दिक सम्बन्ध है। अतः वे चाहते हैं कि दोनों देशों में मित्रता अधिक से अधिक बढ़े। जगन्नाथ 'आज़ाद' ने एक मुशाएरे में पाकिस्तानी शाएरों के आगमन पर कहा था—

मेरी बज़्मे-तरब[9] में सोज़े-पिनहाँ[10] लेके आये हो
चमन में यादे-अय्यामे-बहारां[11] लेके आये हो
उसी दरमाँ[12] को मेरा दर्दे-पिनहानी[13] तरसता है

(१) सूर्य का मुँह (२) सम्मान (३) तिरस्कार (४) बलात (५) दुख का कारण (६) धन दौलत (७) पत्नी एवं पुत्र (८) क्रिया मार्ग (९) प्रसन्न-सभा (१०) निहित वेदना (११) बहार के दिनों की याद (१२) इलाज (१३) आन्तरिक वेदना।

तुम अपने दिल के परदों में जो दरमाँ लेके आये हो
दयारे 'मीर' में इक़बालो-वारिसशाह के घर से
नसीमो-रंगों-क़ैफ़ा[१] शबनमियत लेके आये हो

तुम्हारे साथ इक गुज़रा ज़माना लौट आया है
मोहब्बत का गराँ-माया[२] ख़ज़ाना लौट आया है

उर्दू-कवियों की यह उदारता केवल पाकिस्तान तक सीमित नहीं। वे विश्व के समस्त राज्यों को एक लड़ी में पिरोया देखना चाहते है। उनकी कल्पना में यूरोप, एशिया और अफ़्रीक़ा का भी भेदभाव नहीं। वे खुले दिल के साथ सबसे मित्रता चाहते हैं। आज नहीं कई वर्ष पूर्व जब भारत-चीन मित्रता की लहर तेज़ी से दौड़ रही थी, रज़िया सज्जाद ज़हीर ने लखनऊ में चीन के सांस्कृतिक आयोग के आगमन पर एक कविता 'बात सुनो' कही थी, जिसके अंग-अंग में प्रेम, श्रद्धा और स्नेह है। कौन जानता था कि चीनी इसका उत्तर घृणा, द्वंद और पशुता से देंगे और आने वाले दिनों में उनकी साज़िश फूट जायेगी और हमारी उदारता अपने मित्र रूपी शत्रु पर व्यंग्य बन जायेगी। पहले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये यह कविता देख लीजिये—

चीन देस से आने वालो! आओ मनकी बात सुनो
बीती बात नई हो जाये, फिर मिल जायें हाथ सुनो
शान्ति और प्रेम के द्वारे स्वागत तुमरा करते
गांधी जी की फुलवारी के इक-इक डाल और पात सुनो
कितने प्यार और मान से तुमने, हमसे नैन मिलाये
कितनी सुन्दर डगर चलेंगे हम दोनों इक साथ सुनो
पूरब से सूरज निकलेगा, घोर अँधेरा छा जायेगा
मन के दीपक जल जायें, जब हारे काली रात सुनो
भारत चीन के हाथ मिलें जब, कौन खड़ा हो आगे
युद्ध करने वाली शक्ति ही को हो जायेगी मात सुनो
भारत का है एक जवाहर, चीन का माऊ दूजा
दोनों मिलकर आज बनायें जग की बिगड़ी बात सुनो

(१) पुर्वाई, श्रृंगार एव आनन्द (२) मूल्यवान।

राष्ट्रीय समन्वय के महत्त्व से आज का उर्दू का कवि भली भाँति परिचित है और उसने इस क्षेत्र में बड़ा योगदान दिया है। उर्दू के प्रायः सभी काव्य-रूपों में इससे प्रेरित रचनायें मिलेंगी। उदाहरणार्थ ग़ज़लों के महान संकलन के अलावा क़तील शफ़ाई की 'दीवाली' और डॉ० सलाम संदेलवी की 'बसन्त' विशेषकर देखी जा सकती है।

(६) भारतीयता—उर्दू ने भारत में जन्म लिया। गंगा-यमुना की सोंधी और पवित्र भूमि मे इसका पालन-पोषण हुआ। भारत की अनेक जातियों ने अपनी गोद में लेकर इसका लालन-पालन किया फिर क्योंकर न उनका प्रभाव पड़ता। उर्दू के प्रारंभिक युग से लेकर आज तक कवियों ने भारतीय परम्पराओं को ध्यान में रखा है। चाहे सामाजिक जीवन का क्षेत्र हो या राजनीति का, उर्दू कवियों ने भारतीय समस्याओं को अपना क्रिया-केन्द्र बनाया है। उसका एक विहंगावलोकन आपको इस पुस्तक में मिल गया होगा। उर्दू कवि प्रारम्भ से यहाँ के रीति-रवाजों, त्योहारों, धर्मों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों इत्यादि को अपनी रचनाओं मे स्थान देते आये हैं। नवीन युग और विशेषकर आधुनिक युग में भारतीयता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जिसका एक विवेकात्मक पहलू भी है और उसमें उदारता से ज़्यादा चिन्तन को महत्त्व प्राप्त है। उर्दू काव्य के भारतीयता से परिपूर्ण पहलू को समझने के लिये भारतीय मान्यताओं को भी समझ लेना चाहिये। भारत में मुसलमानों के आगमन के पूर्व भी यहाँ की अपनी सभ्यता उत्थान के शिखर तक पहुँची हुई थी। अहिंसा, प्रेम, श्रद्धा, स्नेह, त्याग, बलिदान, साहस, वीरता इत्यादि भावों से जनता का दैनिक जीवन परिपूर्ण था। इसलाम ने आने के बाद उनके आदरणीय भावों को और भी प्रोत्साहन दिया। शायद समानता एवं समन्वय के महान सिद्धान्तों के लिये अरब से अधिक यहाँ की भूमि अनुकूल भी थी। सूफ़ियों और भक्तों ने एक दूसरे को समझने-समझाने की सफल चेष्टा की। परिणामस्वरूप उर्दू काव्य में अन्य धर्मों से प्रेम करना एक प्रवृत्ति-सी बन गई। आधुनिक कवि केवल नाममात्र के समन्वय तक सीमित नहीं हैं उन्होंने भारतयीता को एक आदर्श के रूप में माना है और उसके स्वस्थ मूल्यों को उर्दू में प्रवेश करा देना चाहते हैं। 'फ़िराक़' गोरखपुरी का कारनामा इस सिलसिले में सबसे बड़ा है। उन्होंने बड़े विवेक से प्राचीन भारतीय समाज की आत्मा अपने काव्य द्वारा उर्दू में दाख़िल

की है। उनका आदर्श प्रेम है और 'इश्क़िया शाएरी' उनका लक्ष्य है परन्तु भारतीयता को उर्दू में समाविष्ट करने का जो महान कार्य उन्होंने किया है, उसकी बदौलत सदैव अमर रहेंगे। उन्होंने भारतीय जीवन के अमिट चिह्नों से अपना प्रेम-काव्य सजाया है। उनके कुछ मुक्तक उदाहरण में दिये जा सकते हैं—

रक्षा बंधन की सुब्ह रस की पुतली
छाई है घटा गगन प हल्की हल्की
बिजली की तरह लचक रहे हैं लच्छे
भाई के है बाँधती चमकती राखी

मण्डप के तले खड़ी है रस की पुतली
जीवन साथी से प्रेम गाँठ बँधी
महके शोलों के गिर्द भाँवर के समय
मुखड़े प नर्म छूट-सी पड़ती हुई

है ब्याहता पर रूप अभी कुँवारा है
माँ है पर अदा जो भी है दोशीज़ा है
वो मोद भरी, माँग भरी, गोद भरी
कन्या है, सोहागन है, जगत माता है

ये हल्के सलोने साँवलेपन का समाँ
जमना जल में और आसमानों में कहाँ
सीता प सोयम्वर में पड़ा राम का अक्स
या चाँद से मुखड़ों प है ज़ुल्फ़ों का धुवाँ

मधुबन के बसन्त-सा सजीला है वो रूप
बरखा रुत की तरह रसीला है वो रूप
राधा की झपक कृष्ण की बरजोरी है
गोकुल नगरी की रासलीला है वो रूप

चौके की सोहानी आँच मुखड़ा रौशन
है घर की लक्ष्मी पकाती भोजन
देते हैं करछुली के चलने का पता
सीता की रसोई के खनकते बरतन

हौदी प खड़ी खिला रही है चारा
जोबन रस अँखड़ियों से छलका-छलका
कोमल हाथों से है थपकती गरदन
किस प्यार से गाय देखती है मुखड़ा

आँगन में सोहागनी नहा के बैठी
रामायन ज़ानुओं[1] प रक्खी है खुली
जाड़े की सोहानी धूप खिले गेसू की
परछाईं चमकते सफ़हे पर पड़ती हुई

ये ईख के खेतों की चमकती सतहें
मासूम कुँवारियों की दिलकश दौड़ें
खेतों के बीच लगाती है छलाँग
ईख उतनी उगेगी, जितना ऊँचा कूदें

भारतीय समाज में प्रेम अहिंसा को सदैव से एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, कृषक अपना ख़ून-पसीना एक करके धरती के सीने को चीर कर कुछ पौधों को जन्म दिलाता है जिससे देश की जीविका तैयार होती है। कृषि और हिंसा साथ-साथ नहीं चल सकती। कृषक, मनुष्यों के अतिरिक्त अपने खेतों, पौधों और पशुओं से भी प्रेम करता है। उर्दू का आधुनिक कवि भारतीय जीवन के इस आदर्श से परिचित है और इसे एक सम्मान की दृष्टि से देखता है। इसलिये स्वयं भी एक कृषक होने की अभिलाषा रखता है। रफ़अत सरोश अपनी रचना 'किसान' में कहते हैं—

बेआबो-गयाह[2], बाँझ धरती
मुझसे ये सवाल कर रही है
"ए ख़ालिके-नग़मए-बहारां[3] !
सदियों से हूँ मैं, ख़िज़ाँ-रसीदा[4]
मफ़लूज[5] हैं कब से मेरे आज़ा[6]
तुम मेरा मदावा[7] कर सकोगे ?"

---

(१) जाँघों (२) बिना जल व तृण (३) ए बहार की संगीत के रचयिता (४) पतझड़ में घिरा (५) स्पंदनहीन (६) अंग (७) इलाज।

मैं चुप हूँ ख़मोश हूँ कहूँ क्या
शाएर हूँ मैं लफ़्ज़ों का मसीहा
ए काश मैं इक किसान होता
इस धरती के मुनजमिद[1] लहू को
मदहोशी की नींद से जगाता
मेहनत से नये चमन खिलाता
मिट्टी को नई दुल्हन बनाता

आधुनिक युग में उर्दू कवियों ने भारतीयता को विशेषकर अपना आधार बनाया है और इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय काव्य संकलन भी हुआ है। उनकी समस्त रचनाओं में एक बल है, एक शक्ति है जो भारत की प्राचीन मान्यताओं से प्रोत्साहन पाती है। उन्होंने जीवन के उन्हीं मूल्यों को अपनाया है जिनपर भारतीय संस्कृति की आधार शिला है। नज़ीर बनारसी आधुनिक युग के कवियों में अपनी भारतीय विचारधारा के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी देशभक्ति में राजनीतिकता के अतिरिक्त उसका सांस्कृतिक पहलू भी प्रबल है। भारत से उनका तादात्म्य हार्दिक सम्पर्क से है। वे इसी में डूबकर भारत को 'प्यारा हिन्दुस्तान' कहते हैं—

जिसका है सबको ज्ञान यही है
सारे जहाँ की जान यही है
जिससे है अपनी आन यही है
मेरा निवासस्थान यही है
प्यारा हिन्दुस्तान यही है

आरती इसकी चाँद उतारे
ऊषा इसकी माँग सँवारे
सूरज इसपर सब कुछ वारे
मेरा निवासस्थान यही है
प्यारा हिन्दुस्तान यही है

झूमती गायें, नाचते पंछी
सारी दुनिया रक्सो मस्ती[2]
कृष्न को बन्सी हाय रे बंसी

---

(१) जमे हुये (२) नृत्य और मस्ती

मेरा निवासस्थान यही है
प्यारा हिन्दुस्तान यही है

एक तरफ बंगाल का जादू
सर से कमर तक गेसू[1] ही गेसू
फैली हुई टैगोर की खुशबू
मेरा निवासस्थान यही है
प्यारा हिन्दुस्तान यही है

मन्दिर, मस्जिद और शिवाले
मानवता का भार संभाले
कितने युगों को देखे-भाले
मेरा निवासस्थान यही है
प्यारा हिन्दुस्तान यही है

(७) राजनीतिक विचारधारा :—मानव जीवन का आलेखन एवं नेतृत्व करते हुये साहित्य के स्रोत राजनीति से भी मिलते हैं। कवि इसके द्वारा एक सुखपूर्ण जीवन की कल्पना करता है। उर्दू शाएरी में प्रारम्भ से राजनीतिक विचार लिपिबद्ध होते रहे हैं। पराधीनता के युग में देश में जागरण उत्पन्न करने में उर्दू की राजनीतिक प्रवृत्तियों ने बड़ी सहायता की थी। देश के नेताओं ने भी कवियों को उत्साह दिया था कि वे देश-जनों की विवेकशीलता की वृद्धि में सहायक बनें। स्वतंत्रता के बाद उसके इस विवेक में और भी वृद्धि हुई है और अनेकानेक राजनीतिक विचारधारायें सामने आ गई हैं। विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपनी विचारधारा इसके माध्यम से जनता में पहुँचाने की कोशिश की है। उर्दू कवियों ने इस संबंध मे ज्ञान-शिखा का कार्य किया है। 'शाद' आरिफ़ी कहते हैं—

हमारी ग़ज़लों, हमारे शेरों में तुमको आगही[2] मिलेगी
कहाँ कहाँ कारवाँ लुटे हैं, कहाँ कहाँ रोशनी मिलेगी

उर्दू कवियों के लिये आज यह बात कोई रहस्य की नहीं है कि जीवन का कारवाँ क्यों और किसको सहायता से लूटा जाता है। 'शहाब' जाफ़री माँग करते हैं—

(१) केश (२) ज्ञान।

ग़ज़ल की प्रकृति में बड़ी लचक है। उसने राजनीतिक विचारों को पेश करने की सुविधा उत्पन्न कर ली है। इस सम्बन्ध में उर्दू के प्रचलित प्रतीकों (Symbols) से बड़ी सहायता मिलती है। गुल, बुलबुल, सैयाद, क़फ़स इत्यादि के परदे में राजनीतिक विचार प्रकट किये जाते हैं। परन्तु इसकी कला में इतनी व्यापकता होती है कि कटु-राजनीति में भी ग़ज़ल की आत्मा बरक़रार रहती है। मामूली पढ़ने वाला इसे प्रेम की ही वाणी समझता है। साथ ही साथ ऐसी ग़ज़लें भी है जिनमें प्रकटतः राजनीतिक विचार पेश किये जाते हैं। उदाहरणार्थ फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' की एक ग़ज़ल देखी जा सकती है—

तुम आये हो, न शबे-इन्तेज़ार[1] गुज़री है तलाश में है सहेर[2], बार बार गुज़री है
जुनूँ[3] में जितनी भी गुज़री बकार[4] गुज़री है अगरचे दिल प ख़राबी हज़ार गुज़री है
वो बात सारे फ़साने में जिसका ज़िक्र न था वो बात उनको बहुत नागवार गुज़री है
न गुल खिले हैं, न उनसे मिले, न मय पी है अजीब रंग में अबके बहार गुज़री है
चमन प ग़ारते-गुलची[5] से जाने क्या गुज़री
क़फ़स[6] में आज सबा बेक़रार गुज़री है

स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक विवेक में साम्यवादी विचारधारा को एक विशेष स्थान प्राप्त है। उर्दू के कवियों का एक बड़ा वर्ग साम्यवादी दल से सम्बन्धित न होने पर भी उससे सहानुभूति रखता है। कुछ लोग भूख और निर्धनता से बचने का एक मात्र उपाय साम्यवाद को मानते हैं। उसके द्वारा जनता में समानता देखना चाहते हैं—न कोई ग़रीब हो और न अमीर। कुछ लोग सामाजिक ऊहापोह से परीशान होकर परिश्रम के आधार पर वेतन की माँग करते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा न हुआ तो एक जनक्रान्ति अवश्य होगी।

मैं ये नहीं कहता कि सवेरा करदे
दो काम में इक काम हमारा करदे
या रोशनीए-तेज़ कि कुछ देख सकें
या और भी घनघोर अँधेरा करदे

(अल्लामा जमील मज़हरी)

मुफ़लिसों[7] के सिपाहख़ाने[8] में
आँसुओं के चिराग़ जलते हैं

---

(१) इन्तेज़ार की रात (२) सुबह (३) उन्माद (४) सफल (५) उद्यान के विनाश के विनाश (६) पिंजड़े (७) निर्धनों (८) अन्धकारपूर्ण गृह।

इन चिराग़ों की झिलमिलाहट में
सैकड़ों इनक़्लाब पलते है

(नरेश कुमार 'शाद')

ऐसी स्थिति मे सरकार के कार्यों की आलोचना स्वाभाविक है। उर्दू कवियों का एक वर्ग देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुये देश की गणतंत्र सरकार के उस आधार को ही स्वीकार करने को तैयार नहीं जिसमें ग़रीब और ग़रीब और अमीर और अमीर होते जाते हैं। इस प्रकार की विचार-धारा आज बहुत से कवियों के हृदय मे पोषित हो रही है कि हमे वास्तविक स्वतंत्रता उस समय प्राप्त होगी जब देश आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र हो जायेगा। 'मख़मूर' जालन्धरी ने अपनी कविता 'जश्ने-जमहूरियत' मे प्रत्येक वर्ष के गणतंत्र समारोह को एक पाखण्ड कहा है, जिसमे तोपों और फ़ौजों के साथ देश की जनता को दहलाया जाता है।

रहगुज़ारों प धमक और सजीले पहरे
फिर किसी ने हमें बहकाया कि आज़ाद हैं हम
तख़्त है, ताज है, मनसब[1] है, हमारी राय
एक जमहूरियाए-उज़मा[2] के अफ़राद[3] है हम

जमा है जाहो-हशम[4] आज फरेरों के तले
घर से निकले हैं वही लोग फ़राग़त हैं जिन्हें
सुब्ह भी जिनकी सभा, शाम भी जिनकी जलसा
अपने पिनदार[5] के दिखलावे की आदत है जिन्हें

आज छुट्टी है हुकूमत की तरफ़ से उनकी
मोल ले लेती है ये चन्द नवालों से जिन्हें
और फिर अपने तमाशों मे इज़ाफ़े[6] के लिये
खींच लाती है कड़े ख़ौफ़ के भालों से जिन्हें

आज के दिन कोई मेला है वो सुन लेते हैं
जाना भी चाहें तो पल भर को नहीं जा सकते
मेले जाने की नफ़ासत के भी वो अहेल नहीं
मुँह तो धो सकते हैं, कुरता नहीं धुलवा सकते

(१) पद (२) महान गणतंत्र (३) व्यक्ति (४) वैभव एव प्रताप (५) दम्भ (६) वृद्धि।

आहनी[1] फ़ौज के, पुलीस के दिखलावे को
जश्ने-जमहूर-रेयाकार[2] ही कह सकते हैं
जश्ने-जमहूर के परदे में ये मज़ूम-मज़ाक़[3]
सच्चे इनसानों के ग़द्दार ही सह सकते हैं

जश्ने-जमहूर नहीं ये तो है जश्ने-क़ूवत
इक बहाना है हमें लोहे से दहलाने का
कोई हैरत नही ऐसे में हमारा सौदा[4]
और बढ़ता है जो इस लोहे से टकराने का

एक बार और हम ऐसे में क़सम खाते हैं
अपनी धरती प बहुत जल्द वो दिन लायेंगे
जश्ने-जमहूर का दिन, जब ये गली कूचों से
लोग ख़ुशबुओं से, रेशम से लदे आयेंगे

देश की राजनीतिक ऊहापोह पर जनता का चिन्ताग्रस्त होना कई प्रकार से स्वाभाविक है। कवि प्रश्न करता है कि जब हम अपने भाग्य-विधाता स्वयं ही हैं, नवीन जीवन के निर्माण के लिये प्रयत्नशील हैं, फिर देश की आर्थिक स्थिति क्यों गिरती जा रही है। उर्दू कवियों ने इस दुख का कारण ढूँढना चाहा है। राही मासूम रज़ा 'हमें जवाब चाहिये' की प्रकटतः माँग करते हैं—

भटक रही है लोरियाँ
उदास है हर एक माँ
वो माँ कि प्यार का जहाँ
थकी हुई है दिन के काम से मगर न सो सके
बिलक रहे हैं चीथड़ों प इरतेक़ा[5] के मोजज़े[6]
ये क्यों है और किस लिये, सवाल किससे वो करे
जवाब इसका कौन दे ?

ये कारख़ानों का जहाँ
फ़ज़ा में हर तरफ़ धुवाँ
ये काली-काली चिमनियाँ

(१) लौह (२) पाखण्डी व्यक्तियों की सभा (३) निन्दनीय विनोद (४) उन्माद (५) विकास (६) चमत्कार।

उठी हुई हैं गरदनें, कोई ज़रूर खो गया
धुएँ में घुट रही हैं, ढूँढ़ती हैं जैसे रास्ता
हयात शर्मसार है, ये क्यों हुआ ? ये क्या हुआ ?
जवाब इसका कौन दे ?
जवाब इसका कौन दे कि राहबर तो सो गये
चले थे लेके जो हमें वो गर्दे-रह में खो गये
हयात की शराब दो
ग़ुरूरे-माहताब दो
सवाल का जवाब दो
अँधेरा बढ़ रहा है, हमको आफ़ताब चाहिये
हमारे गीत मर रहे हैं इक रबाब चाहिये
हयात मुज़महिल-सी है, इक इनक़लाब चाहिये
जवाब इसका कौन दे ?
हमें जवाब चाहिये !

ऐसी स्थिति में सरकार पर उनका विश्वास कम हो जाता है। देश को उन्नति के शिखर पर ले जाने की कल्पना उन्हें सरकार का भी विरोधी बना देती है। परस्पर संघर्ष में उन्हें सुख के बजाये दुख का उपभोग भी करना पड़ता है। स्थिति की उलट-फेर में व्यक्तियों का सहयोग भी कम होने लगता है। उनमें कुछ लोग परस्पर कठिनाइयों से ऊबकर संघर्षकर्ताओं का साथ छोड़ देते हैं। कुछ स्वार्थी होते हैं और अपने स्वार्थ की पूर्ति मे देर देख कर दूसरा रास्ता अख़्तियार कर लेते हैं। 'फ़ारिग़' बोख़ारी उन्हें 'खोटे सिक्के' कहते हैं—

ठीक है आप मेरा साथ कहाँ तक देते
मुफ़्त में क्यों कोई बेकार झमेलों मे पड़े
मैं तो दीवाना हूँ, दीवाना हूँ, दीवाना हूँ !
कोई ज़ी-फ़हेम[1] पहाड़ों से उलझता है कभी
बेख़तर राहों मे हमवार गुज़र-गाहों में
मंज़िलों आप मेरे साथ चले आये हैं
अब मगर ऐसे दो-राहे प हम आ पहुँचे हैं
कि उधर ऐश भी, आराम भी, इज़्ज़त भी है

(१) ज्ञानी

और इधर दर्दो-ग़मो-रंज का है कोहेगराँ[1]
मुझको उस राह से जाना है, जो दुश्वार भी है
और इस राह में भूतों के बसेरे भी हैं
और वो राह दरिन्दों की गुज़रगाह भी है
वो दरिन्दे कि जो इनसानों के ख़ूँ पीते हैं
मैं तो मजबूर हूँ इस राह से जाने के लिये
मैंने दिल में ये क़सम खाई है
कि मैं इस राह को इनसाँ की गुज़रगाह बनाने के लिये
ग़मे-दुशवारिए-मंज़िल[2] से गुज़र जाऊँगा
आप शरमायें नहीं
मसलहत का ये तक़ाज़ा है मेरा साथ न दें

स्वतंत्रता के बाद से उर्दू काव्य में राजनीतिक विचार धारा रखनेवाली रचनाओं का एक बड़ा भाण्डार एकत्रित हुआ है। विशेषकर जमील मज़हरी की 'धारें', जाँनिसार 'अख़तर' की 'सितारों की सदा', जगन्नाथ आज़ाद की 'ए अमीरे कारवाँ', अहमद राही की 'ज़वाले-दारे-रसन', अहमद नदीम 'क़ासिमी' की 'आखिरी फ़ैसला', ज़हीर काश्मीरी की 'जमहूर', मख़दूम मोहीउद्दीन की 'क़ैद', और सरदार जाफ़री की 'सरे-तूर' आदि कवितायें देखी जा सकती हैं। इन कविताओं के देखने से अनुमान होता है कि सामूहिक रूप से उर्दू के कवि भारत के भविष्य से निराश नहीं हैं। वे सोचते हैं कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय होगा। नरेश कुमार 'शाद' भारत के 'मुसतक़बिल' के लिये सोचते हैं—

वो दूर नहीं अब साथी !

दूर उफ़ुक़ के दरवाज़ों से
झाँकेगी इक सुब्ह निराली
और अँधियारी कुटियाओं पर
छा जायेगी सुन्दर लाली
इस लाली की सुन्दरता से
नींद के माते जाग उठेंगे

(१) भारी पहाड़ (२) मंज़िल की कठिनाइयों का दुख।

धरती के अन्याय नगर से
काले ज़हरी नाग उठेंगे
भूक का इक सैलाब बढ़ेगा
और मज़हब के मुरदा ढाँचे
इस सैलाव में गल जायेंगे
हर नगरी के भूके इनसाँ
इक साँचे में ढल जायेंगे
धरती का दिल काँप उठेगा
किष्ट की ज्वाला फूट पड़ेगी
एका करके भूकी जनता
धनवानों पर टूट पड़ेगी
आख़िर ऐसा वक्त आयेगा
जब राजाओं के महलों में
तख़्त न होंगे ताज न होंगे
जिनसे ख़ूँ की बू आती हो
वो नीलम पोखराज न होंगे
हर बस्ती मे हर नगरी में
ख़ुद ही परजा राज करेगी
अपने जीवन के ख़ाकों में
आशाओं का रंग भरेगी

(८) समाज-सुधार प्रवृत्तियाँ :—साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब भी होता है और उसकी आलोचना भी करता है। उर्दू काव्य-साहित्य प्रारंभ से इसी आधार पर प्रयत्नशील रहा है। आधुनिक युग में समाज के कल्याण की ओर हमारे कवियों ने विशेष कर ध्यान दिया है। स्वतंत्र देश के नागरिकों पर अपने जीवन के निर्माण का भार होता है। इस संबंध में हमारे कवियों ने अनेक समस्याओं को सामने रखा है और उनके आधार पर समाज में सुधार लाने की चेष्टा की है।

आधुनिक युग की समाज-सुधार-प्रवृत्तियाँ उदारता से अधिक प्रेम-भावों से ओत-प्रोत हैं। नारी जाति नवीन युग के पूर्व अपने उन अधिकारों से वंचित कर दी गई थी जो संसार के निर्माण के समय सृष्टि-रचयिता से उसे

प्राप्त हुये थे। उसकी स्थिति केवल एक दासी की थी, जो पुरुष के अधिकार में घर की अन्य वस्तुओं की तरह रह सकती थी। उसका काम सब की सेवा करना, बच्चे पैदा करना और उनका लालन-पालन करना था। उसे समाज में कोई अधिकार प्राप्त न था। स्वतंत्रता के बाद स्त्री जाति के सम्मान को समझने की कोशिश की गई है, उसे समाज एवं राजनीति में महत्त्व प्राप्त हुआ है। उर्दू का आधुनिक कवि नारी जाति के महत्त्व एवं सम्मान को समझता है। नरेश कुमार 'शाद' ने एक क्लर्क लड़की की बेकसी को देखकर कहा है—

जिस्म है तेरा रंग की दुनिया
रूप है तेरा नूर की वादी
तो भी है मजबूर क्लर्की पर
ऐ क्लर्कों के दिल की शहज़ादी

तू भी वो शेरे-दिलनशीं[1] है जिसे
आज तक कोई क़द्रदाँ न मिला
ख़ुद सरापा[2] बहार है लेकिन
तेरा अपना चमन कभी न खिला

आइना किस लिये है ज़ंग-आलूद[3]
फूल की पंखड़ी में सिल क्यों है
देखकर तुझको सोचता हूँ मैं
ज़िन्दगी इतनी तंग-दिल क्यों है

नारी जाति से उसका जीवन हरण करने में कई प्रकार के पाखंड रचाये गये हैं। धर्म का उद्देश्य शिक्षा-दीक्षा है परन्तु इसके सहारे भी अबलाओं का जीवन नष्ट किया गया है। अपनी वासनामयी प्रवृत्ति को शान्ति देने के लिये युवतियों के रक्त को किस प्रकार बहाया जाता था उसका अनुमान कृष्ण मोहन की कविता से हो सकता है—

कहते हैं पराचीन समय में
भारत देश के राजे अपने देवताओं की मूर्तियों को
दोशीज़ाओं[4] के गुलरंग[5] लहू में नहलाते थे
जोबन की हत्या से ईश्वर-प्रेम की सौगंदें खाते थे

(१) हृदय स्पर्शी-काव्य (२) साक्षात (३) ज़ंग लगा हुआ (४) कुँवारियों (५) लाल।

सुख के रसिया, अन्याय के पुजारी
जीवन के बलिदान से मक्तों के ज़ख़्मों को बहलाते थे
मुझसे ये बेरहमी का व्यवहार न देखा जाता
मानव जीवन पर ये "ईश्वर प्रेम" का अत्याचार न देखा जाता

पुरुष वर्ग ने स्त्री जाति पर जो अत्याचार किये हैं उसका एक परिणाम वेश्याओं के रूप में हमारे सामने है। पुरुष न जाने कितने निर्बलों का जीवन नष्ट करने के बाद भी समाज में सम्मानित रहता है और नारी उसके अत्याचार से परीशान होकर बाज़ार में बैठ जाने पर वेश्या कहलाती है। क़तीलशफ़ाई ने अपनी रचना "शमए-अंजुमन" में हरजाई कही जाने वाली स्त्री की विपत्ति का वर्णन बड़ी सहानुभूति से किया है कि वह किस प्रकार सम्मानपूर्ण ज़िन्दगी की कलह में तड़पती है और मौत उसे हिस्से में मिलती है। वह मजबूर होकर अपने दुख स्वयं बताती है—

मैं ज़िन्दगी के हर एक साँस को टटोल चुकी
मैं लाख बार मोहब्बत के भेद खोल चुकी
मैं अपने आप को तनहाइयों में तौल चुकी
मैं जलवतों[a] में सितारों के बोल बोल चुकी
—मगर कोई भी न माना

वफ़ा के दाम बिछाये गये क़रीने से
मगर किसी ने भी रोका न मुझको जीने से
किसी ने जाम चुराये हैं मेरे सीने से
किसी ने इत्र निचोड़ा मेरे पसीने से
—किसी को ग़ैर न माना

मेरी नज़र की गिरह खुल गई तो कुछ भी न था
जो बाज़ुओं में कहीं तुल गई तो कुछ भी न था
मेरे लबों से शफ़क़[1] धुल गई तो कुछ भी न था
जवाँ रही सो रही घुल गई तो कुछ भी न था
—कि लुट चुका था ख़ज़ाना

रही न साँस में ख़ुशबू तो भाग फूट गये
गया शबाब तो अपने पराये छूट गये

(१) लालिमा।

कोई तो छोड़ गये, कोई मुझको लूट गये
महल गिरे सो गिरे झोंपड़े भी टूट गये
—रहा न कोई ठिकाना

'शमीम' करहानी ने भी 'बाज़ार' का चित्रण बड़ी सुगमता से किया है। उनको उन दलित नारियों से सहानुभूति है जो अपनी परिस्थितियों से बाध्य होकर सतीत्व का व्यापार करने पर विवश हैं। उन्होंने बड़े दुख से जीवन का यह दुखमय दृश्य पेश किया है :—

सूरत चम्पा, मूरत बेला
जीवन अल्हड़, रूप अनीला
जीवन भीड़, जवानी मेला
इस मेले में, हुस्न अकेला
लाखों डाकू लाखों रहज़न[1], हाय अभागन हाय बिरोगन
दिल कुम्हलाया अरमाँ मारे
बोझल दीप निंदासे तारे
नींद बोलाये सेज पुकारे
फिर भी दस्तक फिर भी इशारे
"मेरी सजना आओ साजन" हाय अभागन हाय बिरोगन
नाच दिखाये, गीत सुनाये
फूल खिलाये दीप जलाये
दुख बिसराये सुख पहुँचाये
भूक मिटाये, प्यास बुझाये
फिर भी मुजरिम फिर भी पापन हाय अभागन हाय बिरोगन
बरसा बरसा ज़ुल्फ़ का बादल
फैला फिसला आँख का काजल
जी डूबा-सा मन कुछ बोझल
मसकी साड़ी, ढलका आँचल
नीची नज़रें, लाज की चिलमन हाय अभागन हाय बिरोगन
लाग नहीं कोई जीवन में
आग नहीं कोई तनमन में

(१) डाकू

चमचम सिक्के थूँ दामन में
जैसे हँसते फूल कफ़न मे
शमयें जैसे क़ब्र प रौशन हाय अभागन हाय बिरोगन
नवरस नारी, नाज़ुक नागिन
कोमल, कंचन, काफ़िर, कमसिन
जिस्म न डोले दर्द से लेकिन
ताक-धिना-धिन ताक-धिना-धिन
छुम छुम छुम छुम छुन छुन छुन छुन हाय अभागन हाय बिरोगन
रनजूरी[1] है नाच नहीं है
माज़ूरी[2] है नाच नहीं है
मजबूरी है नाच नहीं है
मज़दूरी है नाच नहीं है
पेट की भट्टी माँगे ईंधन हाय अभागन हाय बिरोगन

आधुनिक युग में उर्दू कवियों ने अनेक सामाजिक आवश्यकताओं को अपना विचार-केन्द्र बनाया है। वे समाज में समानता एवं समन्वय लाना चाहते हैं अतः उन सब मतभेदों को जड़ से काटने की कोशिश करते हैं जिनसे सामाजिक जीवन में घृणा को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिये मौलाना सफ़ी लखनवी की कविता "दुधइल मवेशियों के तहफ्फ़ुज़ की तहरीक" देखी जा सकती है।

धूम्रपान मानव-जीवन के लिये अत्यन्त हानिकारक है। मदिरा सेवन इससे अधिक बुरा। उर्दू के कवि प्रचलित रूप में शराब की तारीफ़ सदैव करते रहे हैं परन्तु सामाजिक जीवन के लिये इसे बुरा समझते हैं। नज़ीर बनारसी ने इसे "जीवन बैरी" कहा है:—

बे मौत न जाने कितनों को इस लाल परी ने मारा है
मूरख न जला जीवन सम्पति, मदिरा नहीं अगनी धारा है
जो बूँद है इक चिंगारी है, जो घूँट है इक अंगारा है
बोतल से निकल कर शीशे तक लहराती हुई बल खाती है
शीशे से जो लब तक आती है दूल्हन की तरह शरमाती है
पर कंठ तले जब जाती है जाते ही छुरी बन जाती है

(१) वेदना (२) असमर्थता।

ये दोस्त नहीं है, दुश्मन है, जोगन ये नहीं है, पापिन है
लाली ये नहीं है ऊषा की, शीशे में गुलाबी डाइन है
भाग इससे ये ज़ालिम डस लेगी, जो लहेर है इसकी नागिन है
तू हाथ में साग़र को लेकर क्या सोच रहा है तोड़ भी दे
ये है तेरे जीवन का बैरी, इस बैरी से नाता तोड़ भी दे
दुशमन के भरोसे क्या जीना, क्यों पीता है पीना छोड़ भी दे
ठुकरा दे 'नज़ीर' इस मदिरा को वो साँवरे-गोरे क्या कम हैं
सरमस्त बनाने की ख़ातिर मस्त आँखों के डोरे क्या कम हैं
पैमाना हटा दे, पीने को वो नैन कटोरे क्या कम हैं

(९) बाल-साहित्य :—उर्दू में नवीन युग के पूर्व बाल-साहित्य के लिये कोई विशेष प्रबन्ध न था। काव्य का आदर्श कला-प्रदर्शन था अतः ऐसी बातों पर ही ज़ोर दिया जाता था जिसकी विद्वानों में प्रशंसा हो सके। बच्चों और अप्रौढ़ व्यक्तियों के लिये लिखना कवि के लिये अपमान की बात थी। कहा जाता कि इसके ज्ञान की शिखा दुर्बल है इसलिये किसी जटिल समस्या के बजाय बचकानी बातों पर ध्यान देता होगा। डा० इकबाल और मोहम्मद इसमाइल मेरठी ने इस विचारधारा का खण्डन किया और बच्चों की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखते हुये, बाल साहित्य की नींव अपनी अमर रचनाओं से निर्मित की।

आधुनिक युग में बाल-साहित्य के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। आज बच्चों के माता-पिता अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हैं अपने बच्चों का पालन-पोषण ऐसे आधार पर करना चाहते हैं कि वे राष्ट्र एवं जाति में समान महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकें। इसके लिये उन्हें ऐसे साहित्य की ज़रूरत है जिससे उनके लक्ष्य की पूर्ति हो सके।

अपने देश के प्रति हृदय में सम्मान की भावना उत्पन्न करना बालकों के लिये प्रमुख कार्य है। अपने देश के महत्व को न समझने पर वे किसी भी भ्रम में डाले जा सकते हैं अतः उर्दू कवि उनके दिल में ऐसी आग उत्पन्न कर देना चाहता है कि जो देश-विरोधी तत्वों को जलाकर राख बना दे। 'नज्म' आफ़नदी ने 'भारत देस' में भारतीय बालक को उसके देश का महत्त्व बताया है—

भारत सबकी आँख का तारा
गंगा-जमनी देस हमारा
हिन्दू हो या मुसलिम कोई
अपना घर है सबको प्यारा
सब ने की है सेवा इसकी
सबने मिलकर जिसको सँवारा
जिसके कारन गांधी जी ने
तन भी वारा, मन भी वारा
गर्मी-न्यारी, सर्दी प्यारी
बरखा जैसे अमरित की धारा
खेतों वाला, बाग़ों वाला
आशाओं का पालनहारा
पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन
चारों ओर बसे उजियारा
मीठे फल और फूल सजीले
आम है मेवा ख़ास हमारा
ऊँचा सबसे हिमालय परबत
तेन सिंह जिस पर चढ़ के पुकारा
इक दिन अपना देस बनेगा
सारे जग का प्रेम-सहारा

बालकों को देश का भक्त बनाने के अतिरिक्त उसका संरक्षक भी बनाना ज़रूरी है। उनके हृदय में यह बात जम जानी चाहिये कि यह हमारी मातृभूमि है; हम इसकी संतान हैं, इसकी उन्नति में सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है और यदि कोई बाहरी शक्ति हमारी जन्मभूमि पर कुदृष्टि रखे तो उसका जमकर मुक़ाबला किया जाये। काश्मीर भारत का अटूट अंग है और पाकिस्तान की ललचाई हुई नज़र उस पर जमी हुई है। अर्श मलसियानी बच्चों को समझाते हैं कि 'ये कश्मीर हमारा है'—

जन्नत ये न्यारी है अपनी
केसर की क्यारी है अपनी
हर इक फुलवारी है अपनी

इस जन्नत पर हमने अपने तन मन धन को वारा है
हम कशमीरी, हम कशमीरी, ये कशमीर हमारा है
इस धर्ती का निर्मल पानी
हलका मीठा शीतल पानी
आईने से उज्ज्वल पानी
इस पानी ने अपने सब खेतों का काज सँवारा है
हम कशमीरी, हम कशमीरी, ये कशमीर हमारा है
झेलम के हर नाज़ के अन्दर
झरने के हर साज़ के अन्दर
लिद्दर की आवाज़ के अन्दर
नग़मा कितना सुन्दर है, ये गीत कितना प्यारा है
हम कशमीरी, हम कशमीरी, ये कशमीर हमारा है
इसके वीर बहादुर बेटे
बन जायें तक़दीर के हेटे
दौलत उसकी ग़ैर समेटे
ग़ैरत अपनी कब ये मानें, कब ये हमें गवारा है
हम कशमीरी, हम कशमीरी, ये कशमीर हमारा है

प्रगतिशील राष्ट्रों की उन्नति के लिये तीव्र बुद्धि की बड़ी ज़रूरत होती है। भारत उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर है। इसके बच्चों को भी तीव्र-बुद्धि बनाने की ज़रूरत है। उनके मस्तिष्क को खोलने के लिये उनके सामने विराट समस्यायें नहीं रखी जा सकतीं। उन्हें छोटी-छोटी पहेलियों के द्वारा दीक्षा दी जानी चाहिये। उर्दू कवि इस ओर भी ध्यान दे रहे हैं; उदाहरणार्थ 'सहेर' रामपुरी की 'पहेलियाँ' देखी जा सकती हैं—

(१)

धरती माता चार महीने ओढ़े इक चादर ख़ुश होकर
पल में भीगे, पल में सूखे मलमल है वो और न खद्दर
(बादल)

(२)

परबत से निकले इक नाग उससे कोसों भागे आग
जिसको उससे प्यास बुझाये जिधर से गुज़रे जागे भाग
(दरिया)

(३)

एक ही बाग़ के रहने वाले एक ही माँ के जाये
फिर भी कोई फाड़े दामन और कोई महकाये

(फूल और काँटे)

(४)

पाँव तले होने के बदले एक समुन्दर सबके सरों पर
एक समुन्दर, जिससे किसी का होता नहीं है बाल कभी तर

(आसमान)

आधुनिक युग में बाल-साहित्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। बालकों के लिये अनेक पत्रिकायें प्रति मास प्रकाशित होती हैं जिनमें स्वस्थ तत्वों का संकलन होता है। बहुत से कवि इसी को अपने चिन्तन का केन्द्र बनाये हुये हैं। उनमें, हामिद उल्लाह 'अफ़सर' तिलोक चन्द 'महरूम' शफ़ी-उद्दीन 'नैयर' 'इज़हार' मलीहाबादी, मज़हर इमाम, 'फ़ैज़' लुधयानवी, विश्वनाथ 'दर' और अशरफुनिसा प्रमुख हैं।

(१०) अनुवाद-साहित्य :—साहित्यिक अनुसंधान बहुत कुछ अनुभूतियों पर भी आधारित होता है। कलाकार उसे कलात्मक शैली में अभिव्यक्त करता है। इसकी तलाश में उसे पूर्वकाल की कृतियों का भी अध्ययन करना होता है। मनुष्य जितना स्वयं अनुभव करता है यदि उसी को सब कुछ मान ले तो सत्य की अभिव्यंजना कठिन हो जायेगी। उसे ज्ञान-शिखा को प्रज्वलित करने के लिये कितने ही द्वारों पर जाना पड़ता है। अपनों के अलावा ग़ैरों का भी आभारी बनना पड़ता है। साहित्य में दूसरे साहित्यों का अनुवाद निन्दनीय नहीं वरन् प्रशंसनीय है। उर्दू की तो परम्परा ही विभिन्न भाषाओं के सहयोग से तैयार हुई है। उसने अनुवाद साहित्य को सदैव एक सम्माननीय स्थान दिया है।

उर्दू में अनुवाद की परम्परा कबसे चली और अब तक कितना साहित्य इस प्रकार संकलित हुआ है इसकी कहानी बहुत लम्बी है। संक्षेप में यह समझना चाहिये कि प्रारंभ से आज तक उर्दू का कोई काल ऐसा नहीं बीता जिसमे सुन्दर एवं श्रेष्ठ वर्ग के अनुवाद न किये गये हों। आधुनिक युग में भी अनुवाद की ओर ध्यान दिया गया है और इसमें संदेह नहीं कि बड़ा आदरयोग्य साहित्य संकलित हो गया है।

भारत के प्राचीन कवियों में कालिदास का नाम सर्वश्रेष्ठ है। उनकी रचनाओं और विशेषकर शकुंतलाम् को विश्व-व्यापक ख्याति प्राप्त है। उर्दू में पहले भी उसके अनुवाद हुये थे, और आज भी हो रहे हैं। आधुनिक युग में 'साग़र' निज़ामी ने शकुंतलाम् का सफल काव्य-अनुवाद प्रस्तुत किया है। शकुंतलाम् का यह अनुवाद कई प्रकार से महत्व रखता है। इसका मनोरंजनात्मक पहलू भी बहुत सुन्दर है। उदाहरण के लिये पाँचवें एक्ट का एक दृश्य देखा जा सकता है। शकुन्तला कण्व ऋषि के चेलों के साथ राज-दरबार मे आती है, जहाँ उसकी बड़ी आव-भगत होती है परन्तु जब राजा को बताया जाता है कि शकुन्तला उसकी धर्मपत्नी है, जिसके साथ उन्होंने बन में विवाह रचाया था तो राजा उसे गर्भवती देखकर इनकार कर देता है। चेले अपने को असमर्थ पाकर शकुन्तला से ही कुछ कहने को कहते हैं। वह भाव-पूर्ण वाणी में कहती है—

आशरम में मुझे दुनियाए-मोहब्बत देकर
अपने घर में मुझे ठुकराओगे मालूम न था

बख्श कर अपनी मोहब्बत का तिलिस्मे-उम्मेद
उम्र भर के लिये छुप जाओगे मालूम न था
हाय ! क्या भूल गये तुम वो कॅवल का कंगन
माधवी बेल के वो कुंज, वो धरती, वो गगन
तुमने गंधर्व तरीक़े से रचाया था ब्याह
अभी शाहिद[1] हैं तपोवन के वो पौदे, वो हिरन
गरदिशे-वक़्त को शरमाओगे मालूम न था

हाय ! ये संगदिली[2] उफ़ ! ये जफ़ा की बातें
और बातों मे निरी संगदिली की घातें
मेरी बेआबरूई का भी करोगे न ख़याल
मेरी इज़्ज़त को भी ठुकराओगे मालूम न था

जिसका उत्तर राजा की ओर से यह मिलता है—

बस ! ये गुनाहों से भरी पाप से लिपटी बातें
बस ! ज़ियादा न करो बन्द ये अफ़साना करो

(१) साक्षी (२) कठोरता।

तू मेरे कुनबे की इज़्ज़त को दाग़ लगाना चाहती है
तू उस नदी की तरह मेरे जीवन को हिलाना चाहती है
जो काट के अपने तट को निर्मल पानी मैला करती है
मौजों से गिरा देती है जो अपने साहिल के दरख़्तों को
तू उसी नदी की तरह मुझको पस्ती में गिराना चाहती है

उर्दू में अन्य भारतीय भाषाओं से भी अनुवाद किये गये है। बंगला उनमें सर्व प्रथम है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के अच्छे व बुरे अनुवाद इतनी संख्या में आज हमारे सामने हैं कि यहाँ उनका उद्धरण देने की विशेष आवश्यकता नहीं। बंगला के दूसरे महान कवि क़ाज़ी नज़रुल-इसलाम ने भी उर्दू के कवियों को प्रेरणा प्रदान की है। उनकी आवाज़ में आग थी, लपक थी जो आज़ादी की ख़्वाहिश से पैदा हुई थी। यह आग उर्दू वालों को सदैव से प्रिय रही है। उन्होंने भी इस आग को अपने सीने में पाला था। उनमें और नज़रुलइसलाम की विचारधारा में बड़ी समानता है। 'चन्द्र बिन्दु' क़ाज़ी नज़रुल इसलाम की सुप्रसिद्ध पुस्तक है जो अपने इनक़लाबी विचारों के कारण साम्राज्यवादियों को सहन न हो सकी थी और उन्होंने ज़ब्त कर लिया था। स्वतंत्रता के बाद इस पुस्तक पर से प्रतिबन्ध हटा तो उर्दू में भी अनुवाद किये गये। 'जागो' इस संबंध में विशेष है। 'यूनुस' अहमर ने इसका अनुवाद किया है—

ज़ंजीर में जकड़े हुये हमदम[१] मेरे जागो
तामीरो-मसावात[२] के पैग़ाम सुनाओ
हमदम मेरे जागो !
आहन[३] के पिघलने की सदा आने लगी है
तख़रीब[४] की आँखों में घटा छाने लगी है
अब वक़्त है ये क़ुफ़्ले-दहाँ[५] तुम भी तो खोलो
हमदम मेरे जागो !
दिन रात ज़मीं सुनती है आहों का फ़साना
आँसू के लरज़ते हुये क़तरों का तराना
लूले कहीं, लंगड़े कहीं, रोते हैं शबो-रोज़[६]
औरत की कहानी है जिगरपाशो-जिगरदोज़[७]

(१) साथी (२) निर्माण एवं समानता (३) लौह (४) विनाश (५) मुँह का ताला (६) रात दिन (७) कलेजा फाड़ने और पिघलाने वाली

एहसास के बढ़ते हुये शोले को हवा दो
ज़ंजीर में जकड़े हुये हमदम मेरे जागो
हमदम मेरे जागो !

स्वतंत्रता के प्रेमी भारतवासी हों या विश्व के किसी और कोने के रहने वाले, उर्दू कवि उनकी स्वतंत्रता-प्रेरणा को आगे बढ़ाने में सचेष्ट रहते हैं। तुर्की के इनक़लाबी शाएर 'नाज़िम हिकमत' अपने स्वतंत्रता-प्रेम के कारण साम्राज्यवादियों के लिये असह्य है। उसे जेल में रहना पड़ता है जहाँ वह आग भरी कवितायें लिखता है और भविष्य के लिये आशायें बाँधता है। नरेश कुमार 'शाद' उसकी आवाज़ उर्दू वालों तक पहुँचाते हैं—

मैं जश्ने-रोज़े-मुबारक[1] के बाद मुद्दत तक
अजीब बात नहीं है जो ज़िन्दा रह जाऊँ
मैं जश्ने-रोज़े-मुबारक के बाद मुद्दत तक
सफ़ेद दाढ़ी को लेकर निशान छड़ी पर
अगर जहाने-दिलावेज़[2] से बिछुड़ न सका
तो कूँचे-कूँचे में दीवारो-दर के साये तले
क़दम-क़दम प सुनाऊँगा वाइलन इनको
जो इनक़लाब की मंज़िल प कामराँ[3] पहुँचे
हर एक सम्त फिर इन सहेरकार[4] रातों में
मँहकते-हँसते ज़ियाबार[5] रास्ते होंगे
नये अवाम के क़दमों की आहटें होंगी
नये नवीले तरबनाक[6] ज़मज़मे[7] होंगे

आधुनिक युग का उर्दू अनुवाद-साहित्य बड़ा ही व्यापक है। इसमें अनेकानेक देशों के जनकवियों की कृतियों का अनुवाद हुआ है। आज उर्दू में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, अरबी, फ़ारसी इत्यादि का महान् साहित्य प्रस्तुत हो गया है। इस सम्बन्ध में कुछ राज्यों ने स्वयं भी सहायता की है। उर्दू के युवक कवियों में अनुवाद की प्रेरणा बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रही है। उदाहरणार्थ एक अमरीकी कवि डान वेस्ट की कविता का अनुवाद देख लीजिये—

(१) शुभ दिवस के समारोह (२) प्रिय संसार (३) सफल (४) सुबह लाने वाली (५) प्रकाशपूर्ण (६) संगीत पूर्ण (७) गान।

इसी लिये एक 'शोरिश पसन्द'[1] हूँ मैं
कि मेरी ख़्वाहिश, लेबास, रोटी है, हुस्न है, एक घर है
तुम्हारे होटों के वास्ते ऐ उदास और ग़मनसीब[2] माओ !
मैं मुसकुराते हुये जवान गीत चाहता हूँ
तुम्हारी वीरानो-ख़ुश्क नज़रों की ख़ातिर ए कमासिनो[3] ! अज़ीज़ो[4] !

मुझे ज़रूरत है एक दुनयाए-रंगो-बू की
जहाँ तबस्सुम-फ़रोज़[5] कलियाँ चिटक रही हों
जो धूप में फावड़ा चलाते हैं, साफ़ करते हैं
फ़र्श दिन भर

(११) प्रतिष्ठित व्यक्तियों को श्रद्धाञ्जलि :—देश और जाति के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को उनकी आदरणीय कृतियों पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना मानव सभ्यता का प्रशंसनीय अंग है। इसकी परम्परा सम्पूर्ण संसार में समान है। उर्दू में तो, उसकी प्रारम्भिक स्थिति से ही इसके लिये पृथक् काव्यरूप 'मरसिया' जन्म की प्रस्तावना मिलती है। इन मरसियों के अलावा उसी के आधार पर सांसारिक व्यक्तियों को भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई, जिसका एक महान संकलन है। 'हाली' ने 'ग़ालिब' का, 'इक़बाल' ने 'दाग़' का, 'चकबस्त' ने लोकमान्य तिलक का मरसिया कहा, जो आज भी उर्दू-साहित्य के इतिहास को सुशोभित कर रहे हैं।

आधुनिक युग में भी इसकी ओर ध्यान दिया गया है। देश के स्वतंत्रता-संग्राम के योद्धाओं की कृत्यों एवं बलिदानों से प्रभावित होना स्वाभाविक था, जिन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ भारत-माता के चरणों में निछावर कर दिया। १८५७ ई० से १९४७ के बीच कितने ही महापुरुषों ने अपने प्रिय-प्राण भारतमाता के चरणों पर निछावर कर दिये और विदेशियों के अत्याचारों को सहन करते हुये मृत्यु के साथ अमरत्व प्राप्त किया। उनके लहू की प्रत्येक बूँद से भारत को नव-जीवन का प्रकाश मिला। शमीम करहानी उनकी 'तहरीक' को भारत के जीवन की तहरीक समझते हैं—

(१) विद्रोह प्रेमी (२) दुखपूर्ण भाग्य वाली (३) कमाने वालियों (४) प्रीतमों ५ मुस्कान बिखेरने वाली

जौर[1] के बान चले, ज़ुल्म के शोले लपके
गाँव जलने लगे, उठने लगा शहरों से धुवाँ
दूर से कान में आती थी, कुछ ऐसी आवाज़
दुख में जैसे कोई मासूम पुकारे "ए माँ!"

चूड़ियाँ टूट के गिरती थीं जो संगीनों पर
तो छनाछन की सदा आती थी आबादी से
देवियाँ कहती थीं हो जाये कलाई सूनी
हम गले मिल के रहेंगे मगर आज़ादी से

नन्हें बच्चों में जवानों से ज़्यादा थी उमंग
खेलते-फिरते थे चलती हुई संगीनों में
जंग की शाम की आग़ोश[2] में सो जाते थे
इक नई सुब्ह का अरमान लिये सीनों में

मनचले रन में दिखाते थे जवानी की अदा
मुस्कुराते थे जो ज़ख़्मों से टपकता था लहू
क़ौम की राह में फ़रज़न्द जो होता था शहीद
माँ की आँखों से टपकते थे ख़ुशी के आँसू

मायाए-नाज़[3] हैं वो फ़ख्र के आँसू जिनमें
ग़र्क़ होकर न ग़ुलामी का अँधेरा उभरा
बाइसे-फ़ख्र[4] है वो ख़ूने-शहीदाँ जिसमें
डूबकर हिन्द का रंगीन सवेरा उभरा

की स्वतंत्रता के लिये जीवन बलिदान करने वालों पर उर्दू में बहुत-
ायें कही गई हैं। जिनमें अर्श मलसियानी की 'क़िस्साए-आज़ादी',
आज़ाद' की 'आज़ाद हिन्द फ़ौज', यहिया आज़्मी की 'पैग़ामे-
नूरी की 'क़सीदए-आज़ादी' और 'नाज़िश' प्रतापगढ़ी की
ा करती है' ख़ासकर देखी जा सकती हैं। इन कवियों के हृदय में
सम्मान के लिये मिट जाने वालों के लिये बड़ा स्नेह है। उदाहरणार्थ
नज़ीर 'नज़्रे-अक़ीदत' पेश करते हुये कहता है—

अत्याचार (२) गोद (३) सम्मान योग्य (४) गौरव योग्य।

मुस्कुराहट तुमने भरदी तल्ख़िए-हालात[1] में
काम तारों का किया तुमने अँधेरी रात में
तुम सोनहरे लफ़्ज़ हो तारीख़ के सफ़हात मे
याद करती हैं तुम्हें सुब्हे-दरख़्शाने-वतन[2]
है तुम्हारे ज़िक्र से रौशन शबिस्ताने[3]-वतन

त्याग एवं बलिदान की भावनायें प्रत्येक समय में समान महत्त्व रखती हैं। यह सिलसिला देश की स्वतंत्रता के बाद भी बाक़ी है। ब्रिगेडियर उसमान ने काश्मीर में दुश्मनों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करते हुये जीवन-दान किया तो हमारा कवि रो पड़ा। 'बेताब' बरेलवी ने 'ब्रिगेडियर उसमान' को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। इसी प्रकार सरदार पटेल ने जिस प्रकार से संकटकालीन स्थितियों में देश की रक्षा की थी, उसे अभीष्ट रखते हुये, उनकी मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करना उर्दू कवियों ने अपना कर्त्तव्य माना है। डा० सलीम संदेलवी भारत का 'एक चिराग़ और बुझा' देखकर दुखी होते हैं और कहते हैं—

आँसुओ ! ठहरो,
एक 'सरदार' की मैयत है, तुम्हें याद रहे
इसको ले जाओ फ़लक बोस 'तिरंगे' के तले
शोर में 'जन' 'मन' 'गन' के
हाथ से हाथ मिलाये हुए और पाँव से पाँव
शहर के शहर समेटे हुये और गाँव के गाँव
फूल के साथ हो शमशीर की छाँव
ग़म में भी अज़्म का पैकर बनकर
इस तरह न लाश उठाओ कि तुम्हारा सरदार
अपने ख़ामोश लबों से तुम्हें शाबाश कहे !!!
देखना होंट प आजाये न दिल की फ़रयाद
देखना आँख से आँसू न छलकने पाये
मेरे सरदार को आँसू से बड़ी नफ़रत थी
अश्क भर आयें तो हँसने की उसे आदत थी !
मैंने सरदार के पैग़ाम से ये समझा है

(१) वातावरण का कड़ुवापन (२) देश की चमकती सुबह (३) रात्रिनिवास।

अश्के-ग़म लाख मुक़द्दस हो, मगर बेहतर है
आदमी उस प भी काबू पा जाये
मुस्करा कर ग़मे-दौराँ के[1] मोक़ाबिल आ जाय!

पं० आनन्द नारायण मुल्ला ने भी 'सरदार पटेल' की मृत्यु को भारत के लिये अशुभ माना और सरदार के जाने को वीरता का अन्त समझा—

साथ गांधी के तो पहले तेरी तक़दीर गई
तेरी अज़मत, तेरी ताक़त, तेरी तक्बीर गई
बुलबुले-हिन्द लिये शोख़िए-तक़रीर गई
आज सरदार गया या तेरी शमशीर गई
इक तेरी बज़्म में नाले[2] के सिवा कुछ भी नहीं
एक नेहरू के उजाले के सिवा कुछ भी नहीं

इस प्रकार मौलाना 'आज़ाद' की मृत्यु भी उर्दू कवियों के लिये कई प्रकार से असाधारण थी। मौलाना के राजनीतिक महत्त्व से अलग रहते हुये, उनका साहित्यिक अनुसंधान भी उर्दू में वह स्थान रखता है जो बहुत थोड़े लोगों के हिस्से में आता है। उनकी पत्रिकायें 'अलहलाल' और 'अलबलाग़' उर्दू, पत्रकारिता मे मार्गसूचक का स्थान ग्रहण करती हैं। उर्दू मे मौलाना की मृत्यु पर एक बहुत बड़ा भण्डार एकत्रित हो गया है। हाफ़िज़ इब्राहिम की 'यादे-अबुलकलाम', 'मानी' जायसी की 'अबुलकलाम आज़ाद', 'अनवर' साबिरी की 'ज़ुलमते ग़म', एहसान दानिश की 'अबुल कलाम', 'रविश' सिद्दीक़ी की 'आज़ाद की याद में', 'साग़र' निज़ामी की 'इमामुल-हिन्द', जमील मज़हरी की 'मातमे-आज़ाद', तिलोक चन्द 'महरूम' की 'मीनारे-रोशनी', एजाज़ सिद्दीक़ी की 'तेरे बाद', जगन्नाथ 'आज़ाद' की 'अबुल कलाम आज़ाद', 'वफ़ा' मलकपूरी की 'मेमारे-आज़म', 'अश्क' लखनवी की 'मजमूआए-अज़दाद' और सैयदा फ़रहत की 'पैंगमबरेहयात' आदि कवितायें प्रमुख हैं। ये रचनायें श्रद्धा के भावों से परिपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ शमीम करहानी की 'ख़िज्रे हयात' का उद्धरण देख लीजिये—

टूटा है आज ख़ाके-वतन प वो कोहे-ग़म[3]
परबत का दिल उदास है, गंगा की आँख नम

(१) साम्यिक दुख (२) दुख का पहाड़ (३) विलाप।

यकजा हैं सोगवार सनमख़ान-वो-हरम[1]
ग़म से जबीने-परचमे-हिन्दोस्ताँ[2] है ख़म

मशरिक़ की सुब्हे-नव का उजाला चला गया
फ़रज़न्दे - अरजुमन्दे - हिमाला[3] चला गया

कवियों एवं साहित्यकारों के स्वर्गवास पर कवितायें लिखने की परम्परा उर्दू में सदैव से प्रचलित रही है। आधुनिक युग में यह प्रवृत्ति बढ़कर 'मातमी-मुशायरा' तक पहुँच गई है। आज कल कवियों की मृत्यु पर कवि-गोष्ठियाँ और कवि-सम्मेलन भी होते हैं जिनमें उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। १९४७ के बाद मरने वाले कवियों पर बहुत सी रचनायें हुई हैं। उदाहरणार्थ पं० हरीचन्द अख़्तर की मृत्यु पर तिलोक चन्द महरूम ने 'मातमे अख़्तर' कहा—

बच्चे तेरे बिलबिला रहे हैं 'अख़्तर'
अहबाब आँसू बहा रहे हैं 'अख़्तर'
ए काश इधर भी इक नज़र कर लेते
जो तुझको उधर बुला रहे हैं 'अख़्तर'

इसी प्रकार अल्लामा चन्द्रभान 'कैफ़ी' का स्वर्गवास विशेषकर उर्दू वालों के लिये असहनीय हुआ। हज़रत 'कैफ़ी' की स्थिति केवल कवि की न थी। वे स्वतंत्रता के बाद की विषम स्थिति में उर्दू के एक बड़े संरक्षक भी थे। इस अवसर पर ख़ून के आँसू रोने वालों में 'अस्र' लखनवी, तिलोक चन्द 'महरूम', और बृजलाल राना हैं। बृजलाल कहते हैं—

आँखों में अश्क लब प फ़ोग़ाँ[4] दिल उदास है
ये कौन उठगया है कि महफ़िल उदास है
किस नाख़ोदा[5] का आज सफ़ीना[6] हुआ है ग़र्क़
लहरों में इन्तेशार[7] है, साहिल उदास है
किस राहबर ने छोड़ दिया कारवाँ का साथ
राहें हैं सोगवार तो मंज़िल उदास है

(१) मसजिद और मन्दिर (२) भारत के ध्वज का माथा (३) हिमालय का सुपुत्र ४) विलाप ५) खेवनहार ६ नौका ७ बिग्र सजता।

आँखों के सामने है वो तसवीरे-ज़िन्दगी
जिसकी नज़र में थी कभी तनवीरे-ज़िन्दगी[1]
लाखों ही फ़ैज़याब हुये इस दिमाग़ से
'लाखों चिराग़ जल गये इस इक चिराग़ से'
'कैफ़ी' से हर अदीब को इक रब्ते-ख़ास[2] था
है क़ुदरती लगाव हर इक गुल का बाग़ से

कवियों और साहित्यकारों के स्वर्गवास पर काव्य का एक बड़ा संकलन एकत्रित किया जा सकता है। विशेषकर 'मजाज़' की अचानक मृत्यु पर बहुत-से कवियों ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। इनके अलावा आधुनिक युग के कवियों ने अपने उन पूर्वज कवियों को भी नहीं भुलाया है जिनका योगदान उर्दू में एक मार्गशिला की स्थिति रखता है। 'फ़िराक़' गोरखपुरी ने 'अकबर-इलाहाबादी' को, अर्श मलसियानी, सरदार जाफ़री और आले अहमद सुरूर ने 'ग़ालिब' को और 'मख़दूम' ने 'वली' और 'इक़बाल' को अपना हार्दिक सम्मान भेंट किया है।

(१२) हुसैनी-साहित्यः—दुनिया के इतिहास में करबला का संग्राम अपने त्याग, बलिदान, एवं उच्च आदर्शों के लिये सुप्रसिद्ध है। इमाम हुसैन और उमैयावंश के ख़लीफ़ा यज़ीद का मतभेद किसी सांसारिक कलह अथवा राजसिंहासन के लिये नहीं था, बल्कि दो विभिन्न सिद्धान्तों की लड़ाई थी। सत्य एवं असत्य की, धर्म एवं स्वार्थ की! इमाम हुसैन अपने समय के सबसे बड़े धर्मात्मा सज्जन थे। इसलाम में उनकी स्थिति धार्मिक-गुरू की थी। उन्हें ही युगीन परम्परानुसार 'ख़लीफ़ा' होना था। किन्हीं कारणोंवश ऐसा न हुआ और यज़ीद के पिता ने अपने आदर्शों और लिखित संधि से डिग कर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा दिया। यज़ीद अपने आचरण में बहुत डिगा हुआ था। वह इसलाम के उद्देश्यों का बहिष्कार करते हुये, दिन-दहाड़े उनका मज़ाक उड़ाया करता था। माँ-बहनों का सतीत्व नष्ट करना, मदिरा-सेवन, जुआ खेलना, इत्यादि उसके जीवन का अंग बन गये थे। उसके पिता ने उसके आचरण को देखते उसे समझा दिया था कि देख थोड़े से विशिष्टों को न छेड़ना, उनके अलावा जनता पर राज्य करना। वे तुझे अपना धार्मिक-गुरू न मानेंगे। परन्तु यज़ीद ने ख़लीफ़ा होने के बाद

(१) जीवन ज्योति (२) विशेष सम्बन्ध।

अपने पिता के आदेशों का उल्लंघन करते हुये इमाम हुसैन से बैअत की माँग की। बैअत के शाब्दिक अर्थ बेचने के होते है। बैअत के द्वारा जनता अपनी आत्मा को धार्मिक गुरु (इसलामी पैग़म्बर के ख़लीफ़ा) को समर्पित कर देती थी। इमाम हुसैन यज़ीद की बैअत कर लेते तो उसके आचरण को भी इसलाम का आदर्श मानना पड़ता और इस प्रकार उनके नाना रसूल, पिता अली और भाई हसन की सशक्त साधना व्यर्थ सिद्ध हो जाती। उन्होंने अपने जीवन भर उच्च आदर्शों को प्रोत्साहन दिया था। यज़ीद उनका साक्षात विरोधी था। ख़लीफ़ा राज्य और धर्म दोनों का ही आदर्श होता था। अतः जनता उसके चलन को ही इसलाम का वास्तविक रूप मानने लगती। इमाम हुसैन इसलाम के आदर्शों का मिटाया जाना कदापि स्वीकार न कर सकते थे। यही उनका और यज़ीद का विरोध था।

यज़ीद का ख़याल था कि इमाम हुसैन साथियों के अभाव से दबाव में पड़कर उसके हाथ पर बैअत कर लेंगे परन्तु उन्होंने उसकी मनोकामना पूरी न होने दी। इमाम हुसैन का कथन था कि अपमानित जीवन से सम्मानपूर्ण मृत्यु उत्तम होती है। सत्य की रक्षा के लिये उन्होंने अपने प्राण अर्पित करने की प्रतिज्ञा की। उनकी तरह के कुछ और सज्जन भी उनके साथ आ गये। वे सभी लोग इस्लामी सिद्धान्तों को मिश्रित करने के विरोधी थे। यज़ीदी फ़ौज उन्हें घेर कर करबला के चटियल मैदान में ले आई। उनपर उनके बच्चों और स्त्रियों समेत तीन दिन तक खाना-पानी बन्द रखा गया और वे सब अत्याचार किये गये जिनसे मनुष्य तो क्या पशु को भी लज्जा आ जाये। इमाम हुसैन अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ हजारों के साथ वीरता से लड़े। जवान बेटे ने सीने पर बर्छी खाई, बराबर के भाई की लोथ टुकड़े-टुकड़े कर डाली गयी। इमाम हुसैन ने सबकी लाशें उठाईं। यहाँ तक कि छः महीने के अली असग़र को तीर मारकर उनके हाथों पर बेदम कर दिया गया। इमाम हुसैन फिर भी अपने वचन पर अटल रहे। इसी संग्राम में सुख एवं शांति का संदेश देते हुये उन्होंने भारत आने का भी विचार प्रकट किया था—"अगर तुम सोचते हो कि मैं राजसिंहासन चाहता हूँ तो यह तुम्हारी भूल है। मैं तुम्हारे देश से भी चला जाने को तैयार हूँ। मुझे भारत चला जाने दो। सुना है कि वहाँ के लोग बड़े अच्छे स्वभाव के होते हैं आशा है कि वे मेरा सम्मान करेंगे"

इमाम हुसैन की यह वाणी वातावरण में गूँजी और प्रकृति ने उसे अपने सीने में संचय कर लिया। भारतीय भाषाओं और विशेषकर उर्दू में उनकी शहादत पर इतना महान साहित्य संकलित हो गया है जिसका जवाब फ़ारसी तो क्या स्वयं अरबी के पास नहीं है। इमाम हुसैन और उनके साथियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने में भारत की अन्य जातियाँ मुसलमानों से पीछे नहीं रहीं। आधुनिक युग में भी इस विषय पर सैकड़ों नहीं हज़ारों रचनायें प्रतिवर्ष इकट्ठी हो जाती हैं। भारत व पाकिस्तान की बहुत-सी पत्र-पत्रिकायें मोहर्रम के अवसर पर अपना विशेषांक निकालती हैं। आज इस महान शहादत का वर्णन केवल इसलिये नहीं किया जाता है कि वह इतिहास का सबसे अधिक दुखमय वृत्तान्त है वरन् आज का कवि उसकी उपयोगिता एवं संदेश को अभीष्ट रखता है। 'नजम' आफ़न्दी अपने सुप्रसिद्ध मरसिया 'मेराजे-फ़िक्र' में कहते हैं—

ख़ुद्दार[1] ज़िन्दगी का जो हामी[2] है वो हुसैन
इज़्ज़त की मौत का जो पयामी है वो हुसैन
जो ख़ालिक़े - शऊरे - अवामी[3] है वो हुसैन
हर क़ौम की नज़र में गरामी[4] है वो हुसैन

वाक़िफ़ नहीं बशर जो पयम्बर के नाम से
मानूस है हुसैन अलेहिस्सलाम[5] से

जिसने उमूरे-ख़ैर[6] को बख़्शी हयाते-नव[7]
जिसकी नवाए-दर्द[8] में है ज़िन्दगी की रव[9]
सदियों से जिसके नक़्शे-क़दम[10] दे रहे हैं ज़व[11]
जो सो गया बढ़ा के चिराग़े-वफ़ा की लव

बदली अमल की शक्ल, इरादे बदल दिये
जिसने मतालबात[12] के जादे[13] बदल दिये

क्या रब्त[14] आज मौत को है ज़िन्दगी के साथ
कितने अदाशिनास[15] हैं सिब्ते-नबी[16] के साथ

(१) स्वाभिमानी (२) सहयोगी (३) जनता के विवेक का रचयित्ता (४) आदरणीय (५) जिसको हमारा सलाम पहुँचे (६) शुभ-कार्यों (७) नवजीवन (८) दर्द की पुकार (९) रवानी (१०) पग चिह्न (११) प्रकाश (१२) भागों (१३) मार्ग (१४ [illegible] (१५ बात पहचानने वाले (१६) इसलामी [illegible] के नाती।

फिर ये हुजूमे-शौक़[1] न होगा किसी के साथ
मरने को यूँ न जायेंगे इनसाँ ख़ुशी के साथ
सुनकर सफ़ीरे-मर्ग[2] के क़दमों की आहटें
होंटों प जमा होंगी न फिर मुस्कराहटें

आज इमाम हुसैन के महान व्यक्तित्व का प्रकाश संसार के कोने-कोने मे फैल गया है। वे महाद्वीप जिनमें ज्ञान की देवी के दर्शन भी नहीं हुये है, वहाँ भी उनका महान सम्मान है। आज उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय शहीद माना जाता है। 'नज्म' ने इसी मरसिये के अन्त मे आशा प्रकट की है कि हुसैनियों का संकल्प चन्द्रमा और शुक्र आदि ग्रहों के संसार मे भी सम्माननीय होगा—

अहेले-ज़मीं की आज सितारों प है नज़र
मुमकिन है कामयाब रहे चाँद का सफ़र
है अपनी अपनी फ़िक्र मे हर क़ौम के बशर
मरदाने-हक़परस्त[3] का जाना हुआ अगर
अब्बासे-नामवर का अलम[4] लेके जायेंगे
हम चाँद में हुसैन का ग़म लेके जायेंगे

इमाम हुसैन का ग़म इनसान को संकल्प एवं बलिदान की दीक्षा देता है। उनकी शहादत में बड़ी शक्ति है और वह प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार सर एडवर्ड गिबन के कथनानुसार ठंडे दिलों मे गर्मी पैदा कर देती है। उर्दू कवियों ने उनके ग़म से बड़ी स्वस्थ प्रेरणा प्राप्त की है। उन्होंने शहीदों के ख़ून को रोशनी का मीनार माना है। बृजनाथ प्रसाद 'मख़मूर' कहते हैं—

गले के ख़ून से ताज़ा हर इक कली की है
क़दम क़दम प ज़माने की रहबरी की है
बता रहे हैं बरसते हुये ये अश्क हुसैन
जो कम न होगी कभी ऐसी रोशनी की है

ग़म का यह सिद्धान्त किसी भावुक विचारधारा पर आधारित नहीं है। इसके पीछे विश्व इतिहास की एक महान घटना है जिसका संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया जा चुका है। यज़ीदी फ़ौज ने इमाम हुसैन और उनके साथियों

(१ -समूह २ मृत्यु-दूत ३ सत्यवादी व्यक्तियों ४ पताका।

की हत्या के बाद भी अपने अत्याचार समाप्त न किये। उनकी लोथों को घोड़ों से कुचल डाला, स्त्रियों के सरों से चादरें छीन लीं, ख़ैमे जला दिये और बच्चों व स्त्रियों को बन्दी बना कर दर-बदर फिराते हुये यज़ीद की राजधानी शाम ले गये। पशुता और बर्बरता के आधिपत्य में मानवता बिलक रही थी और बच्चे व औरतें अपने मरने वालों पर रोने से असमर्थ कर दी गई थीं। 'ख़बीर' लखनवी अपने एक मरसिया में इस दुख का वर्णन करते हुये कहते हैं—

मर जाता है जब बाप तो रोती ही है दोख़्तर[1]
थे मारया में कैसे मुसलमान सितमगर
लिपटी जो सकीना तने-शब्बीर[2] से आकर
दुर्रों[3] की अज़ीयत[4] से छोडाई गई मुज़तर[5]
ख़्वाहर[6] को भी रोने न दिया भाई के ग़म में
जकड़ा गया फ़रज़न्द[7] भी ज़ंजीर सितम में

मरसियों में दुख एवं शोक की बातें विशेषकर लिपिबद्ध की जाती हैं परन्तु उनका उद्देश्य किसी प्रकार की निराशा या पछतावा नहीं है। मरसिया-कवि इमाम हुसैन के ग़म में मानव-जीवन के मूल्यों का महत्त्व देखते हैं और उनके द्वारा अपने साथियों के निर्माण हेतु प्रोत्साहित करते हैं। आधुनिक युग के मरसिये उनकी स्वस्थ प्रेरणाओं को और भी आगे बढ़ाते हैं। उदाहरणार्थ 'मोहज़्ज़ब' लखनवी के एक मरसिये का उद्धरण देख लीजिये। करबला की क़ुर्बानियों में इमाम हुसैन के छः महीने के पुत्र अली असग़र की क़ुर्बानी बड़ी प्रबल है। इमाम हुसैन उसे पानी पिलाने के बहाने माँ से माँग कर लाये हैं। माता घर में व्याकुल है—

इक इक अदा को बैठी हुई कर रही थीं याद
ऐसी बँधी थी आस कि दिल हो रहा था शाद
हसरत पुकारती थी कि जल्द आयेगी मुराद
आयेंगे अब पलट के शहनशाहे-ख़ुशनेहाद[8]
दिल को यक़ीन था मेरा बेआब[9] आयेगा
प्यासा गया है दश्त[10] में सेराब[11] आयेगा

(१) पुत्री (२) इमाम हुसैन की लोथ (३) कोड़ों (४) दुख (५) दुखिया (६) बहन (७) पुत्र (८) सत्यप्रद सम्राट् (९) प्यासा (१०) जंगल (११) तृप्त।

कहती थीं दिल से असग़रे-नादाँ है बेक़ुसूर
लशकर में होंगे साहिबे-औलाद[1] भी ज़रूर
जब तशनगी[2] बयान करेंगे शहे-ग़यूर[3]
रोयेंगे फेर-फेर के मुँह अहले-मक्रो-जोर[4]
फेरेगा तिशनालब[5] जो लबों प ज़बान को
शरमा के सर झुकाना पड़ेगा जहान को
बेहतर हर इन्तेज़ार में है माँ का इन्तेज़ार
डेवढ़ी के सम्त देख रही हैं जो बार-बार
देखा उठा के परदए-दर को बहाले-ज़ार[6]
आते हैं सर झुकाये हुये शाहे-नामदार
समझीं कि हसरतों की ग़ज़ब अबतरी हुई
हाथों में शाहे-दीं के है मिट्टी भरी हुई

करबला के दुखपूर्ण वृत्तान्त के साथ मरसियों के साथ अन्य काव्य-रूपों का भी वर्णन ज़रूरी है। रुबाई की तो तारीख़ मरसिया वाले कवियों की बनाई हुई है इसके अलावा मुसल्लस, मुरब्बा और मुख़म्मस में भी आदरणीय हुसैनी-साहित्य संकलित हुआ है। उर्दू कवियों ने इमाम हुसैन और उनके साथियों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते समय पूर्ण उदारता व्यक्त की है। परिणामस्वरूप आज उनकी कृतियाँ सम्पूर्ण साहित्य पर छाई हुई हैं। प्रो० हीरा लाल चोपड़ा ने शहीदों की वन्दना करते हुये कहा है—

किया है दहेर में इनसानियत का तूने क़याम[7]
तुझी से हक़ो-सदाक़त[8] तुझी से अद्ल[9] का नाम
पसअज़-रसूल[10] तुही तू है बानिए-इसलाम[11]
सलाम तुझ प शाहनशाह बार बार सलाम
सलाम राहते-ख़ैरूनिसा[12] सलाम अलेक

हुसैनी साहित्य का वर्णन नौहों और सलामों के ज़िक्र के बिना अधूरा है। आज उर्दू में कितने ही कवि ऐसे हैं जिनका पूर्ण साहित्यिक अनुसंधान

(१) संतान वाले (२) प्यास (३) स्वाभिमानी सम्राट् (४) कूटकर्म और अत्याचार वाले (५) सूखे होठों वाला (६) दुख की दशा में (७) अस्तित्व (८) सत्य एवं सत्यवादिता (९) न्याय (१०) रसूल के बाद (११) इसलाम की नींव डालने वाले (१२) रसूल की पुत्री के दिल की ठंडक।

इन्हीं पर आधारित है। फ़ज़ल लखनवी, 'नज्म' आफ़न्दी, 'नेहाल' रिज़वी, 'क़रार' लखनवी, 'काज़िम' बनारसी, 'शहीद' लखनवी, 'रज़्म' रुदौलवी, 'फ़क्र' जौनपुरी, 'ज़ाएर' इलाहाबादी, और 'अज़्म' इलाहाबादी आदि कवियों की रचनायें पूरे भारत में ख्याति प्राप्त किये हैं। ये नौहे और सलाम मोहर्रम के अवसर पर मातमी अंजुमनों का भी सहारा पाते हैं। इमाम हुसैन के ग़म का प्रसार करते हुये भावुक युवक अपना सिर-सीना पीटते हुये इन नौहों और सलामों को गाते हुये जन-समूह के सामने से गुज़रते हैं। इसका प्रभाव भी बड़ा शक्तिशाली होता है और सुनने वाले रो पड़ते हैं। ये नौहे और सलाम प्रचलित काव्य-रूपों के आधार पर लिखे जाते हैं और इनमें ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो अधिकांश लोगों की समझ में आ सके। इनकी शैली सरल और सुन्दर रखने की कोशिश की जाती है। उदाहरणार्थ 'फ़ज़ल' लखनवी की एक प्रसिद्ध कृति देखी जा सकती है—

इसलाम की हयात शहादत है ए हुसैन
कलमा नबी का तेरी बदौलत है ए हुसैन
कुछ देर तो ज़रूर थी ख़ंजर की कशमकश
अब दो जहाँ प तेरी हुकूमत है ए हुसैन
बिखरे हुये हैं चाँद सितारे ज़मीन पर
आशूर[1] ये नहीं है, क़यामत है ए हुसैन
पानी लबों की तरह निगाहों से दूर है
जो अश्क है वो ख़ून की रंगत है ए हुसैन
कुछ इस तरह छिपाया था असग़र को क़ब्र में
हर दिल में आज नन्हीं सी तुरबत[2] है ए हुसैन
क़दमों से दूर हट गई बहती हुई फ़ोरात
कितना पसन्द जामे-शहादत[3] है ए हुसैन
इसलाम की है जान तो क़ुरआन की है रूह
सूखे हुये लबों प जो आयत है ए हुसैन

उर्दू साहित्य में हुसैनी साहित्य का पूर्ण वर्णन करते हुये पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं बल्कि सत्य तो यह है कि उर्दू के प्रारम्भिक काल से लेकर

(१) मोहर्रम की दस तारीख़ (२) क़ब्र (३) शहादत का प्याला।

अब तक जितनी श्रेष्ठ एवं महान रचनायें इस सम्बन्ध में संकलित हुई हैं उनकी समानता में किसी अन्य काव्य-रूप में मिलनी असम्भव हैं। यह साहित्यिक अनुसंधान सामयिक भी नहीं है। इसकी रचना में उर्दू-कवियों का सदियों के परिश्रम का फल है। ये रचनायें मानव-जीवन के महत्वपूर्ण रहस्यों को स्पष्ट करती हैं जिनसे प्रेरणा लेकर मनुष्य अपने जीवन-रस एवं आत्मसम्मान में वृद्धि कर सकता है।



